

# साधना और सिद्धि

आचार्य महाप्रज्ञ





साधना  
और  
सिद्धि



जैन विश्व भारती प्रकाशन

साधना  
और  
सिद्धि

---

---

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रकाशक  
जैन विश्व भारती  
लाडनूँ—३४१३०६ (राज.)

तृतीय संस्करण : २०१०

मूल्य : ७० रुपये मात्र

मुद्रक :  
कला भारती,  
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

---

**Shadhana Aur Siddhi**  
**by Acharya Mahaprajna**

**ISBN 81-7195-071-X**  
**Rs. 70.00**

## प्रस्तुति

साधना की सिद्धि के लिए नोरता (नवरात्र) का समय बहुत अनुकूल है। ग्रहों के योग और विकिरण अलग-अलग प्रकार के हैं और उनका प्रभाव भी अलग-अलग प्रकार का होता है। इस प्रभाव का चिन्तन किया गया तब पूज्य गुरुदेव आचार्य तुलसी ने कहा—हमें भी नवरात्र में साधना का विशेष प्रयोग करना चाहिए। महापुरुष के चिन्तन, वाक् और क्रिया में दूरी नहीं होती।

वि. संवत् २०५१ (ईस्वी सन् १९९४) के चातुर्मास में दिल्ली में प्रथम बार नवरात्र का अनुष्ठान किया गया। साधना के प्रयोग निर्धारित किए और तदनुसार नवरात्र के अनुष्ठान शुरू हो गया। तब से अब तक आश्विन के शुक्ल पक्ष में नवरात्र के अनुष्ठान का प्रयोग बराबर चल रहा है। प्रयोग के साथ अल्पकालिक प्रवचन भी होता है। प्रस्तुत पुस्तक में सात वर्षों के प्रवचनों का संकलन है। इनका संपादन साध्वी विश्रतुविभा ने किया है। संपादन की पूर्व भूमि और उत्तर भूमि में मुनि धनंजय कुमार का योग-प्रयोग कार्य कर रहा है। साधना करने वालों के लिए पूज्य गुरुदेव की दूरदर्शिता का कल्याणकारी प्रसाद इस पुस्तक के माध्यम से जनता को मिल सकेगा।

१ मई २००१  
श्रीडूंगरगढ़

आचार्य महाप्रज्ञ



## अनुक्रम

आध्यात्मिक अनुष्ठान का उद्देश्य	९
अनुष्ठान : भावशुद्धि का प्रयोग	१३
सिद्धि की साधना और प्रयोग	१७
विसंकल्पमस्तु मे मनः	२२
केन्द्र में आत्मा रहे	२५
उद्घाटन अन्तश्चक्षु का	२७
अतीन्द्रिय चेतना का विकास	३१
मन को पकड़ो	३५
महाव्रत : सिद्धि का मूल आधार	३९
अहिंसा महाव्रत	४३
सत्य महाव्रत	४७
अचौर्य महाव्रत	५२
ब्रह्मचर्य महाव्रत	५६
अपरिग्रह महाव्रत	६१
विवेक जागरण का प्रयोग : समिति (१)	६६
विवेक जागरण का प्रयोग : समिति (२)	६९
विवेक जागरण का प्रयोग : समिति (३)	७२
विवेक जागरण का प्रयोग : समिति (४)	७६



ज्ञान योग (१)	८०
ज्ञान योग (२)	८४
सम्यक् ज्ञान	८९
सम्यक् दर्शन (१)	९१
सम्यक् दर्शन (२)	९४
सम्यक् चरित्र	९६
संतुलन राग और विराग का	९८
दशवैकालिक : एक मंत्र	१०१
शोषणमुक्त मधुकर	१०३
कामना का व्यूह	१०५
संगठित समाज	१०९
त्याग की चेतना	११२
आवश्यक है चेतना का रूपान्तरण	११५
व्यक्तित्व निर्माण का प्रयोग : मंगल भावना	११९
व्यक्तित्व विकास के सूत्र	१२३
विकास अनंत चतुष्टयी का	१२८
संकल्प शक्ति का विकास	१३२
आवश्यक है संस्कारों का निर्माण	१३९
अपनी शक्ति का विकास करें	१४४
शक्ति जागरण के बीज	१५१
शक्ति के दो रूप	१५५
कैसे करें तैजस शक्ति का विकास (१)	१५८
कैसे करें तैजस शक्ति का विकास (२)	१६३
शक्ति का उपयोग	१६९
शक्ति की अभिव्यक्ति	१७५
नवाहिक आध्यात्मिक अनुष्ठान	१८१

## आध्यात्मिक अनुष्ठान का उद्देश्य

आश्विन शुक्ला प्रतिपदा। नवरात्र का प्रथम दिन। अनुष्ठान का पावन अवसर। इसका उद्देश्य है—आध्यात्मिक चेतना का जागरण। आज दो शब्द बहुत चर्चित हो रहे हैं—भौतिकवाद और अध्यात्मवाद। भौतिकवाद क्या है? जहां हमारी चेतना पदार्थ के साथ जुड़ जाती है, आसक्ति पैदा होती है कि पदार्थ मेरा है, यह अवधारणा बन जाती है, उसका नाम है भौतिकवाद।

जहां हमारी चेतना अपने स्वरूप में लीन रहती है, अनासक्ति बढ़ जाती है, पदार्थ मेरा नहीं है, यह अवधारणा हो जाती है, अमूर्च्छा समाप्त हो जाती है, आत्मा अन्य है, पुद्गल अन्य है, यह भेदविज्ञान हो जाता है, जहां आत्मा है और केवल आत्मा है, जहां यह भेद स्पष्ट है—आत्मा है वहां पदार्थ नहीं है और पदार्थ है वहां आत्मा नहीं है, दोनों भिन्न हैं, उसका नाम है—अध्यात्मवाद।

आज बहुत लोग कहते हैं कि अध्यात्मवाद समस्याओं का समाधान करने वाला है। मैं नहीं मानता—अध्यात्मवाद हमारी सारी समस्याओं का समाधान दे सकेगा। कुछ समस्याओं का अध्यात्म के पास प्रत्यक्ष समाधान है और कुछ समस्याओं का परोक्ष। रोटी से पेट भरता है, अध्यात्म से नहीं। इसलिए अध्यात्मवाद पेट भरने की समस्या का समाधान नहीं है। किन्तु यदि अध्यात्म की चेतना जागृत नहीं है तो तृप्ति से लेकर रोटी का प्रथम कौर खाने तक अनेक प्रदूषण साथ में आते जाते हैं। वह अन्न पेट में जाता है और मस्तिष्क को विकृत करता है। इसलिए अध्यात्मवाद कुछ समस्याओं का परोक्षतः और कुछ समस्याओं का प्रयत्नतः समाधान करता है।

अध्यात्मोपनिषद् में अध्यात्म की बहुत सुन्दर परिभाषा की गई है—

**गतमोहाधिकारणामात्मानमधिकृत्य या।**

**प्रवर्तते क्रिया शुद्धा, तदध्यात्मं जगुर्जिनाः॥**

आत्मा को केन्द्र में रखकर होने वाली शुद्ध क्रिया अध्यात्म है। अध्यात्म का व्यावहारिक पक्ष आचार है।

साधना और सिद्धि ————— ● ९ ●

आचार के पांच प्रकार हैं—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। आचार परिधि में है। केन्द्र में है आत्मा। आत्मा को केन्द्र में रखकर परिधि में आचार की अनुपालना और आराधना होती है, उसका नाम है—अध्यात्म। ज्ञान का आचार हो रहा है, केन्द्र में नहीं है, वह अध्यात्म नहीं है। हमारा कितना ही विधायक दृष्टिकोण हो यदि आत्मा केन्द्र में नहीं है, वह अध्यात्म नहीं है। आचरण हो रहा है, आत्मा केन्द्र में नहीं है, वह अध्यात्म नहीं है। तपस्या हो रही है, केन्द्र में आत्मा नहीं है, वह अध्यात्म नहीं है। वीर्य का प्रयोग हो रहा है, आत्मा केन्द्र में नहीं है, वह भी अध्यात्म नहीं है। पंच आचार और उसके केन्द्र में आत्मा हो, तब ही अध्यात्म घटित हो सकता है।

अध्यात्म के विषय में नयदृष्टि से भी विचार किया गया है। जो चेतना मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य भावना से भावित होता है, उसका नाम है अध्यात्म। जो चेतना ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य भावना से भावित होती है, उसका नाम है अध्यात्म। भावना ध्यान का आधारभूत तत्त्व है। जो चेतना अनित्य, अशरण, एकत्व और अन्यत्व आदि अनुप्रेक्षाओं से भावित होती है, उसका नाम है अध्यात्म। जिसका चित्त मैत्री से ओतप्रोत नहीं होता, वह अध्यात्म की बात नहीं कर सकता। मैत्री से भावित चित्त निर्मल हो जाता है। वह निर्मल चित्त ही अध्यात्म है। एवं भूतनय की दृष्टि से अध्यात्म की परिभाषा है—‘निर्मलं चित्तम्।’ चेतना पर कोई मलिनता नहीं, कोई विचार नहीं, कोई विकल्प नहीं। यह नय भी सत्य को अत्यन्त विशुद्ध दृष्टि से परखता है, परम की बात को ग्रहण करता है।

व्यवहारनय की दृष्टि से विचार करें तो अध्यात्म का पहला बिंदु है—पदार्थ के प्रति आसक्ति न होना, पदार्थ को अपना न मानना, हिंसा न करना। भौतिकवाद का प्रथम बिन्दु है—पदार्थ के प्रति आसक्त होना, पदार्थ को अपना मानना, हिंसा करना।

चेतना निर्विकल्प है, उसमें विकल्प नहीं होता। अध्यात्म में भी कोई विकल्प नहीं होता। जहां अध्यात्म की चर्चा है, वहां कहना होगा—‘मैं दूसरे के द्वारा प्रतिपाद्य नहीं हूँ। वह मेरा प्रतिपादन नहीं कर सकता। दूसरा मेरे द्वारा प्रतिपाद्य नहीं है, मैं उसका प्रतिपादन नहीं कर सकता। मैं निर्विकल्प हूँ, इसलिए प्रतिपाद्य और प्रतिपादन दोनों से परे हूँ।’ जहां विकल्प, वहां समस्या। किन्तु यह भी सच है कि कोई भी व्यक्ति पहले ही चरण में निर्विकल्प नहीं बनता। विकल्प शान्त करने के लिए विकल्प का ही सहारा लेना पड़ता है। कांटे को कांटे से ही निकाला जाता है। अध्यात्म की साधना के प्रारंभ में विकल्प का सहारा लेना, आलंबन लेना जरूरी है। जप करना विकल्प अवस्था है, निर्विकल्प समाधि नहीं। साधना के प्रारंभ में सविकल्प साधना के बिना निर्विकल्प साधना तक सीधे पहुंचा जाए, संभव नहीं लगता।

साधना और सिद्धि—● १० ●

साधना करते समय साधक अनेक भूमिकाओं में से गुजरता है। असद्विकल्प, सद्विकल्प और निर्विकल्प। अनिष्ट चिन्तन, क्रूरता का चिन्तन, ईर्ष्या का चिन्तन— यह सारा असद्विकल्प है। इस विकल्प को समाप्त करने के लिए सद्विकल्प का आलम्बन लेते हैं। उसके लिए परम तत्त्व का चिन्तन करते हैं, जप करते हैं और इष्ट के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। असद्विकल्प सद्विकल्प में परिवर्तित हो जाता है। धीरे-धीरे साधक सद्विकल्प का निरोध करता है और निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है।

इस अवस्था तक पहुँचने के लिए धैर्य की जरूरत है। आज की सबसे बड़ी समस्या है अधृति। एक रोगी डॉक्टर के पास पहुँचकर बोला—‘डॉक्टर साहब! सिर में दर्द है।’ डॉक्टर ने गोलियाँ दे दीं। आधा घंटा बाद फिर आया। डॉक्टर ने कहा—‘लगता है तुम्हारा सिरदर्द मिटा नहीं, दवा बदल देता हूँ।’ रोगी ने कहा—‘डॉक्टर साहब! आपको मेहनत करने की जरूरत नहीं, मैंने अपना डॉक्टर ही बदल लिया है।’

सचमुच आज आदमी में धैर्य नहीं है। साधना के लिए धैर्य बहुत आवश्यक हैं उसके बिना एकाग्रता भी नहीं सधती। साधना करते-करते एकाग्रता का बिन्दु वहाँ तक पहुँच जाता है, जहाँ सविकल्प अवस्था निर्विकल्प अवस्था में बदल जाती है।

जब हम दीर्घश्वास के साथ श्वास-संयम का प्रयोग करते हैं, तब एक बिन्दु ऐसा आता है, जहाँ सारे विकल्प समाप्त हो जाते हैं। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। यदि प्रयत्न करेंगे तो विकल्प ज्यादा आएँ। विकल्पों के साथ लड़ने का प्रयत्न मत करो। यदि प्रयत्न करोगे तो भूत की शक्ति बढ़ जाएगी शिथिलीकरण कर कुछ क्षण ठहर जाओ। अगर ठहर जाएंगे तो भूत की शक्ति काम नहीं करेगी। हम ठहर जाएँ तो विकल्प की शक्ति भी काम नहीं करेगी। विकल्प के साथ समझौता करने का पहला उपाय है—विकल्पान्तर, अच्छा विकल्प।

बहुत लोग कहते हैं—बैठे-बैठे बुरे विचार आते हैं, बुरी भावनाएं आती हैं, इनका क्या कारण है? आयुर्वेदीय दृष्टि से देखें तो जिस व्यक्ति वायु का वेग ज्यादा है, उसे बुरे विचार सताते हैं। स्वरोदय की दृष्टि से देखें तो जिस व्यक्ति में पार्थिव तत्त्व की अधिकता होती है, उसे नकारात्मक विचार अधिक आते हैं। जिस व्यक्ति में एसिडिटी होती है, बुरे विचार आने लग जाते हैं। कभी-कभी मोहकर्म की प्रबलता भी इसमें निमित्त बनती है। हमारे भीतर संस्कार हैं। ये संस्कार हमें बाधित करते हैं। एक दिन प्रयोग करें—प्रातःकाल उठने से लेकर रात में सोने तक जितने अच्छे या बुरे विचार आते हैं उन सब विचारों को डायरी में नोट करें। उसके बाद अध्ययन करें कि कितने निषेधात्मक विचार आये? हमें अनुभव होगा कि बाहर की परिस्थितियों की अपेक्षा आन्तरिक प्रवृत्तियाँ हमें अधिक प्रभावित करती हैं।



हमारे भीतर सौरमंडल है, जहां सूर्य है, चन्द्रमा है, बुध है, बृहस्पति है, शनि है, मंगल है। यह सौरमंडल ही हमें ज्यादा प्रभावित करता है। बाहर का सौरमंडल भीतर के सौर को प्रभावित कर अपना परिणाम दिखाता है। जब तक बाहर का सौरमंडल भीतर के सौरमंडल को प्रभावित नहीं करता, तब तक उस सौरमंडल का प्रभाव हमें प्रभावित नहीं करता। बाह्य सौरमंडल कमजोर हो सकता है, किन्तु यदि आपने तैजस केन्द्र पर ध्यान की अच्छी साधना की है तो आपका सूर्य ग्रह शक्तिशाली बन जाएगा। फिर जन्मकुंडली का सूर्यग्रह आपको प्रभावित नहीं करेगा।

हमें अध्यात्म को समझना है, अध्यात्म के रहस्यों को समझना है, उसके पश्चात् शरीर के रहस्यों को भी समझना है। जो व्यक्ति शरीर के रहस्यों को नहीं जानता, उसके लिए अध्यात्म की साधना अर्थहीन बन जाती है। अध्यात्म का प्रारंभ शरीर से ही होगा। शरीर के भीतर एक बहुत बड़ा कारखाना चल रहा है। उस कारखाने की तंत्र प्रणाली को जानना है। हमारा नाडीतंत्र हमें प्रभावित करता है। ग्रंथितंत्र से निकलने वाले हार्मोन्स हमें प्रभावित करते हैं। मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले न्यूरोट्रांसमीटर हमें प्रभावित करते हैं। आदमी अच्छा होना चाहता है, किन्तु चाहने मात्र से ही वह अच्छा नहीं बन पाता। कारण है भीतर की बाधा। अव्याबाध या बाधामुक्त बनने के लिए बाहर में ही केन्द्रित न रहें, भीतर को भी समझने का प्रयत्न करें। मैं मानता हूं कि इससे बड़ा और कोई अनुष्ठान नहीं हो सकता। हमारी चेतना जागृत हो जाए, हमारी दृष्टि भीतर तक चली जाए, अपने आपको देखने लग जाए।

अनुष्ठान का प्रयोजन है—शक्ति का जागरण। आत्मा की चार अनन्त शक्तियां हैं—ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य। ज्ञानावरण का क्षयोपशम—ज्ञान चेतना का विकास, दर्शनावरण का क्षयोपशम—दर्शन चेतना का विकास। मोहनीय कर्म का क्षयोपशम—राग द्वेष मुक्त चेतना का विकास, आनन्द, अन्तराय कर्म का क्षयोपशम—सारी शक्तियों को संचालित करने वाली महाशक्ति अथवा महावीर्य का विकास। अध्यात्म की साधना के द्वारा इन शक्तियों का विकास किया जा सकता है।

इन नौ दिनों में विशेष प्रयोग करें, खाने का संयम करें, तप का प्रयोग करें और दृष्टिकोण को सम्यक् बनाने का प्रयत्न करें, नमस्कार मंत्र का अनुष्ठान करें। इससे आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण होगा, जिससे अध्यात्म को समझने का ही नहीं, अध्यात्म को जीने का भी अवसर मिलेगा।

## अनुष्ठान : भावशुद्धि का प्रयोग

नवाह्निक अनुष्ठान में हमने जप के लिए दशवैकालिक का प्रथम अध्ययन चुना। इसकी गाथाएं बहुत सारगर्भित हैं। उसमें निमज्जन करते चले जाएं, नए-नए रत्न मिलेंगे। इस अध्ययन में अहिंसक की चर्या का बहुत मार्मिक चित्रण किया गया है। कहा गया—‘किसी दूसरे को क्लान्त मत करो।’ प्रश्न हुआ—‘क्या शरीर को क्लान्त करें?’ बिल्कुल नहीं। यह एक भ्रान्ति पैदा हो गई। शरीर को सताओ, क्लान्त करो। जैनधर्म की यह मान्यता नहीं थी। उसमें भावना और आचरण की पवित्रता पर बल दिया गया है।

उत्तरकाल में मोक्ष के चार मार्ग बतलाए गए—दान, शील, तप और भाव। प्रश्न होता है कि इनमें श्रेष्ठ कौन? उत्तर दिया गया—भाव। भावशुद्धि है तो सब कुछ मिल जाएगा। भावशुद्धि नहीं है तो चाहे दान, शील, तप कुछ भी करते रहो, जो मिलना चाहिए, वह नहीं मिलेगा। भाव का बड़ा महत्त्व है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जैसे भंवरा फूल से थोड़ा-थोड़ा रस लेता है, अपना काम चला लेता है और फूल को क्लान्त नहीं करता। शरीर से भी सार निकालो पर शरीर को सताओ मत, क्लान्त मत करो। यानी श्रम करो, पर कितना करो? पुरुषार्थ करो, पर कितना करो? उसकी मात्रा क्यों हो? उसकी सीमा बता दी कि अपना बल देखो, अपनी प्राणशक्ति देखो, अपनी श्रद्धा देखो, शरीर को देखो, स्वास्थ्य कैसा है? साथ दे रहा है या नहीं दे रहा है? क्षेत्र को देखो, शरीर को देखो। फिर उन सबकी समीक्षा करो। पुरुषार्थ करो। आत्मा का नियोजन करो। यह विवेक दिया गया।

**बल थामं च पेहाय, सद्धामारोगमप्पणो।**

**खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए।।**

तुम्हें तपस्या ही करना है या कठोर कर्म ही करना है—ऐसा कोई निर्देश जैन धर्म में प्राप्त नहीं है। बिल्कुल श्रम मत करो, पुरुषार्थ मत करो तो निकम्मे बन जाओगे। एक हाथ से काम मत करो, ऐसे ही रखो। दस दिन के बाद उसकी काम करने की शक्ति समाप्त हो जाएगी। शरीर का कोई भी अवयव काम में मत लो,

निकम्मा हो जाएगा। सब अवयवों को काम में लेना जरूरी है। न अति श्रम, न अति विश्राम। एकान्तवाद नहीं, अनेकान्त का मार्ग, मध्यम मार्ग अपनाओ। अनेकान्त स्वयं मध्यम मार्ग ही है। श्रम की अति भी मत करो। अश्रम की अति भी मत करो।

पूज्य गुरुदेव मारवाड़ के एक गांव जाणूदा में विराज रहे थे। हम जिस कमरे में बैठे थे, उसमें कांच थे। चिड़िया आई और उस कांच पर अपना घोंसला बनाना शुरू किया। तिनका ले गई, रखा, नीचे गिर गया। फिर रखा, फिर नीचे गिर गया। शायद दोपहर तक यह नाटक चलता रहा। तिनके अनेक बार गिरे, चिड़िया बार-बार उड़ी, नीचे बैठी, ऊपर बैठी। श्रम बहुत किया। आज का आदमी इतना श्रम नहीं करता, जितना चिड़िया ने किया। सांझ के समय, चार-पांच बजे हमने देखा, श्रम की निष्पत्ति क्या हुई? एक भी तिनका ऊपर नहीं था। वह अविवेकपूर्ण श्रम था। श्रम के साथ विवेक नहीं था। एक ग्रामीण कुएं के पास गया, बाल्टी पड़ी थी। रस्सी बांधी और पानी निकालना शुरू किया। रस्सी खींचता है, बाल्टी ऊपर आती है, पर खाली रहती है। एक बार, दो बार, चार बार नहीं, अनेक बार ऐसा किया। किन्तु पानी एक बार भी ऊपर तक नहीं आया। क्यों नहीं आया? कुएं में पानी दिखाई दे रहा था। वह असमंजस में पड़ गया। इतने में कोई समझदार आदमी आया। उसने पूछा—‘क्या बात है? क्यों पेशान हो रहे हो?’ ग्रामीण ने कहा—‘कुएं में पानी नीचे दिखाई दे रहा है, फिर भी बाल्टी में पानी नहीं आ रहा है। पता नहीं कहाँ दोष है?’ समझदार आदमी ने कहा—‘बाल्टी की ओर देखो।’ देखा तो बाल्टी में छेद था। उसने कहा—‘पानी निकालने से पूर्व बाल्टी को देखना चाहिए था।’ यह विवेक होना चाहिए। बिना विवेक का पुरुषार्थ सफल नहीं होता। पुरुषार्थ में विवेक न होने से चिड़िया का श्रम सार्थक नहीं हुआ, बाल्टी से पानी भी नहीं निकला। हमारा विवेक जागे और विवेक से इतना पुरुषार्थ करें कि सिद्ध हमें सिद्धि दें। हमें कोई भी सिद्धि देने वाला नहीं है। हमारी पवित्र भावना ही हमें सिद्धि देने वाली है। सिद्धि हमारे भीतर ही हैं और सिद्धि भी हमारे भीतर है। इसका द्वार खुलने पर कोई भी श्रम व्यर्थ नहीं जाएगा।

हमारा पुरुषार्थ ठीक दिशा में चले। हमें सफलता निश्चित मिलेगी। बहुत लोग जप करते हैं, नवकार मंत्र का पाठ करते हैं, पर उन्हें कुछ नहीं मिल रहा है।

कुछ नहीं मिलने के अनेक कारण हो सकते हैं। लक्ष्य का निर्धारण सही नहीं होगा अथवा साधन ठीक नहीं होगा या आप उसको ठीक समझ नहीं पा रहे हैं। यदि, आप इसे ठीक समझ लेंगे तो अवश्य आपको इसका फल मिलेगा।

जप का फल न मिलने में एक बड़ी बाधा है—अहं। वह हमारे भीतर ही है। एक शिष्य गुरु के पास गया। अध्ययन किया, अध्ययन कर जाने लगा तो निवेदन किया—‘गुरुदेव! मैं ये मोहरें दक्षिणा में दे रहा हूँ।’ गुरु ने कहा—‘मैं मोहरों का क्या करूंगा, मुझे मोहरें नहीं चाहिए। तुम्हारे काम आएंगी। देना ही है तो ऐसी चीज दो, जो तुम्हारे लिए काम की नहीं है।’

साधना और सिद्धि—● १४ ●

शिष्य बोला—‘ठीक है।’ बाहर गया। मिट्टी पड़ी थी, वह ले आया। सोचा—जब गुरु नहीं चाहते हैं तो क्या करूं? जाकर बोला—‘गुरुदेव! यह दक्षिणा मैं देना चाहता हूं।’ गुरु ने कहा—‘बड़े मूर्ख हो।’ तभी मिट्टी बोल पड़ी—‘मुझे व्यर्थ समझा है। अगर मैं न होऊं तो सारे भूखे मर जाएंगे। अनाज कहां पैदा होगा? फल, फूल, अनाज ये सब मिट्टी की ही देन हैं और मुझे व्यर्थ मान रहे हो?’

गुरु ने कहा—‘जाओ, यह व्यर्थ नहीं है।’ चला गया। सोचा दूसरी चीज क्या लाऊं? पत्थर सामने पड़ा है। यह व्यर्थ है। पत्थर के टुकड़े को लाया। बोला—‘गुरुदेव! यह दक्षिणा है। इसका कोई उपयोग नहीं है। यह काम का नहीं है।’ इतने में पत्थर बोल पड़ा—‘बड़े बेवकूफ आदमी हो, तुम्हें पती ही नहीं, अगर मैं न होऊं तो कोई मकान नहीं बनेगा। मेरा बहुत अधिक उपयोग है। मुझे कैसे व्यर्थ मान रहे हो?’ गुरु ने कहा—‘देखो, यह भी व्यर्थ नहीं है, निकम्मा नहीं है। दूसरी चीज लाओ, जो व्यर्थ हो।’

बाहर गंदगी पड़ी थी। कचरे के ढेर में से थोड़ी गंदगी उठा ली, सोचा—इससे तो व्यर्थ कोई चीज दुनिया में नहीं होगी। गुरु के समीप लाया और निवेदन किया—‘गुरुदेव? गंदगी की दक्षिणा लीजिए।’ इतने में गंदगी बोल उठी—‘अगर मैं न होऊं तो खाद नहीं होगी। तुम्हारी फसल भी अच्छी न बनेगी। तुम्हारी फसल अच्छी बनने का कारण मैं ही हूं। अनाज को देखो। पहले खाद डालेंगे, फिर वह पैदा होगा।’

गुरु ने कहा—‘यह भी व्यर्थ नहीं है।’

उसने सोचा—लाने के लिए और क्या शेष रहा है? दुनिया में सबसे निकम्मी चीज गंदगी थी, वह भी व्यर्थ नहीं है। लम्बे समय तक सोचता रहा। फिर अकस्मात् अन्तश्चेतना जागी। मेरे भीतर एक अहं छिपा हुआ है, अहं के कारण ही मैं सब चीजों को व्यर्थ मान रहा हूं। वही सबसे ज्यादा व्यर्थ है, जो दूसरे को व्यर्थ मानता है, निकम्मा मानता है। बोला—‘गुरुदेव! मेरे पास और तो कुछ नहीं है, यह अहं ही है, जो दूसरों को व्यर्थ मान रहा है। यही आपको मैं दक्षिणा में देता हूं।’ गुरु ने प्रसन्नता से सिर पर हाथ रखा, आशीर्वाद दिया—‘वत्स! चिरंजीवी बनो। तुमने आज मुझे वैसी दक्षिणा दी है, जैसी किसी ने नहीं दी।’ सचमुच जब हमारा यह अहं विलय हो जाए, सिद्धि हमारे आंगन में नर्तन करेगी। वह हमारी आंखों के सामने है। कहीं जाने की जरूरत नहीं है। कुछ करने की भी जरूरत नहीं है। सिद्धि भीतर से अपने आप प्रगट होगी।

अहं के विलय से होने वाली भावशुद्धि जैन धर्म का मर्म है। जब तक चेतना पर क्रोध, अहंकार, माया और लोभ का प्रभाव बना रहता है, तब तक भावविशुद्धि नहीं होती। जब कषाय मंद होता है, तब भावविशुद्धि होती है।

साधना और सिद्धि ————— ● १५ ●



उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर ने कहा—‘ भावविसोहिं कारुण निब्भए भवइ ’—  
भाव की विशुद्धि करो, अभय बन जाओगे। इस दुनिया में अभय से बढ़कर कोई  
सिद्धि नहीं है। भय से बढ़कर कोई कष्ट नहीं है। चारों तरफ भय ही भय है। भय  
समाप्त होने पर दुनिया में कोई कष्ट नहीं है। राजा, सामन्त, पड़ोसी, परिवार किसी  
को भी कष्ट नहीं है। भावविशुद्धि के बिना आदमी अभय नहीं बनता।

सबसे बड़ा मंत्र है— भावविशुद्धि, मन की निर्मलता, चित्त की निर्मलता।  
इसका विशेष अभ्यास करो। जिस दिन भावविशुद्धि का मंत्र हाथ में आ जाएगा,  
सिद्धि स्वयं प्राप्त हो जाएगी। अनुष्ठान का यह समय सब दृष्टियों से पवित्र समय है।  
इस पवित्र समय में भावविशुद्धि का ऐसा अनुष्ठान और ऐसा प्रयोग करें, जिससे  
शरीर का हलकापन, मन का हलकापन, भावविशुद्धि प्राप्त हो जाए। निष्ठापूर्वक  
प्रयोग करें और अनुभूति के स्तर पर जाने का प्रयास जारी रखें।

## सिद्धि की साधना और प्रयोग

‘चन्देसु निम्मलयरा’ का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इस प्रयोग में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। आपने शंकर के सिर पर चन्द्रमा को देखा होगा। चन्द्रमा का अपने ललाट पर ध्यान करें। सिर में दर्द नहीं होगा। गुरुदेव के पास सरदारशहर की एक बहिन आई। उसने कहा—‘सिर में भयंकर वेदना रहती है। न माला फेर सकती हूँ, न सामायिक कर सकती हूँ।’ गुरुदेव ने उसे ललाट पर सफेद रंग का प्रयोग लम्बे समय तक करने का सुझाव दिया। उसने सघन आस्था के साथ प्रयोग किया और सफल हो गई। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। ‘चन्देसु निम्मलयरा’—यह मृत्युंजय महामंत्र का काम भी करता है। जिन लोगों को भयंकर गुस्सा आता है, वे लम्बे समय तक ‘चन्देसु निम्मलयरा’ का सफेद रंग के साथ ललाट पर ध्यान करें तो गुस्सा संतुलित हो जाता है, समस्या समाहित हो जाती है।

गंगाशहर चातुर्मास, वि. सं. २०३५। गुरुदेव शांतिनिकेतन के सामने महिला मण्डल के भवन में विराजते थे। मैं शांतिनिकेतन के ऊपर कमरे में बैठा था। वहाँ से मैं गुरुदेव के पास जा रहा था। सीढ़ियों से नीचे उतरा। वहाँ एक बहिन खड़ी थी। वह मुम्बई निवासी जेठाभाई जवेरी की पुत्रवधू थी। उसका पति अरुणभाई प्रेक्षाध्यान का अच्छा प्रशिक्षक है। वैज्ञानिक दृष्टि से अच्छा प्रयोग कराने वाला है। मुनि महेन्द्रकुमारजी का छोटा भाई। जैसे ही उस बहिन ने दर्शन किये, फूट-फूट कर रोने लगी। मैंने सोचा—यह क्या हुआ? उससे पूछा—‘तुम कब आ गई? तुम्हारे रोने का क्या कारण है?’ लेकिन वह एक-दो मिनट तक रोती रही और कुछ भी नहीं बोली। मैंने सोचा—क्या बात है। हम तो अभी-अभी आए हैं। किसी ने इसे कुछ कहा भी नहीं, फिर रो क्यों रही है? थोड़ी देर बाद वह कुछ आश्वस्त और शान्त हुई। बोली—‘मेरे ये आंसू दुःख के नहीं, हर्ष के आंसू हैं। मेरा घर नरक बन गया था, आपने उसे स्वर्ग बना दिया। मेरे पति अरुणभाई ने जर्मनी में इंजीनियरिंग की पढ़ाई की। बुरी संगत के कारण नशे की आदत हो गई। सिगरेट के चैनस्मोकर बन गए। गुस्सा भी इतना अधिक बढ़ गया कि भोजन के लिए भी मुझे कहना होता तो दो बार सोचती कि कहूँ या न कहूँ? एक बार मैंने उनसे भोजन के

लिए कहा तो उन्हें इतना गुस्सा आया कि सामने रखे टेलिफोन को तोड़ दिया। अब वह देवता जैसे बन गए हैं। यह परिवर्तन कैसे हुआ?’

अरुणभाई ने प्रेक्षाध्यान का शिविर लिया। शिविर के बाद वह मुम्बई गया। पत्नी ने पूरे दिन उसे गौर से देखा। उसे लगा कि कुछ परिवर्तन आया है। बात-बात पर होने वाला गुस्सा गायब था। दो-तीन दिन तक वह उसे गहराई से देखती रही। फिर अपने श्वसुर ई, जो प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षक, वैज्ञानिक और जैनविद्या के मर्मज्ञ थे, से कहा—‘अरुण बिल्कुल बदल गए हैं। उन्हें अब गुस्सा नहीं आता है।’ जेठाभाई बोले—‘अभी इतनी जल्दी कोई राय मत बनाओ। नया मुल्ला ज्यादा बांग देता है। थोड़े दिन ठहरो, फिर देखो। बदलाव का पता कुछ दिन बाद चलेगा। यह वही है, इस ज्ञान का होना प्रत्यभिज्ञा प्रमाण है। साधना के द्वारा व्यक्ति स्वयं का इतना रूपान्तरण कर लेता है कि उसे पहचान पाना सहज संभव नहीं होता।’

यह चंद्रमा का ध्यान, चन्देषु निम्मलयरा का प्रयोग भयंकर गुस्से को संतुलित करता है। जिन लोगों ने इसका अभ्यास किया है, आज वे बड़ी शांति का जीवन जी रहे हैं।

‘आइच्चेसु अहियं पयासयरा’ दर्शनकेन्द्र पर सूर्य के प्रकाश का अथवा बालसूर्य का ध्यान अन्तर्दृष्टि के जागरण का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इसका अभ्यास करने वाला तीसरे नेत्र का उद्घाटन कर सकता है, अथवा इन्ट्यूशन पावर को जागृत कर सकता है। इस प्रयोग को करने वाला बाहरी पढ़ाई पर निर्भर नहीं रहता। उसकी अतीन्द्रिय चेतना के स्रोत खुल जाते हैं।

‘सागरवर गंभीरा’ यह प्रयोग विशुद्धिकेन्द्र पर किया जाता है। यह हमारे शरीर में चयापचय क्रिया का स्थान है। इसका पाचनतंत्र और स्वास्थ्य के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। पाचनतंत्र का सम्बन्ध वृत्तियों के साथ जुड़ा हुआ है। आहार और वृत्तियों का भी गहरा सम्बन्ध है। वृत्तियों के व्यक्त और अव्यक्त होने में आहार का बहुत बड़ा योग है। अगर आपका आचरण स्वस्थ है तो चिन्तन भी स्वस्थ होगा। मस्तिष्क स्वस्थ होगा तो सब कुछ स्वस्थ रहेगा। पाचन ठीक नहीं है तो अपान दूषित हो जाएगा। जिसका अपान दूषित है, उसमें नकारात्मक, दृष्टिकोण (Negative Attitude), नकारात्मक सोच (Negative Theinking), नकारात्मक कल्पना, अनिष्ट भावना, आत्महत्या की भावना आदि पैदा होंगे। दूषित अपान के कारण मस्तिष्क निर्मल नहीं रह सकता। बहुत महत्त्वपूर्ण बात है मस्तिष्क को पवित्र रखना, मस्तिष्क की शक्ति का विकास करना। ये तीनों पद हमारी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक शक्तियों के विकास में निमित्त बनते हैं।

हम कोई भी पाप करें, अथवा पाठ करें, उसके अर्थ का बोध होना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूँ। यदि उसका ज्ञान नहीं है तो उसका मात्र पचीस प्रतिशत लाभ मिलेगा। यदि साठ प्रतिशत लाभ उठाना चाहते हैं तो ध्वनि तरंगों के साथ भावना

साधना और सिद्धि—● १८ ●

और उसके साथ अर्थचिंतन—इन सबका योग करना होगा। ध्वनि तरंगों हमें प्रभावित करती हैं। भावना उसमें शक्ति भरती है और अर्थ का बोध तादात्म्य जोड़ता है कि मैं क्या कर रहा हूँ—अपने इष्ट के साथ एकात्मक हो रहा हूँ, लीन हो रहा हूँ। इन सबका योग होना आवश्यक है। एक बार आप फिर याद करें—शुद्ध उच्चारण के साथ ध्वनि तरंगों का प्रभाव, अर्थबोध के साथ इष्ट से तादात्म्य और भावना से शक्ति का संप्रेषण होता है। यह बहुत शक्तिशाली मंत्र है।

प्रतिक्रमण में लोगस का पाठ है, वह बहुत से भाइयों और बहिनों को कंठस्थ है। ‘लोगस्स’ स्वयं बहुत शक्तिशाली मंत्र है। इसका एक पूरा कल्प है। उसके एक पद्य का मैंने विवेचन किया है। एक ही पद्य पर आप ध्यान केंद्रित करें। जब आप उच्चारण करें ‘चन्देसु निम्मलयरा’ तब आपका ध्यान ललाट के मध्य ज्योतिकेन्द्र पर चला जाए और तत्काल सफेद रंग सामने आ जाए। ‘आइच्चेसु अहियं पयासयरा’ के उच्चारण के साथ ध्यान भृकुटि के मध्य दर्शनकेन्द्र पर चला जाए और तत्काल बालसूर्य जैसा अरुण रंग सामने आ जाए। जब आप ‘सागरवर गंभीरा’ का उच्चारण करें, तब आपका ध्यान कण्ठ, विशुद्धिकेन्द्र पर चला जाए और तत्काल नीला रंग, बैंगनी रंग या गुलाबी रंग सामने आ जाए। जब आप ‘सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु’ का उच्चारण करें तो ध्यान ज्ञानकेन्द्र, मस्तिष्क पर चला जाए और तत्काल सफेद रंग सामने आ जाए। ऐसा अनुभव करें कि परम आत्मा के साथ मेरा संपर्क स्थापित हो रहा है। मैंने श्रमण महावीर में लिखा—‘मैंने महावीर के साथ सम्पर्क किया।’ बहुत लोग आए और प्रश्न करने लगे—‘महावीर के साथ संपर्क कैसे स्थापित कर सकते हैं?’ मैंने कहा—‘कैसे कर सकते हैं, इस बात को मत पूछो। जानने वाला ही जानेगा। हर कोई व्यक्ति कैसे जानेगा? यह एक प्रयोग है। आप प्रयोग करके देखें। तीन आवृत्तियां प्रतिदिन करें। आप जिस दिन शुरू करें, ध्यान दें—शरीर और मन की स्थिति क्या है? एक महीने के बाद आप अपना निरीक्षण करें कि आप किस स्थिति तक पहुंच गए हैं? लक्ष्य की सिद्धि के लिए सिद्धि का ध्यान और सिद्धि का संकल्प सफलता का अमोघ उपाय है।’

सिद्धि के ध्यान और संकल्प की सिद्धि में सबसे बड़ी बाधा है—मन की चंचलता। यदि व्यक्ति मन की चंचलता के हेतुओं को जाने और उन्हें मिटाने का प्रयास करे तो सिद्धि और सफलता की दिशा उद्घाटित हो सकती है।

मन की चंचलता के आन्तरिक हेतु हैं—वात, पित्त और कफ। आयुर्वेद में आरोग्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है—‘दोषसाम्यं आरोग्यम्।’ दोष का अर्थ है—वात, पित्त और कफ। दोष का साम्य होना—वात, पित्त और कफ का संतुलित रहना आरोग्य है। ‘दोषवैषम्यं रोगः’—दोष की विषमता रोग है।

व्यक्ति को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है—वात। कफ और पित्त को पंगु

साधना और सिद्धि ————— ● १९ ●



कहा गया है। इनको संचालित करने वाला है—वात। बहुत बार हम स्वयं उलझ जाते हैं, स्वयं पर नियंत्रण नहीं कर पाते। उस समय वात पर ध्यान देना चाहिए। वात के उग्र होने से अनेक समस्याएं पैदा होती हैं।

पहली समस्या है—जड़ता। मन और शरीर जड़ीभूत हो जाते हैं। सक्रियता समाप्त हो जाती है। निष्क्रियता बढ़ती है, फलस्वरूप शरीर में आलस्य आता है। किसी भी काम में मन नहीं लगता।

दूसरी समस्या है—अस्थिरता। वायु के कुपित होने पर व्यक्ति स्थिर नहीं रह सकता। कभी इधर बैठता है, कभी उधर बैठता है। कभी खड़ा होता है, कभी सोता है। उसका मन चंचल हो जाता है। वह किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाता है। कभी वह सोचता है—यह कार्य मेरे लिए हितकर है, तो दूसरे ही क्षण वह चिंतन करता है कि नहीं, यह कार्य मुझे नहीं करना है। उसका चिंतन भी स्थिर नहीं रहता।

तीसरी समस्या है—भय। वायु की अधिकता के कारण मन चंचल बन जाता है। चंचल व्यक्ति निरंतर सोचता रहता है। अनवरत सोच के कारण भय पैदा होता है। व्यक्ति आकारण ही भयभीत रहने लगता है। रात में नहीं, दिन में भी अकेले रहने से कतराता है। भय के कारण वह अकेला नहीं रह सकता। बहुत-से लोग हमारे पास आते हैं और कहते हैं—अकारण भय लगता है। इसका कारण है वायु का प्रकोप। वायु बढ़ती है, भय बढ़ जाता है।

चौथी समस्या है—शून्यता। वायु कुपित होने पर शून्यता बढ़ती है। व्यक्ति सन्न रह जाता है। फिर वह किसी कार्य को सम्यक् प्रतिपादित नहीं कर सकता है। वह अपने आपको प्राणशक्ति विहीन अनुभव करने लगता है।

पांचवीं समस्या है—विस्मृति। वायु का प्रकोप अधिक होने पर व्यक्ति की स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है। मैंने इस बात को अनेक बार अनुभव किया है। एक मुनि से कहा—‘कमरे से अमुक पुस्तक लेकर आओ।’ मुनि भीतर गए और खाली हाथ लौट आए। पूछा—‘पुस्तक नहीं लाए?’ उत्तर दिया—‘भूल गया।’ वायु के कारण विस्मृति बढ़ती है। वर्तमान में विस्मृति की समस्या जटिल बन रही है। कुछ दिनों पूर्व एक भाई आया था। कुछ दिन सेवा की। घर जाते समय पूछा—‘मैं भुलकड़ हूं। मेरी स्मृति कैसे बढ़े, कृपा कर इसका उपाय बताएं।’ मैंने कहा—‘अब तुम जा रहे हो और समस्या का समाधान पाना चाहते हो? हमारे पास विस्मृति को दूर करने का कोई जादुई नुस्खा नहीं है।’

विस्मृति की समस्या को समाहित करने के लिए सबसे पहले शरीर के स्तर पर खोज करनी चाहिए कि शरीर में कहीं वायु का प्रकोप तो नहीं बढ़ रहा है? यदि मालूम पड़े कि वायु का प्रकोप है तो साधना की दृष्टि से उसका उपचार करना चाहिए। आयुर्वेद में वायु की पहचान भूतज चिह्नों से की गई है। कुछ लोग कहते

साधना और सिद्धि—● २० ●

हैं—भूत लग गया। इसका अर्थ है वायु की बीमारी हो गई। वायु की बीमारी हो गई तो समझें भूत लग गया। विस्मृति इस भूत का ही लक्षण है। इससे व्यक्ति भुलकड़ स्वभाव वाला बन जाता है। उसे कुछ भी याद नहीं रहता।

छठी समस्या है—थकान। वायु कुपित होने पर थकान की अनुभूति होती है। थोड़ा-सा काम करते ही शरीर थक जाता है, पसीना आ जाता है। वायु के प्रकोप से शरीर में सुस्ती छाई रहती है। खाने-पीने, पढ़ने में मन नहीं लगता।

सातवीं समस्या है—अरति। वायु कुपित होने पर चित्त में रति नहीं रहती, आनंद नहीं रहता। व्यक्ति डिप्रेशन में चला जाता है, मुरझाया, कुम्हलाया-सा रहता है। हर समय तनावग्रस्त जीवन जीता है। उसका चित्त घूमता रहता है। आगमसूत्रों का पारायण करता है, पर यह पता नहीं चलता कि कितना पारायण किया।

वायु का वेग प्रबल होने पर ये सारे लक्षण घटित होते हैं—अस्थिरता, जड़ता, भय, शून्यता, थकान और अरति। इन समस्याओं से घिरे रहने के कारण व्यक्ति ज्ञान, आनंद और शक्ति का विकास नहीं कर सकता। इसलिए आन्तरिक निमित्तों पर भी विचार करना चाहिए। मन की यह स्थिति है तो किस आन्तरिक निमित्त पर ध्यान देकर समस्या का समाधान करूं ?

जो व्यक्ति जागरूक है, भ्रमणशील है, नियमित आसन, प्राणायाम करता है, भोजन करते समय विवेक रखता है, आलस्य बढ़ाने वाले तत्त्वों का सेवन नहीं करता, तली और चटपटी वस्तुओं का सेवन नहीं करता, वह वायु के प्रकोप से स्वयं को बचा सकता है। इन सब बातों पर ध्यान देकर हम मन की स्थिति को सुधार सकते हैं, अध्यात्म की दिशा में गति कर सकते हैं।

सिद्धि के लिए साधना के प्रयोग आवश्यक हैं और प्रयोग की सफलता के लिए एकाग्रता का विकास। हम इस सच्चाई का अनुशीलन करें, चंचलता को कम करना सीखें, साधना निश्चित ही फलवती होगी।

## शिवसंकल्पमस्तु मे मनः

उपनिषद् का एक बहुत सुन्दर सूक्त है कि मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला बने। मैं चार दशकों में होने वाले तेरापंथ के विकास को देखा रहा हूँ। उसका आधार क्या है? हेतु क्या है? लोग कहते हैं—भाग्य था। मैं मानता हूँ भाग्य साथ देता है तब कि वास होता है पर मूल कारण क्या था? मूल कारण था संकल्प। आचार्य तुलसी के मन में समय-समय पर अनेक संकल्प पैदा हुए। उनका संकल्प पका हुआ था, सिद्ध बना हुआ था। इसलिए जो चिन्तन किया, उस चिन्तन को आकार लेना ही पड़ा। निराकार को आकार देने वाली शक्ति है—संकल्प। हमारा संकल्प मजबूत है तो निराकार भी आकार ले लेता है। सपना साकार बन जाता है, कल्पना भी साकार बन जाती है।

आगम सम्पादन का कार्य बहुत महत्वपूर्ण कार्य था। एक कल्पना उठी, संकल्प बना और साकार हो गया। दृढ़ संकल्पशक्ति के कारण यह कार्य निरन्तर आगे बढ़ रहा है। हर आदमी का संकल्प इतना मजबूत नहीं होता। यदि तुम संकल्पशक्ति का विकास करना चाहते हो तो प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोगों द्वारा उसे विकसित कर सकते हो। अपने संकल्प को एक पत्रे में लिखो। लिखकर उस पर दस मिनट तक एकाग्र हो जाओ। श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा और लेश्या ध्यान का प्रयोग करते समय श्वास, शरीर और रंग पर जैसे ध्यान केन्द्रित करते हैं, वैसे ही निश्चित शब्दावली पर ध्यान केन्द्रित करो—‘मैं प्रतिदिन बीस श्लोक कंठस्थ करूँगा। फिर पत्रे पर लिखे हुए अक्षरों को पढ़ो। उन पर ध्यान केन्द्रित करो। जैसे श्वास को देखते हैं, वैसे ही एक-एक अक्षर को देखो। मैं...प्रतिदिन...बीस...श्लोक...कंठस्थ...करूँगा। गहरी एकाग्रता का अनुभव करो।’ यह ध्यान का आलंबन बन गया, एकाग्रता का साधन बन गया। दस दिन, बीस दिन और एक महीने की साधना के बाद संकल्प सिद्ध हो जायेगा। बीस श्लोक कंठस्थ करने की क्षमता आ जायेगी। अगर पांच श्लोक सीखने की क्षमता है तो बीस तक पहुंच जायेगी। यह एक उदाहरण है। जो काम करना है पहले उसकी कल्पना करें। फिर संकल्प करें, धीरे-धीरे संकल्प आकार लेने लग जायेगा। शायद इसीलिए कहा गया है—‘संकल्पजा सृष्टि’—हमारी सृष्टि

साधना और सिद्धि—● २२ ●

संकल्प से पैदा हुई है।

पौराणिक लोग मानते हैं कि ब्रह्मा ने संकल्प किया और सृष्टि की रचना हो गई। इस माइथोलोजी को कोई माने या न माने किंतु यथार्थ को मानने की संकल्पजा सृष्टि निश्चित होती है। संकल्प को इतना मजबूत बना लें, उसके लिए समर्पित हो जाएं यानी संकल्प के साथ तादात्म्य स्थापित कर लें। केवल अक्षरों को ही नहीं पढ़ें, एकमेक हो जायें, दूध में चीनी घुल जाये, पता ही नहीं चले कि चीनी कहां है और दूध कहां है? उसी प्रकार उन अक्षरों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लें। आप साधना करें, संकल्प सिद्ध हो जायेगा, पक जायेगा। यह अनुभव की बात है। समय-समय पर हमने अनेक संकल्प किये कि अमुक काम करना है। उन विषयों पर एकाग्र बने और ऐसा लगा कि काम सरल हो रहा है।

हमारी तीन शक्तियां हैं—

- (१) इच्छा की शक्ति
- (२) एकाग्रता की शक्ति
- (३) कल्पना की शक्ति।

तीनों का योग मिलने पर हमारा संकल्प पुष्ट बन जाता है। सुदर्शन सफल क्यों बना? हम विचार करें। इच्छा शक्ति पैदा हुई कि मैं भगवान महावीर के दर्शन करने जाऊंगा। मन में कल्पना आई—मुझे जाना है। फिर संकल्प मजबूत बन गया। भीतर की शक्ति जाग गई। जब अर्जुन-मालाकार सामने आया, संकल्पशक्ति का प्रस्फोट हो गया। संकल्पशक्ति मजबूत है तो यक्ष भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

संकल्पशक्ति के द्वारा आदमी समस्याओं को पार कर सकता है और नया निर्माण कर सकता है। इस शक्ति-साधना के पर्व पर हर व्यक्ति को चिंतन करना है कि मेरा निश्चय दृढ़ कैसे बने? संकल्प मजबूत हो जाए तो देवता भी झुक सकते हैं। महावीर के संकल्प के सामने देवता को भी झुकना पड़ा—**जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तंजहा—दिव्वा वा, माणुसा वा, तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुपण्णे समाणे अणाइले अव्वहिए अद्दीणमाणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्मं सहिस्यामि खमिस्सामि अहियासइस्सामि।**

दीक्षा लेते ही महावीर ने संकल्प किया था कि देवता, मनुष्य और तिर्यञ्च संबंधी जो भी उपसर्ग आयेंगे, मैं उनको सहन करूंगा, उनसे पराजित नहीं बनूंगा उस संकल्प के कारण महावीर अनेक कष्टों को झेलने में समर्थ बन गये। संकल्प कमजोर होने पर व्यक्ति सफल नहीं होता।

एक कमजोर आदमी था। रात्रि में हमेशा देरी से आता। पत्नी ने कहा—‘भले आदमी हो, रोज रात को दस बजे आते हो, अच्छी बात नहीं है।’ वह बोला—‘तुम क्या बात करती हो, आज तो आ गया, वह तुम्हारा सौभाग्य समझो। रास्ते में

साधना और सिद्धि

दस चोर मिले, उनको पछाड़ा। यह किया, वह किया, बस लम्बी कहानी शुरू कर दी। तुम्हारी चुनड़ी और यह चूड़ियां रहनी थीं, इसलिए सुरक्षित पहुंच गया।' हमेशा डींगें हांकता, आज मेरे साथ यह हुआ, वह हुआ। पत्नी ने सोचा—आखिर बात क्या है? एक दिन वह स्वयं वेश बदल कर जंगल में चली गई। जोर-जोर से आवाज देने लगी—'यह गठरी यहां रख दो।' जंगल में ऐसी आवाज सुनकर पति घबरा गया। उसने गठरी रख दी और धीरे-धीरे बहुत देर से रात्रि में घर आया। पत्नी ने कहा—'आज फिर इतनी देर कर दी।' 'आज तो तुम कुछ मत पूछो, आज की बात तो भगवान जाने। मैं घर आ गया, वही ठीक है। आज रास्ते में बीस चोर मिल गये थे। यह किया, वह किया, किसी को हाथ से पछाड़ा किसी को पांव से पछाड़ा', इस प्रकार गप्पें हांकनी शुरू की। 'उन्होंने मेरी गठरी भी ले ली और साथ में चांटा भी जड़ दिया।' पत्नी बोली—'भले आदमी! क्यों झूठ बोलते हो? यह देखो तुम्हारी गठरी। मैं ही थी, कोई चोर नहीं था।' 'अच्छा तू ही थी, तब मैं समझ गया कि पोला-पोला हाथ तो पोपलै की मां कही है।' कोरी गप्पें हांकने वाला कुछ भी कर नहीं पाता। वही व्यक्ति सफल होता है जिसका सचाई पर दृढ़ निश्चय होता है। उसके द्वारा किया गया कार्य सिद्धि तक पहुंच जाता है। संकल्प को मजबूत करने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति और गहरी एकाग्रता हो तो संकल्पजा सृष्टि को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

## केन्द्र में आत्मा रहे

आध्यात्मिक प्रयोग और आध्यात्मिक प्रवचन। आध्यात्म को समझना बहुत आवश्यक है। इस दशक में बहुत अधिक प्रचलित होने वाला शब्द है—अध्यात्म। सबसे पहले अध्यात्म शब्द का अर्थ समझना जरूरी है। **अधि आत्मानं अध्यात्मम्, आत्मानमधिकृत्य या क्रिया प्रवर्तते तद् अध्यात्मम्**। जो आत्मा में है वह आध्यात्म है। आत्मा को केन्द्र में रखकर जो क्रिया या प्रवृत्ति की जाती है वह अध्यात्म है।

आत्मा को मानने वाले भी अध्यात्म की बात करते हैं। आज वे लोग, जो आत्मा को नहीं मानते, वे भी अध्यात्म की बात करते हैं।

आत्मा को हम छोड़ दें तो अध्यात्म का कोई अर्थ नहीं होगा। सब कुछ आत्मा की परिधि में चले। जो भी काम करें, खाएं, पीएं, बोलें, चलें, आत्मा की विस्मृति न हो—एक बहुत बड़ी साधना है। आत्मा की सतत स्मृति रहे कि मैं आत्मा हूं। आत्मा को विस्मृत कर कोई कार्य तो नहीं कर रहा हूं? एक आत्मा की स्मृति रहे, शेष सारा पौद्गलिक जगत् है। प्रभाव तो सारा उसी का है। श्वास भी उसी का है, परिवेश भी उसी का है। सामने क्या? बाहर क्या? भीतर क्या? पुद्गल ही पुद्गल है। इस दृश्य जगत् में सब कार्य पुद्गल से ही सम्पन्न हो रहे हैं। पुद्गलों से ही सारा खेल हो रहा है। कौन-सी ऐसी वस्तु है जो पुद्गल नहीं है? जितनी भी वस्तुएं बताई जा सकती हैं, देखी जा सकती हैं, कही जा सकती हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।

आत्मा का कार्य हे जानना। यह पुद्गल का लक्षण नहीं है। इसलि अध्यात्म में कहा जाता है ज्ञाता, द्रष्टा बनो। उसके लिए पुद्गल की जरूरत नहीं है, भीतर की चेतना की आवश्यकता है। यह चेतना जागृत हो कि मैं आत्मा हूं, ज्ञाता और द्रष्टा हूं। किन्तु व्यापार जितना भी करेंगे, प्रवृत्ति जितनी भी करेंगे, योग जनित प्रवृत्ति यानी मन, वचन, काया की प्रवृत्ति— यह पुद्गल की प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के दो प्रकार बतलाए गए हैं— शुभ प्रवृत्ति और अशुभ प्रवृत्ति। शुभ योग प्रवृत्ति भी पौद्गलिक प्रवृत्ति है, पुद्गल से होने वाली है। पुद्गल हमारे सहायक भी बनते हैं, बाधक भी बनते हैं। आत्मा को लक्ष्य में रखकर की जाने वाली प्रवृत्ति आध्यात्मिक

साधना और सिद्धि

• २५ •



प्रवृत्ति है। इस संदर्भ में हरिभद्र का सूक्त उचित प्रतीत होता है—

‘मोक्खेण जायेणाओ जोओ सव्वो वि धम्मवावारो’ जो प्रवृत्ति मोक्ष से सम्बन्ध स्थापित करती है वह योग है। बातचीत करना, खाना, बोलना, बैठना, उठना आदि सारा व्यापार योग है—यदि वह मोक्ष से जुड़ा हुआ है।

कुछ दिनों पहले एक भाई ने बताया था कि एक व्यक्ति को प्रयोग कराया गया—कैसे खड़े हों? कैसे बैठें, कैसे सोएं? इनका प्रशिक्षण दिया गया। उसमें इतनी भीड़ हो गई कि लोगों को बैठने के लिए स्थान भी नहीं मिला। हिन्दुस्तान में यह प्रयोग दाल-रोटी हो गया। लोग ध्यान भी नहीं दे रहे हैं। केवल कैसे खड़े हों? कैसे बैठें? और कैसे सोएं? इनका प्रशिक्षण और पन्द्रह सौ रुपया फीस।

पाश्चात्य लोग अपनी जीवन शैली के प्रति जागरूक हैं। संयमपूर्वक चलना, बैठना, सोना सारी आध्यात्मिक क्रिया है। केवल ध्यान करना ही आध्यात्मिक क्रिया नहीं है। लोगों को समझाना भी आध्यात्मिक क्रिया है। लोगों से धर्म की बात करना, कलहशामक बात करना, उनके कलह को मिटाना भी आध्यात्मिक क्रिया है। संयमपूर्वक खाना भी आध्यात्मिक क्रिया है और उपवास करना भी आध्यात्मिक क्रिया है। बैल कोल्हू के पारिपार्श्व में घूमता रहता है। यह बहुत बड़ी साधना है। आत्मा को केन्द्र में रखकर उसके परिपार्श्व में काम करना बहुत बड़ी साधना है। आध्यात्मिक क्रिया से हटकर, बाहर जाकर कोई भी क्रिया होगी वह पुद्गल से जुड़ी हुई होगी।

वर्तमान युग अध्यात्म का युग है। हमें अध्यात्म को गहराई से समझने का प्रयत्न करना है।

## उद्घाटन अन्तश्चक्षु का

मनुष्य के पास दो आंखें हैं उन्हें चर्मचक्षु कहा जाता है। देवता के ये चर्मचक्षु नहीं होते। मनुष्य और देवता के शरीर की बनावट में अन्तर है। देव-शरीर के पुद्गल मनोज्ञ होते हैं, शरीर तेजस्वी होता है, उनके पैर भूमि से चार अंगुल ऊपर रहते हैं। रोहिणेय चोर ने महावीर के प्रवचन में एक बार सारी बातें सुनीं। जब अभयकुमार ने उसके सामने देवलोक का दृश्य प्रस्तुत किया तब उसे महावीर के शब्द याद या गए। वह समझ गया—मेरे साथ छलना हो रही है। देवता की आंखें अनिमेष होती हैं, इस दृश्य में पलक झपक रही है।

देवता का चक्षु अवधिज्ञान होता है। जब आवश्यकता होती है अवधिज्ञान का प्रयोग कर देख लेते हैं। केवलज्ञान सर्वतः चक्षु है। केवलज्ञानी के पूरे शरीर में आंख होती है।

ज्ञान और शरीर का संबंध जुड़ा हुआ है। चैतन्य की रश्मियों के बाहर निकलने में शरीर माध्यम बनता है। हमारे शरीर में अनेक चैतन्य केन्द्र हैं जिनमें से ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलती हैं। नंदी सूत्र में ज्ञान का विस्तार से विवेचन किया गया है। एक प्रकार का अवधिज्ञान आगे के विषय को जानता है, पृष्ठवर्ती विषय को नहीं जानता। आगे की आंख खुल जाती है, पीछे की आंख नहीं खुलती। एक प्रकार का अवधिज्ञान पृष्ठवर्ती विषय को जानता है। पीछे की आंख खुलती है, पीछे से सब कुछ देखता है, आगे नहीं देख पाता। एक प्रकार का अवधिज्ञान पार्श्वतः यानी दायें, बायें को जानता है। दायें पार्श्व का अवधिज्ञान दाईं ओर से सब कुछ जानता है। बाएं पार्श्व का अवधिज्ञान बाईं ओर से सब कुछ जानता है। मस्तक का अवधिज्ञान समग्रता से चारों ओर देखता है। टार्च का प्रकाश एक दिशा में जाएगा। लालटेन या मोमबत्ती का प्रकाश चारों दिशाओं में फैल जाएगा। हमें इतना ज्ञात था कि अवधिज्ञान आगे से होता है, पीछे से होता है, चारों ओर से भी होता है। हमारे चैतन्यकेन्द्र आगे भी हैं, पीछे भी हैं, ऊपर भी हैं पर पार्श्वभाग वाले चैतन्यकेन्द्र विमर्शनीय हो रहे थे।

एक बार गुरुदेव मोमासर विराज रहे थे। एक अमेरिकन, जो सूफी सम्प्रदाय

को मानने वाला था, वहां आया। हमने पूछा—इस छोटे-से देहात में तुम कहां से आ गए? उसने कहा—ध्यान (सम्प्रदाय) की खोज में मैंने पूरा विश्व भ्रमण कर लिया। खोजते-खोजते मुझे पता लगा कि आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में प्रेक्षाध्यान का प्रयोग चलता है। इसलिए मैं यहां आ गया। एक महीने तक हमारे साथ रहा। जाने से पूर्व एक दिन उससे बातचीत की। हमने पूछा—तुम सारे विश्व में घूम चुके हो, तुम्हें ध्यान का सबसे अच्छा प्रयोग कौनसा लगा? उसने कहा—मैंने अरब कन्ट्रीज, यूरोप, अमेरिका आदि देशों में ध्यान की विभिन्न पद्धतियों को देखा किन्तु सबसे बढ़िया प्रयोग लगा—कायोत्सर्ग। पुनः हमने पूछा—चैतन्यकेन्द्र का प्रयोग अच्छा नहीं लगा? उसने कहा—चैतन्यकेन्द्र का प्रयोग भी अच्छा है। हमारे सूफी सम्प्रदाय में भी पार्श्ववर्ती दो चैतन्यकेन्द्र बतलाए गए हैं, बहुत अधिक शक्तिशाली हैं। मैंने इस बात को गहराई से पकड़ लिया। नंदी सूत्र में लिखा है—दाएं पार्श्व से और बाएं पार्श्व से भी अवधिज्ञान होता है। ये दो चैतन्यकेन्द्र हैं। बात पूरी समझ में आ गई। मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि इस विषय में उस व्यक्ति की बात से हमारा ध्यान पार्श्ववर्ती चैतन्य केन्द्रों पर केन्द्रित हुआ। हमें एक नया सूत्र मिल गया।

जैन आगमों में आतापना का वर्णन मिलता है। इसकी साधना करने वाला व्यक्ति सूर्य के सामने खड़ा होकर दोनों हाथ ऊंचे कर आतापना लेता है। तप्त शिला पर सोकर आतापना लेने की विधि उत्तरकाल में विकसित हुए हैं। चैतन्य केन्द्रों को जगाने के लिए सूर्य का प्रकाश आवश्यक है। सूर्य के प्रकाश में तैजस की शक्ति है। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि आगे, पीछे, दायें, बायें और सिर से अवधिज्ञान होता है। शरीर का अधिकांश भाग ज्ञानमय बन जाता है। ज्ञान के दरवाजे खुल जाते हैं। साधना करते-करते शरीर के रोम-रोम से ज्ञान का प्रकाश बाहर फैलने लग जाता है। ज्ञान की रश्मियां बाहर आने लग जाती हैं। शरीर का कण-कण आंखमय बन जाता है। शायद इसीलिए वैदिक साहित्य में इन्द्र को सहस्र-चक्षु कहा गया है। सूत्रकृतांग सूत्र में महावीर को अनंत-चक्षु कहा है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है—योगी की आंख कहां है? आचार्यों ने समाधान दे दिया—योगिनः शास्त्रचक्षुषः। योगी की आंख है—शास्त्र। वे कोई भी निर्णय शास्त्र के आधार पर लेते हैं। वे स्वयं शास्त्र होते हैं। शास्त्र का अर्थ है—वीतराग का वचन। सामान्य आदमी के लिए शास्त्र की बहुत जरूरत है। हमारे कुछ साधना करने वाले योगी हैं जिनके साहित्य को लोग पढ़ते हैं। उन्हें स्वयं पढ़ने की जरूरत नहीं है। एक दिन एक भाई मेरे पास आया और उसने कुछ बातें बताईं। उसने कहा—आपके बारे में अमुक व्यक्ति बहुत बातें कह रहा था। मैंने कुछ लिखा था। उस समय के भगवान ने ७२ मिनट तक मेरे पर भाषण दिया। फिर अपने भक्त को मेरे पास कैसेट सुनाने के लिए भेजा। आग्रह के कारण मैंने वह कैसेट सुनी। ७२ मिनट की उस

साधना और सिद्धि—● २८ ●

कैसेट में मेरे लिए बहुत कुछ कहा गया था। उसने पूछा—‘ भगवान को जाकर क्या कहूँ? आपकी क्या प्रतिक्रिया है?’ मैंने कहा—‘ मेरी कोई प्रतिक्रिया नहीं है। तुम अपने भगवान को बता देना, ऐसा भाषण भगवान ही दे सकता है, सामान्य आदमी नहीं।’

बहुत लोगों के सुझाव आते हैं—अमुक-अमुक प्रयोग करो, पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। मैंने कहा—स्वयं प्रवचन करते हैं। दुनियाभर का साहित्य पढ़ते हैं। लोगों को उपदेश देते हैं और कहते हैं पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सामान्य आदमी को दिग्मूढ़ बनाने का उपक्रम है। वह बेचारा स्वाध्याय नहीं करेगा तो ज्ञान कहां से होगा? बिना स्वाध्याय के हमारी आंखें नहीं खुलती। स्वाध्याय एक चक्षु है। उससे नई-नई बातों का ज्ञान होता है। आज से दो-तीन शताब्दी पहले आदमी को पता नहीं था कि अमेरिका कहां है? वह अणु अस्त्रों के बारे में और उनके परीक्षण के बारे में नहीं जानता था। वह ज्ञान कहां से आया? वह पढ़ता है, पढ़ने से ज्ञान हो गया। पढ़ना व्यर्थ नहीं है। क्या पढ़ें? क्यों पढ़ें? यह विवेक अवश्य होना चाहिए। स्वाध्याय बहुत आवश्यक है इसीलिए कहा है—योगी के लिए शास्त्र चक्षु है। योगी का ज्ञान भीतर से प्रकट होता है। वह बाहर के विभिन्न स्रोतों से अध्ययन करने का प्रयत्न करता है। अध्ययन करना जरूरी है। मैं स्वयं अनुभव करता हूँ कि गुरुदेव ने मुझे बहुत अधिक पढ़ने का अवसर दिया। बहुत कम लोगों को वह मिलता है। इसी कारण मुझे कुछ जानने का और समझने का मौका मिला।

स्वाध्याय अध्यात्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी दृष्टि से शायद हमारे भाष्यकारों ने लिख दिया—स्वाध्याय के समान कोई बड़ा तप नहीं है। इसके पीछे आशय क्या है? आखिर हमें ज्ञान कहां से मिलेगा? ज्ञान का स्रोत क्या है? सब लोग अंतर्दृष्टि सम्पन्न नहीं बनते। चर्म चक्षु वाले व्यक्तियों का ज्ञान ग्रंथों की सीमा तक सीमित रहेगा। जितना आंखों से देखते हैं उतना ज्ञान हो जाएगा। मैं इस पूरे स्थान को आंख से देख रहा हूँ। इसी समय बाजार में क्या हो रहा है? इन आंखों से वह ज्ञान नहीं हो सकता। आंख की सीमा है। जितना उसके सामने है वह देख सकती है, दूरस्थ वस्तु या व्यक्ति को नहीं। चाक्षुष ज्ञान में विपर्यय भी होता है। कुछ दूर तो ठीक दिखाई देता है और बाद में ऐसा लगता है कि सड़क के दोनों किनारे मिल गए। हमने आंखों के विपर्यय को साक्षात् अनुभव किया। गुरुदेव ने कच्छ यात्रा की। हम लोग कच्छ के रण में उतरे, जो लगभग १८-२० किलोमीटर का था। जैसे ही उसमें उतरे, सूरज उगा, रश्मियां देखीं। विचार आया आगे कैसे जाएंगे, चारों ओर पानी दिखाई दे रहा था। आगे चले तो जहां पानी दिखाई दे रहा था, वहां भूमि हो गई और पानी आगे सरक गया। १८-२० किलोमीटर तक हम आगे बढ़ते गए, पानी आगे सरकता गया। इसी प्रकार पूरे रण को पार किया। एक बूंद पानी दिखाई नहीं दिया। इसका नाम है मृगमरीचिका। बेचारा हिरण पानी की प्यास में दौड़ता है, रण

साधना और सिद्धि

• २९ •

में पानी ही पानी दिखाई देता है किन्तु प्यास बुझाने के लिए एक बूंद भी पानी नहीं मिलता। यह आंख का विपर्यय है। बहुत लोग कहते हैं—यह तो मेरा आंखों देखा सच है। आंखों पर भरोसा करो लेकिन बहुत ज्यादा मत करो। आंखों देखा कितना असत्य होता है, मैंने इसका बहुत अनुभव किया है। जब खोज की, तब पता चला कि आंखों देखी बात में कितना विपर्यय होता है।

हम चक्षु की सीमा को समझें। हमारी आंख चर्मचक्षु है। देवता की आंख अवधि ज्ञान है। योगी की आंख शास्त्र है। केवलज्ञानी की आंख पूरे रोम-रोम में है। आंख सबकी अलग-अलग होती है। सचाई को देखने के लिए चर्म चक्षुओं पर ही भरोसा नहीं करना चाहिए, अध्यात्म के चक्षुओं का भी उद्घाटन करना है।

## अतीन्द्रिय चेतना का विकास

सत्य हमें दिखाई दे रहा है उतना ही है या उससे ज्यादा ? जो हमें दिखाई दे रहा है वह सत्य एक क्षण जितना है, जल की एक बूंद जितना है। जो दिखाई नहीं दे रहा है वह एक समुद्र जितना है, एक हिमालय जितना है। उसे कैसे जानें ? सत्य को जानना बड़ा मुश्किल है फिर भी उपाय के द्वारा जाना जा सकता है।

सत्य के दो प्रकार हैं—

१. इन्द्रिय सत्य—जो इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है।
२. अतीन्द्रिय सत्य—जो अतीन्द्रिय चेतना से जाना जा सकता है। इन्द्रिय चेतना वहां काम ही नहीं करती।

मनुष्य इन्द्रियों से भी पूरा काम नहीं लेता। उनमें बहुत पटुता है, बहुत क्षमता है। हमारी जिह्वा में अत्यधिक शक्ति है। वह प्रयोगशाला के प्रत्येक पदार्थ के रसायनों का विश्लेषण कर सकती है। अगर अतीन्द्रिय शक्ति का विकास हो जाए तो प्रयोगशाला में जाने की जरूरत नहीं होगी। हम अपनी शक्ति को काम में नहीं लेते। इन्द्रियों के द्वारा जितना जाना जा सकता है उतना भी हम नहीं जानते। इसलिए नहीं जानते कि हमें उस विषय का ज्ञान ही नहीं है या ज्ञान को विकसित करने का प्रयत्न ही नहीं है। पुत्र पिता के पास आया और बोला—‘पिताजी! पहाड़ पर सूर्यास्त का दृश्य बहुत सुन्दर है। मुझे देखना है, आप चलें।’ पिता बोला —‘अभी तो मैं बहुत व्यस्त हूँ। कल सवेरे चलेंगे।’ आदमी इन्द्रियों का या मन के ज्ञान का सम्यक् उपयोग नहीं करता। सचाई का पूरा पता नहीं चलता। उसमें भी विपर्यय हो जाता है। इन्द्रियगम्य सत्य को भी व्यक्ति नहीं जानता तो भला अतीन्द्रिय सत्य को कैसे जान सकता है ?

अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने के लिए सबसे पहला स्थान है—आगम। आगम का अर्थ है—अतीन्द्रिय ज्ञानी, आसपुरुष। अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने के लिए दूसरा साधन है युक्ति अथवा तर्क। कहीं-कहीं इसका भी सहारा लिया जाता है।

वर्तमान की समस्या है कि हमारी अतीन्द्रिय चेतना लुप्त हो रही है। हर आदमी में अतीन्द्रिय चेतना है। उसका विकास कोई-कोई ही करता है। मस्तिष्क

साधना और सिद्धि ————— ● ३१ ●



विज्ञानी कहते हैं कि हमारे मस्तिष्क में जितनी शक्ति है उसका बहुत कम उपयोग होता है। साधारण आदमी पांच प्रतिशत शक्ति का उपयोग करता है। बुद्धिमान व्यक्ति सात प्रतिशत उपयोग करता है। महान व्यक्ति आठ से दस प्रतिशत उपयोग करते हैं। हमारे भीतर शक्ति है किन्तु हम उसका उपयोग नहीं करते। अनुष्ठान का प्रयोग इसलिए कर रहे हैं कि हमारी मस्तिष्क की शक्ति का विकास हो, अतीन्द्रिय चेतना का विकास हो।

अतीन्द्रिय चेतना मनुष्य में ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी होती है। वे अपनी शक्ति का उपयोग भी करते हैं। जापान आदि कुछ देशों में भूकम्प बहुत आते हैं। लावा फटता है, वातावरण अग्रिमय बन जाता है। सारे पक्षी वहां से कुछ घण्टे पहले ही उड़ जाते हैं। ऐसा क्यों? भूकम्प आने से पूर्व ही उनको आभास हो जाता है। वे सूक्ष्म प्रकम्पनों (Vibrations) के आधार पर आने वाली घटना को जान लेते हैं। उनकी अतीन्द्रिय चेतना इन्द्रिय ज्ञान के द्वारा आवृत नहीं हुई है।

मनुष्य में भी पशु-पक्षियों से अधिक ज्ञान है किन्तु वह उसको काम में नहीं लेता। वह इन्द्रियज्ञान पर ही आश्रित हो गया। उस ज्ञान पर आश्रित होने के कारण अनेक समस्याएं आ रही हैं। आज राज्यपाल दस बजे आने वाले थे। मौसम खराब हो गया, वायुयान उड़ नहीं सका। दस बजे पहुंचने वाले ग्यारह बजे पहुंचे। दूसरों पर आश्रित रहने के कारण इस प्रकार की स्थिति का निर्माण होता है। आदमी ने भी इन्द्रियों का आश्रय ले लिया। परिणामस्वरूप उसकी अतीन्द्रिय चेतना निष्क्रिय हो गई।

हम इन्द्रियों से काम लें, उनका विकास करें। साथ ही साथ अतीन्द्रिय चेतना का भी विकास करें। कल मैंने देखा—हमारे पास कुछ लोग ध्यान कर रहे थे। उनमें से एक आदमी को पार्श्ववर्ती वस्तु ग्रहण करनी थी। उसने हाथ आगे बढ़ाया और उसी वस्तु को उठा लिया। यह सब कैसे हुआ? आंखों से उस वस्तु को नहीं देखा फिर भी उसे उठा लिया। कारण स्पष्ट है अतीन्द्रिय चेतना काम कर रही है। कभी-कभी लगता है कोई पारिवारिक जन या मित्र आने वाला है। कोई टेलीग्राम नहीं, टेलीफोन नहीं, फेक्स नहीं फिर भी संभावित व्यक्ति समय पर पहुंच जाता है। यह ज्ञान किससे हुआ? अतीन्द्रिय चेतना के जागरण से यह अनुभूति होती है।

आचार्य भिक्षु ने कहा—‘सन्तो! सामने जाओ, साधु आ रहे हैं।’ साधुओं ने सोचा—शायद आचार्य भिक्षु का मन शिष्यों में अटक गया है। इन्द्रिय चेतना के स्तर पर जीने वाले अतीन्द्रिय चेतना में विश्वास भी नहीं कर सकते। कुछ समय बाद देखा—संत आ गए, वंदना कर रहे हैं। यह कैसे ज्ञात हुआ? उस समय न फोन था और न फेक्स। ई-मेल की तो कल्पना भी नहीं थी। पत्र भी लम्बे समय बाद पहुंचता था। पर अतीन्द्रिय चेतना काम कर रही थी। अनेक घटनाओं के संदर्भ में

साधना और सिद्धि—● ३२ ●

हमने अतीन्द्रिय ज्ञान का अनुभव किया। आधुनिक विज्ञान में विद्या की अनेक शाखाओं का विकास हुआ है। उनमें एक शाखा है—परामनोविज्ञान। उसके अनुसार दूर की वस्तु को तथा दूसरे के विचार को जाना जा सकता है। विचार का संप्रेषण किया जा सकता है। मैंने सैकड़ों बार अपने जीवन में अनुभव किया कि एक बात गुरुदेव कहते, उसके तत्काल बाद मैं भी कहता—मैं यही कहने वाला था। बहुत बार मैं कहता, गुरुदेव कहते कि मैं जो कहने वाला था वह तुमने कह दिया। यह है विचार संप्रेषण। एक समय में एक विचार दोनों के मन में आ जाता है। जैन दर्शन की भाषा में यह अतीन्द्रिय-चेतना का प्रयोग है। अनेक बार मैं और गुरुदेव साथ बैठते, चिन्तन करते, अमुक व्यक्ति को याद करते। थोड़े समय में वह व्यक्ति हमारे पास पहुंच जाता। यह कैसे होता? इसका कैसे पता चलता?

आज लोग बाहरी साधनों पर ज्यादा निर्भर हो गए, इसलिए अतीन्द्रिय चेतना से काम लेना भी भूल गए। अगर बाहर की निर्भरता कम हो जाए, भीतर के प्रति आकर्षण पैदा हो जाए, तो बहुत सारी बातों का अपने आप पता लग सकता है।

हमने आगम संपादन में अतीन्द्रिय शक्ति का प्रयोग किया है। आगम का कार्य करते समय अनेक बार उलझनें आतीं। एक आगम की अनेक प्रतियां होतीं, सभी प्रतियां परस्पर विंशवादी। निर्णय कैसे करें? ऐसी स्थिति में अतीन्द्रिय चेतना से काम लेते हैं तो समाधान मिल जाता है।

सत्य को जानने के लिए आपको आंखें बंद करनी होंगी। खुली आंखों से देखोगे तो स्थूल सत्य दिखाई देगा। सूक्ष्म सत्य को आंख बंद करके ही देख सकते हैं। किसी एक विषय पर एकाग्र होकर दूर की बात का पता लगा सकते हैं। अगर आप एक दिशा में रोज ध्यान करें, उस दिशा में घटित होने वाली दूर की स्थिति का भी आपको पता लगने लग जाएगा। सूचना आने लग जाएगी। कान में आवाज आने लगेगी। भीतर की शक्ति जागेगी किन्तु आदमी को फुरसत ही नहीं है कि वह आंख को मूंदकर बैठे। बड़ा कठिन कार्य है। नींद में आंख बंद करते हैं किन्तु जागृत अवस्था में आंख बंद करने का अभ्यास बहुत लोगों को नहीं है। इसीलिए अतीन्द्रिय चेतना का उपयोग नहीं होता। यह एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक सत्य है, आध्यात्मिक सत्य है। आप साधन के बिना भी बहुत सारी बातें जान सकते हैं। जानने की प्रक्रिया का ज्ञान होना आवश्यक है। जब हमारा समय हास्य, विनोद, नींद, विकथा आदि-आदि में ही बीत जाता है तब अतीन्द्रिय चेतना की बात ही नहीं, इन्द्रिय चेतना की शक्ति भी कम हो जाती है।

उपाध्याय यशोविजयजी ने लिखा है—

**आत्मप्रवृत्तावतिजागरूकः परप्रवृत्तौ बधिरान्धमूकः।**

**सदा चिदानंदपदोपभोगी अनुत्तरं साम्यमुपैति योगी॥**

जो व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति में जागरूक और दूसरे की प्रवृत्ति में बधिर, अंध

और मूक होता है, वह अनुत्तर साम्य को प्राप्त होता है। गांधीजी ने भी तीन बन्दरों की चर्चा की—बुरा मत कहो, बुरा मत सुनो, बुरा मत देखो। यशोविजयजी व गांधी दोनों गुजरात के थे। यशोविजयजी ने ही शायद सबसे पहले इस बात को प्रस्तुत किया है। गांधीजी का गुजरात के जैन संतों के साथ अच्छा संपर्क रहा। गांधीजी ने बंदरों का रूपक संभवतः वहीं से लिया है।

यदि आप अतीन्द्रिय चेतना को जगाना चाहते हैं तो आपको भी बंदरों का अनुसरण करना होगा। बाहर की प्रवृत्तियों के प्रति बहरा, अंधा और गूंगा भी बनना होगा। हमारी चेतना बहिर्मुखी बनी हुई है इसलिए अतीन्द्रिय शक्तियों का विकास नहीं हो रहा है। बाह्य प्रवृत्ति में दूसरे को नीचे उतारने की बात होती है और उसमें प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति भी पनपती है। पांच मित्र सैर के लिए जा रहे थे। रास्ते में गाय के रम्भाने का शब्द सुनाई दिया। मित्रों ने एक मित्र से कहा—गाय तुम्हें बुला रही है। जाओ और पूछो, क्या कह रही है? वह गया, गाय के मुँह के पास कान किया, पूरा अभिनय किया, वापस आ गया। मित्रों ने पूछा—गाय ने क्या कहा? मित्र ने उत्तर दिया—गाय ने कहा है—भले आदमी, इन गधों के साथ क्यों सैर कर रहे हो? आध्यात्मिक प्रवृत्ति में ऊँचे-नीचे की बात नहीं होती, वहाँ समानता खोजी जाती है। प्राणी मात्र के प्रति मैत्री और समता की भावना करें, अतीन्द्रिय चेतना का विकास होगा। व्यवहार के स्तर पर छोटे और बड़े की बात होती है। अमुक छोटा आदमी है, अमुक बड़ा आदमी है। संबंध से, अवस्था से, पद से, छोटे-बड़े का भेद होता है। मालिक बड़ा है, मजदूर छोटा है। जब तक व्यक्ति बड़े-छोटे को अपने समान नहीं मानता, तब तक हिंसात्मक प्रतिक्रिया को नहीं रोका जा सकता। आज की सबसे बड़ी समस्या यही है कि आदमी को आदमी नहीं माना जा रहा है।

एक बहुत सुन्दर दार्शनिक कहानी है। एक आदमी के घर में विवाह था। वह सेठ के पास आकर बोला—‘घर में शादी है, कुछ सामान लेने आया हूँ।’ सेठ ने इधर-उधर देखा और कहा—‘बाद में आना।’ दूसरे दिन भी सेठ ने वही उत्तर दिया। तीसरे दिन उसने कहा—‘सेठ साहब! शादी के दो दिन शेष हैं। अब तो आप सामान देने की कृपा करें।’ सेठ ने पुनः इधर-उधर देखा और कहा—‘चले जाओ। आदमी नहीं हैं।’ आगन्तुक ने कहा—‘मैं तो आपको आदमी समझकर ही आया था।’ इसका मतलब मालिक अपने आपको आदमी नहीं मानता, नौकर को आदमी मानता है। जहाँ यह विषमता की चेतना जागती है वहाँ समस्या का समाधान नहीं होता। समता की चेतना जागती है तब अतीन्द्रिय चेतना का जागरण होता है और अतीन्द्रिय चेतना जागती है तब समता की चेतना का जागरण होता है।

## मन को पकड़ो

आत्मा केन्द्र में है और उसके परिपार्श्व में चित्त, मन, भाव और लेश्या घूम रहे हैं। दुनिया में सबसे कठिन कार्य है आत्मा को प्राप्त करना। कठिन इसलिए है कि हम मोह कर्म का जीवन जी रहे हैं। ज्ञानावरणीय कर्म का जीवन जी रहे हैं। प्रतिरोध का जीवन, अन्तराय की जीवन भी जी रहे हैं। हमारे सामने अनेक बाधाएं हैं। सबको पार कर आत्मा तक पहुंचना बहुत मुश्किल है।

बाहर से देखने पर हर व्यक्ति सुन्दर लगता है, अच्छा लगता है किन्तु उसके भाव जगत् की यात्रा करने से यथार्थ का बोध होता है। हमारे भीतर का जगत्, भावों का जगत् बड़ा विचित्र है। हम दूसरे को उपदेश दे सकते हैं, अच्छी शिक्षा दे सकते हैं, किन्तु जब हम अपने भाव जगत् में प्रवेश करते हैं तब कुछ अजीब-सा लगता है। भाव जगत् में पहुंचकर जिस व्यक्ति ने अपना आत्म निरीक्षण शुरू कर दिया, उसने अपने आपको देखना शुरू कर दिया। अपने आपको देखने का केन्द्र बिन्दु है भाव जगत्।

जैन साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है अंगविज्जा। उसमें अपने आपको देखने की और स्वयं की अनुभूतियों का आकलन करने की विधि बतलाई गई है। भाव जगत् में जाकर अपना निरीक्षण करें और निर्णय करें कि मुझे क्या करना है? किसे बदलना है? मन के स्तर पर इन सब बातों की अवगति नहीं हो सकती। मन कभी अपने आपको कमजोर स्वीकार करने की साक्षी नहीं देता। वाणी भी कभी अपने आपको कमजोर नहीं मानती। शरीर बेचारा जड़ है, वह क्यों करेगा? आत्मनिरीक्षण का माध्यम है भाव जगत्। साधना का लक्ष्य भी यही है—हम भाव जगत् तक पहुंचकर अपनी कमियों को खोजें। उपाधियों को खोजें, व्याधियों को खोजें। उन्हें खोजकर समाधि की दिशा में प्रस्थान करें।

सबसे पहले मन को पकड़ना जरूरी है। उसे कैसे पकड़ें? उसे पकड़ने के लिए तीन उपाय बतलाए गए हैं—(१) प्राणायाम (२) मंत्र जप (३) शुद्ध आत्मा का अनुभव।

मन को पकड़ने का पहला उपाय है प्राणायाम। कायोत्सर्ग और प्राणायाम

साधना और सिद्धि ————— ● ३५ ●

दोनों भिन्न-भिन्न नहीं हैं। प्राणायाम या कायोत्सर्ग दोनों एक ही हैं। कोई भी कायोत्सर्ग ऐसा नहीं होता जो प्राणायाम से भिन्न हो। कोई भी प्राणायाम ऐसा नहीं होता जो कायोत्सर्ग से भिन्न हो।

जैन साधना पद्धति का आधारभूत तत्त्व है—कायोत्सर्ग। आज उसकी विस्मृति-सी हो गई है। किसी बीमारी का इलाज करना है। नौ दिन तक अनुष्ठान करके व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है। कोई साधक योग वहन कर रहा है। बीच में ही अस्वस्थ हो गया। विकृति हो गई। विकृति दूर करने के लिए कायोत्सर्ग किया। एक दिन कायोत्सर्ग करने पर ठीक नहीं हुआ तो दूसरे दिन, तीसरे दिन, लगातार नौ दिन तक कायोत्सर्ग करे। इतने दिनों में भी यदि ठीक न हो तो, फिर योग पद्धति को विराम दें। चिकित्सा कराएं।

कायोत्सर्ग और श्वास दोनों साथ-साथ चलते हैं। जैन साधना पद्धति में प्रायश्चित्त की विधि कायोत्सर्ग है। हठयोग की साधना पद्धति में प्राणायाम उसका तत्त्व है।

**आसनेन रुजं हन्ति, प्राणायामेन पातकम्।**

**विकारं मानसं योगी, प्रत्याहारेण मुञ्चति।।**

आसन के द्वारा रोग नष्ट होते हैं और प्राणायाम से पाप। प्राणायाम प्रायश्चित्त करने का साधन है। श्वास का प्रयोग कायोत्सर्ग के बिना नहीं होता और कायोत्सर्ग का प्रयोग श्वास के बिना नहीं होता। सबसे पहला उपाय बतलाया गया कि अगर तुम मन को पकड़ना चाहते हो तो प्राणायाम के द्वारा मन को पकड़ो।

मन को पकड़ने का दूसरा उपाय है मंत्र जप। मंत्र का जप करो, उसका साक्षात् अनुभव करो। मन वश में हो जाएगा। पद्मासन या सुखासन की मुद्रा में बैठकर ध्यान नासाग्र पर केन्द्रित करें। किसी एक मंत्र का चुनाव करें। प्रारंभ में उच्चारण करें। धीरे-धीरे अजपा जप की स्थिति में चले जाएं। मन पकड़ में आ जाएगा।

मन को पकड़ने का तीसरा उपाय है—शुद्ध आत्मा का अनुभव। आत्मा की भावना करो, आत्मा के शुद्ध स्वरूप की भावना करो। मैं शुद्ध आत्मा हूँ, इस भावना से अपने आपको भावित करो। यह बहुत बड़ा प्रयोग है—अपने आपको सिद्ध आत्मा, मुक्त आत्मा के रूप में अनुभव करते रहना। यह अनुभव जितना बढ़ेगा इसकी शक्ति का उतना ही अधिक विकास होगा।

इन तीनों उपायों का प्रयोग अभी कुछ साधक कर रहे हैं। एक महिला प्रशिक्षण दे रही है समता की साधना का। सिर्फ आत्मा को देखो। जीवन के शुद्ध स्वरूप को देखो। अनेक प्रकार की समस्याएं उस महिला के सामने आती हैं। एक बहिन ने कहा—आज हमारे घर में कलह हो गया। महिला ने पूछा—उस समय तुम शरीर में थी या आत्मा में? उत्तर मिला—शरीर में थी, आत्मा में रहती तो कलह नहीं

साधना और सिद्धि—● ३६ ●

होता। अहंकार, लोभ, क्रोध आदि व्यक्ति को तब प्रभावित करते हैं जब वह शरीर में रहता है। शरीर में रहने का अर्थ है अठारह पापों का आचरण करना। आत्मा में रहने का अर्थ है अठारह पापों से बचना।

आचार्य रामसेन ने तत्त्वानुशासन में शुद्ध आत्मा के स्वरूप का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—

न मुह्यति न संशेते न स्वार्थान्नध्यवस्यति ।  
 न रज्यति, न च द्वेषि, किन्तु स्वस्थः प्रतिक्षणम् ॥  
 त्रिकालविषयं ज्ञेयमात्मनं च यथास्थितम् ।  
 जानन्यश्यंश्च निःशेषमुदास्ते स तदा प्रभुः ॥  
 अनन्तज्ञानदृग्वीर्यं वैतृष्णयमयव्ययम् ।  
 सुखं चाऽनुभवत्येष तत्रातीन्द्रियमच्युतः ॥

शुद्ध आत्मा में न मोह होता और न संशय। स्व और पर का अध्यवसाय नहीं होता। न राग होता न द्वेष। प्रतिक्षण अपने आप में अवस्थित होता है।

अपनी आत्मा और त्रैकालिक विषय वाले ज्ञेय को यथार्थ रूप में जानता है, देखता है किन्तु क्रिया के प्रति उदासीन है।

अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त वीतरागता की अवस्था में रहता है तथा अच्युत, अव्यय और अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है।

आचारांग सूत्र के पांचवें अध्ययन में शुद्धात्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है—

सव्वे सरा णियट्ठंति ।  
 तक्का तत्थ न विज्जइ ।  
 मई तथ्य ण गाहिया ।  
 ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेयन्ने ।  
 से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे ण परिमंडले ।  
 ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिए, ण हालिहे, ण सुक्किल्ले ।  
 ण सुब्धिगंधे ण दुरभिगंधे  
 ण तित्ते, ण कड्डुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे ।  
 ण कक्खडे, ण मडए, ण गरुए, ण लहुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे ।  
 ण काऊ  
 ण रुहे  
 ण संगे  
 ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अण्णहा ।



परिणणे सणणे

उवमा ण विज्जइ

अरुवी सत्ता

अपयस्स पयं णत्थि ।

स ण सद्दे, ण रुवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे ।

सब स्वर लौट आते हैं—शब्द के द्वारा आत्मा प्रतिपाद्य नहीं है ।

वहां कोई तर्क नहीं है—आत्मा तर्कगम्य नहीं है ।

वह मति के द्वारा ग्राह्य नहीं है ।

वह अकेला, सर्वथा अनालंबन और ज्ञाता है ।

वह न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्त है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है और न परिमंडल है ।

न कृष्ण है, न नील है, न रक्त है, न पीत है और न शुक्ल है ।

वह न सुगन्ध है और न दुर्गन्ध ।

वह न तिक्त है, न कटु है, न कषाय है, न अम्ल है और न मधुर है ।

वह न कर्कश है, न मृदु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है और न रुक्ष है ।

वह शरीरवान् नहीं है

वह जन्मधर्मा नहीं है ।

वह लेपयुक्त नहीं है ।

वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है ।

वह परिज्ञ है, वह संज्ञ है—सर्वतः चैतन्यमय है ।

उसके लिए कोई उपमा नहीं है ।

वह अमूर्त अस्तित्व है ।

वह अपद है, उसका बोध करने वाला कोई पद नहीं है ।

वह न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है और न स्पर्श है ।

यह आत्मा का स्वरूप ध्यान करने का है । सिर्फ कण्ठस्थ और पुरनावर्तन करने का नहीं है । उस पर एकाग्र होना है, ध्यान केन्द्रित करना है । एक गाथा का पुनरावर्तन किया, ज्योति केन्द्र पर दस मिनट, बीस मिनट, आधा घण्टा तक चित्त को एकाग्र किया । एकाग्रता की अवस्था में तुम्हारी चेतना, तुम्हारा चित्त अतीन्द्रिय ज्ञान के निकट पहुंच जाएगा । तुम अतीन्द्रिय ज्ञानी बन जाओगे । जीवन की समग्र घटनाओं को जान सकोगे और जीवन को प्रफुल्लित बना लोगे ।

## महाव्रत : सिद्धि का मूल आधार

व्रत स्वीकृत होता है, थोपा नहीं जाता। व्यवहार में हम कहते हैं गुरु शिष्य को दीक्षा देता है। वास्तव में गुरु दीक्षा नहीं देता, शिष्य स्वयं दीक्षा लेता है। जब तक स्वयं दीक्षा न लें, देने वाला दे नहीं सकता। हार गले में पहना जा सकता है। कपड़ा किसी को दिया जा सकता है। किन्तु धर्म कोई वस्तु नहीं है, व्रत कोई वस्तु नहीं है जिसका विनिमय किया जा सके। पदार्थ का विनिमय किया जा सकता है। एक व्यक्ति अपनी वस्तु को दूसरे को दे सकता है, बदले में दूसरे की चीज ले सकता है। धर्म और व्रत का अगर विनिमय होता तो एक व्यक्ति का धर्म या एक व्यक्ति का व्रत दूसरे के काम आ जाता। पर ऐसा संभव नहीं है। यह तो अभ्यास करने वाले के ही काम आता है। इसलिए व्रत आरोपित नहीं होता, थोपा नहीं जाता। धार्मिक व्यक्ति स्वयं इसे स्वीकार करता है।

सामान्यतया होता यह है कि व्यक्ति जिस कुल में जन्म लेता है वह उसी कुल के धर्म का अनुयायी बन जाता है। प्रारंभ में धर्म परम्परा से प्राप्त होता है और बाद में समझपूर्वक उसे स्वीकार किया जाता है। विवेकपूर्वक स्वीकृत किया जाने वाला धर्म है अणुव्रत। वह जन्मना नहीं होता। जैन के घर जन्म लेने वाला जैन बन जाता है। वैष्णव के घर जन्म लेने वाला वैष्णव बन जाता है। सनातनी के घर जन्म लेने वाला सनातनी बन जाता है। ईसाई और मुसलमान के घर जन्म लेने वाला ईसाई या मुसलमान बन जाता है, किन्तु अणुव्रती के घर जन्म लेने वाला अणुव्रती नहीं बनता। क्योंकि जब तक अणुव्रतों को स्वीकार नहीं करता तब तक अणुव्रती बन नहीं सकता। धर्म के दो प्रकार बन गए—

१. परम्परागत धर्म
२. स्वीकृत धर्म

बहुत लोग कहते हैं अणुव्रत धर्म तो अच्छा लगता है पर हमारे कुल का धर्म अमुक ही है। वास्तव में कुल का कोई धर्म नहीं होता। वह तो स्वीकार किया जाता है। अणुव्रतों को स्वीकार करना या महाव्रतों को स्वीकार करना सही अर्थ में

साधना और सिद्धि ————— ● ३९ ●

धर्म है। यह संकल्पपूर्वक स्वीकृत होता है। पहले मानसिक स्तर पर संकल्प उत्पन्न होता है कि मुझे साधु बनना है, बारहव्रती श्रावक बनना है। उपनिषदों में एक वाक्य आता है संकल्पजा सृष्टि। ब्रह्मा ने संकल्प किया और सृष्टि का निर्माण हो गया। पहले संकल्प होता है फिर वस्तु का निर्माण। संकल्प के बिना निर्माण संभव नहीं है।

मन की दो अवस्थाएं हैं—सकल और विकल। स्मृति, चिंतन और कल्पना—ये सब मन की कलाएं हैं। ये कलाएं जहां होती हैं वहां मन सकल होता है। जहां ये कलाएं नहीं होती वहां मन विकल हो जाता है। जब कल्पना संकल्प का रूप लेती है तब सफलता मिलती है। संकल्प के साथ दृढ़ निश्चय होता है। कल्पना के साथ यदि दृढ़ इच्छाशक्ति नहीं हो तो वह खतरनाक होती है। विकास की छलांग लगाने के लिए कल्पना आवश्यक है। इसके बिना कोई आदमी आगे नहीं बढ़ सकता। जिस कल्पना के साथ यथार्थ न हो, जिसके साथ कोई निश्चय न हो, कोरी हवाई कल्पना हो, वह खतरनाक होती है। कल्पना को कोई न कोई रूप देना जरूरी होता है।

दो किसान बातें कर रहे थे। एक बोला—मेरी इच्छा है कि तुम्हारे घर के सामने गन्ने का खेत बोऊं। दूसरा बोला—मेरी इच्छा है कि एक भैंस खरीदकर लाऊं। कल्पना आगे बढ़ी। एक ने कहा—तुम्हारी भैंस मेरे खेत में घुस गई तो टांग तोड़ दूंगा। दूसरों बोला—कैसे तोड़ देगा? तोड़कर देख। इतना कहते ही लाठी उठा ली। सामने वाले व्यक्ति ने भी लाठी उठा ली। दोनों आपस में लड़ाई करने लग गए। दोनों ओर से लाठियां चलने लगीं। केस न्यायालय में पहुंच गया। न्यायाधीश ने पूछा—तुमने भैंस कब खरीदी। वह बोला—अभी खरीदी नहीं है। दूसरे से पूछा—तुमने गन्ने का खेत कब बोया? अभी तो बुवाई नहीं की है। न्यायाधीश ने कहा—फिर लड़ाई क्यों की? लड़ाई का कोई आधार नहीं है।

कोरी कल्पना झगड़े का आधार बनती है इसलिए कल्पना के साथ यथार्थ का धरातल होना चाहिए, उसके साथ यथार्थ जुड़ा रहना चाहिए। यथार्थ कल्पना को संकल्प का रूप देता है। कल्पना का अग्रिम रूप है संकल्प। कोरी कल्पना है, संकल्प नहीं है तो क्या होगा? कल्पना को संकल्प का रूप देने पर वह वास्तविक हो सकती है।

एक छोटा बच्चा पत्र लिख रहा है। पिता ने पूछा—‘आज क्या कर रहे हो?’ पुत्र ने कहा—‘दोस्त को पत्र लिख रहा हूं।’ पिता ने कहा—‘तू कौन-सा लिखना जानता है!’ पुत्र ने कहा—‘वह कौन-सा पढ़ना जानता है!’ इसमें लिखना और पढ़ना दोनों ही काल्पनिक हैं। हमें यथार्थ पर आना जरूरी है, जब कल्पना संकल्प का रूप लेती है। कल्पना के साथ दृढ़ निश्चय जुड़ गया कि यह काम मुझे करना ही है। पूज्य

साधना और सिद्धि—● ४० ●

गुरुदेव ने आगम सम्पादन की कल्पना की। आधे घण्टे के भीतर ही कल्पना को संकल्प का रूप दे दिया और काम शुरू हो गया। कल्पना केवल कल्पना रहती, तो शायद पचास वर्ष और बीत जाते, कुछ भी कार्य नहीं होता।

अध्यात्म की साधना के लिए संकल्प का प्रयोग बहुत आवश्यक है, दृढ़ निश्चय बहुत आवश्यक है। ज्ञातासूत्र का एक बहुत सुन्दर सूक्त है—**निश्चयववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए**—जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। निश्चय कर लिया – आज बीस श्लोक याद करना है, कठिन बात नहीं है। निश्चय नहीं किया तो दो श्लोक भी याद नहीं होते। सब कुछ संकल्प पर, निश्चय पर है। महाव्रतों और व्रतों की आराधना निश्चय के आधार पर होती है। निश्चय कर लिया—मुझे एक घण्टा खड़ा रहना है। खड़ा रह सकता है। निश्चय करने वाले के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है।

ज्ञातासूत्र का एक प्रसंग है। राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी का अपहरण कर लिया। उसे लाने के लिए वासुदेव कृष्ण ने पाण्डवों से कहा—तुम लोग जाओ और लड़ाई करो। पाण्डवों का संकल्प दृढ़ नहीं था। उन्होंने कहा—हम युद्ध के लिए जा रहे हैं। पता नहीं कौन जीतेगा? अम्हे वा पउमनाभे वा—हम जीतेंगे या पद्मनाभ जीतेगा? जहां दृढ़ निश्चय नहीं हुआ, संशय पैदा हो गया, हार वहीं हो गई। युद्ध भूमि में गए, युद्ध किया, पद्मनाभ जीत गया, पाण्डव हार गए। अब वासुदेव कृष्ण युद्धक्षेत्र में पहुंचे। वहां पहुंचकर सिंहनाद किया—अम्हे, नो पउमनाभे—हम जीतेंगे, पद्मनाभ नहीं। दृढ़ संकल्प और दृढ़ निश्चय किया, वासुदेव कृष्ण जीत गए, पद्मनाभ हार गया। द्रौपदी को लेकर आ गए।

हम इस बात पर ध्यान दें कि व्रत अथवा महाव्रत की आराधना दृढ़ निश्चय के बिना, संकल्प शक्ति का विकास किए बिना सफल नहीं होती। हमारी संकल्पशक्ति बढ़नी चाहिए। रूस में एक बहुत बड़ा साधक हुआ है गुर्जिएफ। वह संकल्प शक्ति को बढ़ाने का प्रयोग करता था। आदमी चल रहा है। चलते-चलते कहता है स्टॉप। सब एकदम खड़े रह जाते। हाथ काम कर रहा है, वह कहता है स्टॉप, हाथ जहां है वहीं रह जाते। स्वादिष्ट भोजन कर रहा है। एक कौर खाया। अच्छा लग रहा है। दूसरा हाथ में लिया कि खाना बंद। अनेक प्रकार से संकल्प को बढ़ाने के प्रयोग कराए जाते। संकल्प शक्ति और दृढ़ इच्छा शक्ति का विकास होना बहुत जरूरी है।

पांच महाव्रतों की साधना गुप्ति की साधना के बिना नहीं हो सकती। कोई व्यक्ति पांच महाव्रतों की साधना करना चाहता है किन्तु गुप्ति की आराधना नहीं करता, वह महाव्रतों की साधना अच्छी तरह नहीं कर सकता। कोई साधु या साध्वी यह कहे कि मेरा ध्यान में मन नहीं लगता। यह कैसे कह सकता है? ध्यान में मन नहीं लगता, इसका अर्थ है मनोगुप्ति की साधना में मन नहीं लग रहा है। इसका मतलब है महाव्रतों की साधना में मन नहीं लग रहा है। अगर महाव्रतों की साधना में मन लगाना है तो ध्यान में मन लगाना होगा। अन्यथा महाव्रतों में मन कैसे

साधना और सिद्धि ————— ● ४१ ●

लगेगा ? जिसको व्रत अथवा महाव्रत की साधना करनी है उसके लिए मनोगुप्ति, वचनगुप्ति व कायगुप्ति की साधना करना अनिवार्य है ।

पड़िहारा मर्यादा महोत्सव के समय साधु-साध्वियों की अंतरंग परिषद् में मेरा वक्तव्य हुआ । मैंने इस बात पर बल दिया कि गुप्ति की साधना के बिना महाव्रत की साधना कैसे हो सकती है ? गुप्ति की साधना का अर्थ है ध्यान की साधना करना, मन को नियंत्रित करना, वचन को नियंत्रित करना और शरीर को नियंत्रित करना । अगर तुम्हारे मन की चंचलता है, वाणी की चंचलता है, शरीर की चंचलता है तब अहिंसा की आराधना कैसे होगी ? थोड़ी-सी पानी की बूंदें आकाश से गिरी, तत्काल हाथ बाहर चला जाएगा कि बूंदें गिर रही हैं या नहीं ? यह शरीर की चंचलता है । स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ सामने आए, खाने को मन ललचा गया, यह मन की चंचलता है । किसी ने अप्रिय वचन कहा, तत्काल कुछ न कुछ कहने के लिए व्यक्ति उद्यत हो जाता है, यह वाणी की चंचलता है ।

मानसिक, वाचिक और कायिक चंचलता की स्थिति में अहिंसा, सत्य और अचौर्य की साधना कैसे हो सकती है ? पांचों महाव्रतों की गहराई से समीक्षा करें तो यह तथ्य उभर कर सामने आएगा कि तीन गुप्ति महाव्रतों का मूल आधार है । मन, वचन और शरीर पर नियंत्रण करने से साधना अच्छी होगी । अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की आराधना सम्यक् होगी । आध्यात्मिक अनुष्ठान के दिनों में महाव्रतों की साधना के साथ-साथ गुप्ति की साधना भी सम्यक् चलती रहे ।

## अहिंसा महाव्रत

नवाह्निक अनुष्ठान अध्यात्म के साथ-साथ शक्ति जागरण का अनुष्ठान है। हमारी शक्ति जागृत हो। जैन कर्मवाद को जानने वाला हर व्यक्ति जानता है कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय का क्षयोपशम है और उनकी विशुद्धि है किन्तु अन्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं है तो उनका क्षयोपशम फलदायी नहीं बनता, उनकी शक्ति काम में नहीं आती। शक्ति के बिना न ज्ञान का विकास हो सकता है और न सम्यक् दर्शन का। न चरित्र का विकास हो सकता है और न आनंद का। प्रत्येक विकास के लिए शक्ति का विकास जरूरी है। इसलिए यह अनुष्ठान शक्ति जागरण का अनुष्ठान या अन्तराय कर्म के क्षयोपशम का अनुष्ठान है।

स्थानांग सूत्र में बतलाया गया है—

अंतराङ्ग कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहिति य आगमिपहं चेव।

अन्तराय कर्म प्रत्युत्पन्न विकास को नष्ट करता है, भविष्य में होने वाले विकास को रोकता है। अनुष्ठान के द्वारा हम अन्तराय की प्रतिरोधक शक्ति को समाप्त करें। शक्ति जागरण के लिए प्रारंभ में हमने एक अनुष्ठान किया, एक भावना की—श्री संपन्नोहम् स्याम्—मैं लक्ष्मी से सम्पन्न बनूँ। लक्ष्मी धन भी है और ज्ञान भी। ज्ञान की सम्पदा से संपन्न बनूँ, यह हमने मंगल कामना की। हमारी श्री की शक्ति जागृत हो। इस शक्ति जागरण का हमने प्रारंभ में प्रयोग किया और उसके बाद मंगल भावना की। लोगस्स तथा दशवैकालिक सूत्र का पहला अध्ययन जो स्वयं मंत्र है उसका भी हमने प्रयोग किया।

हम अध्यात्म की चर्चा कर रहे हैं। अध्यात्म एक चिंतनात्मक और दार्शनिक रूप है। दूसरा प्रायोगिक रूप है और वह है व्रत। बारह व्रतों में पहला अहिंसा का व्रत और पांच महाव्रतों में पहला अहिंसा का महाव्रत है। श्रावक ने अहिंसा अणुव्रत स्वीकार किया है और साधु ने अहिंसा महाव्रत। मैं साधु-साध्वियों से ही पूछना चाहता हूँ, आप सबने अहिंसा महाव्रत स्वीकार किया है, क्या उसकी कभी स्मृति होती है? स्मृति के बिना विस्मृति हो जाती है। पाठ चितारा नहीं, पाठ पुनरावृत्ति की, क्या पाठ निरन्तर याद रहेगा? हमारे लिए यह चिंतन का विषय है।

साधना और सिद्धि

• ४३ •



अहिंसा का महाव्रत हमने स्वीकार किया है। प्रतिदिन भावना करें कि मैंने अहिंसा का महाव्रत स्वीकार किया है।

संस्कार निर्माण के लिए संकल्प का प्रयोग आवश्यक है। राजस्थान पत्रिका में कुछ दिनों पूर्व एक लेख छपा था—‘बालकों में संस्कार’। कुलिशजी का श्रद्धापूर्ण पत्र आया, उसमें लिखा था—‘आपका संस्कारों के बारे में लेख पढ़कर मैं धन्य हो गया।’ यह संस्कार निर्माण की बात धन्यता पैदा करने वाली बात है। हमारे छोटे-छोटे साधु-साध्वियां यह चिंतन करें कि हमने अहिंसा का महाव्रत स्वीकार किया है। उसके संस्कार का निर्माण किया या नहीं किया? मैं अहिंसक हूँ, मुझे अहिंसा का विकास करना है। मैंने संकल्प स्वीकार किया है—मैं अहिंसा महाव्रत का पालन करूंगा। चावल को, खिचड़ी को चूल्हे पर अथवा गैस पर रखा है। रखते ही वह नहीं पकेगा। पकने के लिए आंच देनी पड़ती है। आंच कितनी देनी है? अहिंसा के महाव्रत को पकाने का प्रयत्न किया या नहीं किया?

संकल्प ले लिया किन्तु बिना स्मृति कैसे पकेगा? जब संकल्प की स्मृति ही नहीं है तो काम कैसे होगा? एक बुढ़िया प्रतिदिन कोई न कोई काम करना भूल जाती और परेशान रहती। बच्चे आये और बोले—‘दादी! आप इतनी परेशान क्यों हैं!’ ‘क्या करूँ, कोई काम याद नहीं रहता। भूल जाती हूँ फिर पश्चात्ताप होता है।’ बच्चे ने कहा—‘आपको दिन भर के कार्यक्रम की सूची पन्ने में लिखकर दे दूँ, उसे देखकर कार्य करती रहो। फिर विस्मृति नहीं होगी और पश्चात्ताप भी नहीं होगा।’ दादी ने स्वीकृति दे दी। बच्चे ने सुबह से शाम तक काम करने की सूची बनाकर पन्ना दे दिया और कार्यवश बाहर चला गया। शाम को आया, देखा—दादी परेशान है। बोला—‘दादी! आज परेशान क्यों हो?’

‘बेटा! मैं भूल गई मुझे क्या करना है!’

‘तुम्हें पन्ना लिखकर दिया था।’

‘यही समस्या है कि मैंने पन्ना कहाँ रखा, यह भी भूल गई। वह पन्ना भी नहीं मिल रहा है।’ जब याद ही नहीं रहता तो क्या कार्य हो सकता है!

मैंने अहिंसा महाव्रत को स्वीकार किया है, प्राणवध का परित्याग किया है। हमारे लिए एक चिन्तनीय प्रश्न है कि अहिंसा महाव्रत की व्यवस्था दशवैकालिक में ‘सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं’ तक सीमित है। हम जब तक आयारो को न पढ़ें तब तक बात पूरी नहीं होगी। केवल प्राणातिपात का परित्याग पर्याप्त नहीं है। प्रारंभ तो अच्छा है, पर पर्याप्त नहीं है। अगर अहिंसा का महाव्रत इतना ही मानें तो पूरी बात समझ में नहीं आयेगी। अहिंसा का अर्थ व्यापक है। केवल प्राणातिपात तो मात्र सूचक है, सूचना दे रहा है। जब तक मानसिक हिंसा, एक-दूसरे के प्रति अनष्टि की भावना का विचार, ईर्ष्या, निंदा, कलह, झगड़ा, मानसिक विद्वेष और परिताप—इन सबका शोधन नहीं होता तब तक अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। ऐसा मिथ्यावाद नहीं पनपना

साधना और सिद्धि—● ४४ ●

चाहिए कि छिपकली मर गई या कोई जीव मर गया तो प्रायश्चित्त करते हैं, अनुताप करते हैं। दिन भर लड़ाई-झगड़ा चले तो अनुताप ही नहीं है कि मैं कोई हिंसा कर रहा हूँ। बड़ी विचित्र स्थिति बन गई। परस्पर में क्लेश, लड़ाई, झगड़ा, द्वेष, ईर्ष्या, एक-दूसरे को नीचा गिराने की भावना, सब कुछ चलता रहे फिर भी अहिंसा का व्रत खण्डित नहीं होता। चींटी मर जाती है तो कहा जाता है—त्रीन्द्रिय की विराधना हो गई, आलोचना कराएँ। इस वृत्ति का परिष्कार होना आवश्यक है।

हम चिंतन करें, आत्मालोचन करें, आत्ममंथन करें। आध्यात्मिक अनुष्ठान के क्षण में अपने आपको देखने का प्रयत्न करें कि मेरे जीवन में अहिंसा का कितना विकास हुआ है। शायद एक स्थूल शब्द को पकड़ लिया, उसके कारण छलना हो रही है। एक आदमी दूसरे को ठगने का बहुत प्रयत्न करता है। एक दिन मां ने बेटे से कहा—आओ, हम एक काम करें। डिब्बे पड़े हैं सब पर अलग-अलग नाम लिख दें—चीनी का डब्बा, नमक का डब्बा। कभी-कभी भ्रम हो जाता है। मां ने लिखना शुरू किया और बेटा भी लिखता गया। मां ने बेटे से कहा—चीनी के डिब्बे पर नमक का नाम कैसे लिखा? बेटा बोला—मां? मैंने सोच-समझकर लिखा है। नमक का नाम इसलिए लिख दिया है कि चींटिया नहीं आएँ। आदमी ठगने का प्रयत्न बहुत करता है। अपने आपको भी ठगता है, दूसरों को भी ठगना चाहता है। यह धोखा है।

सूत्रकार की भावना को समझें कि अहिंसा का प्रारंभ कहां से करें? पहला बिन्दु बताया गया कि किसी प्राणी का वध मत करो। किसी को मत मारो, मत सताओ, यहां से शुरू करो। इससे आगे बहुत विकास करना है। मन की पवित्रता, भावना की पवित्रता, कलह, कदाग्रह, निंदा, चुगली, परपरिवाद आदि-आदि मानसिक दोषों का शमन और प्रक्षालन हो जाए, निर्मलता बढ़ जाए और चित्त में मैत्री, प्रमोद, करुणा, औदासीन्य का विकास हो जाए। ऐसी चेतना का विकास अहिंसा का विकास है। जैसे हम जप करते हैं, एक सौ आठ बार नवकार मंत्र का उच्चारण करते हैं, क्यों नहीं पांच-दस बार महाव्रतों की अनुप्रेक्षा की जाए? महाव्रतों की अनुप्रेक्षा करें—मैंने अहिंसा महाव्रत स्वीकार किया है, मैं अपने जीवन में अहिंसा का विकास करूंगा। अगर इस प्रकार अनुप्रेक्षा प्रतिदिन चले तो इसका अर्थ है कि हम उस महाव्रत को परिपक्व कर रहे हैं। हमारा संकल्प पुष्ट हो रहा है। कभी पकाने का प्रयत्न नहीं करते हैं, किसी चीज को ग्रहण किया और डिब्बे में बन्द कर रख दिया। अहिंसा का महाव्रत लिया और सुरक्षित रख दिया। जैसे रक्षिता ने रखा। श्वसुर ने बहुओं को पांच-पांच चावल के दाने दिये। उज्जिता ने दाने फेंक दिए और कहा—श्वसुर मंगार्येंगे तो धान्यकोठों से निकाल कर ला दूंगी। भोगवती ने श्वसुर द्वारा प्रदत्त दाने खा लिए। रक्षिता ने सोचा—श्वसुर ने चावल दिये हैं इसका कोई न कोई अर्थ है, एक डिब्बी में बंद कर रख दिये। रोहिणी ने सोचा—श्वसुर ने पांच ही दाने दिए हैं, वापस पांच ही क्या दूँ? उसने दानों का खेत में वपन कर दिया। पांच वर्ष बाद श्वसुर ने दानें मांगे। पहली पुत्रवधु से पूछा—ये दाने वे ही हैं या दूसरे? उत्तर मिला—वे तो

नहीं हैं। इतना बड़ा घर है इसमें चावलों की क्या कमी है? दूसरी से पूछा, उसने कहा—मैंने फेंका नहीं, आपका प्रसाद मानकर खा लिया। तीसरी ने लाकर डिब्बी खोली तो श्वसुर ने उससे पूछा कि चावल तो वे ही हैं या दूसरे? रक्षिता ने कहा—मैंने इन्हें डिब्बी में सुरक्षित रखा है। रोहिणी से कहा—तुम भी अपने चावल लाओ। उसने कहा—गाड़ियां भेजो, तब मेरे चावल आएंगे। रोहिणी ने विस्तार कर दिया। हमारे साधु-साध्वियां, समणियां और सभी लोग सोचें कि हमें उज्झिता और भोगवती तो बनना ही नहीं है। रक्षिता भी नहीं बनना है। पांच महाव्रतों को पांच दानों की तरह पेटी में सुरक्षित नहीं रखना है। रोहिणी बनना है, इनका विकास करना है। अहिंसा का विकास करना है। अहिंसा को पेटी में बंद कर नहीं रखना है। उसके विकास का चिन्तन निरन्तर चलता रहे। जीवन में अहिंसा का विकास कैसे हो? बहुत बड़ी अपेक्षा है अहिंसा का, करुणा का, मैत्री का विकास हो। वह व्यक्तित्व अनायास ही आकर्षक बन जाता है।

महात्मा गांधी के प्रति लोगों का आकर्षण था। उनकी आकृति सुन्दर नहीं थी। शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र था फिर भी दुनिया भर के लोग उनके पास आते और उनके पैरों में बैठते। जवाहरलाल नेहरू जैसे बड़े घराने में पले हुए राजकुमार भी उनके पैरों के पास आकर बैठते थे। दो दिन पहले एक पुराना एलबम देखा था। उसमें एक फोटो देखा। गांधीजी पट्ट पर बैठे हैं और नेहरूजी उनके पास नीचे बैठे हैं। तत्काल मन में आया कि गांधीजी से नीचे नेहरूजी कैसे बैठे हैं? गांधीजी ने अहिंसा और करुणा का बहुत अधिक विकास किया था। इसीलिए उनके आन्तरिक आभामण्डल में ऐसा आकर्षण पैदा हो गया कि उनके पास आकर हर व्यक्ति अपने आपको छोटा अनुभव करता। आनंद का भी अनुभव करता। जिस व्यक्ति में अहिंसा का, मैत्री का विकास होता है, सचमुच उसके पास जाने से आनंद का अनुभव होता है। हिंसा, द्वेष, कलह, निंदा, चुगली—ये सारे मन के मैल हैं। इनके धुलने से आभामण्डल पवित्र बनता है।

हम सब विचार करें—अहिंसा का विकास करना है, उसके लिए रोहिणी बनना है। रक्षिता बुरी तो नहीं पर बहुत अच्छी भी नहीं है। ऐसा संकल्प करें—हम सब रोहिणी की भूमिका निभाएं और अहिंसा को इतना प्रभावी बनाएं, शक्तिशाली बनाएं, जिससे हमारी अहिंसा जीवित और जागृत अहिंसा बन जाए। पूज्य गुरुदेव ने लिखा था—हमारी अहिंसा जागृत बने, जीवित बने, प्राणवान बने, निर्वीर्य-सी न रहे। करुणा का इतना विकास हो कि कोई पराया न रहे, कोई पराये जैसा न लगे।

## सत्य महाव्रत

अध्यात्म का एक प्रयोग है सत्य महाव्रत। सत्य बहुत व्यापक होता है। यहां सत्य का अर्थ वाणी का सत्य है। सत्य महाव्रत में जो स्वीकृत है वह वाक् सत्य है यानी झूठ नहीं बोलना। सत्य इससे भी आगे है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि हम प्रारंभ कहां से करें? विकास के लिए तो बहुत अवकाश है। प्रथम अहिंसा महाव्रत का प्रारंभ करें—प्राण वध न करें। प्रारंभ कर उससे आगे तक पहुंच जाएं। दूसरे महाव्रत का प्रारंभ करें—झूठ न बोलें। उससे आगे सत्य की साधना तक बढ़ते जाएं। सत्य की गूढ़ भाषा है। बहुत कठिन व्याख्या है, समझना भी मुश्किल है।

सबसे पहले यह समझना है कि आदमी झूठ क्यों बोलता है? दसवैकालिक सूत्र में असत्य बोलने के चार कारण बतलाए गए हैं—कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा—क्रोध, लोभ, भय और हास्य हिंसा के कारणों का प्रश्न-व्याकरण में उल्लेख मिलता है किन्तु दसवैकालिक में नहीं। असत्य का प्रयोग व्यक्ति क्रोध के कारण करता है। क्रोध आवेश की स्थिति में होता है। आदमी झूठ बोलता है। यह व्यवहार में दिखाई देता है। बहुत बार व्यक्ति गुस्से में बात को उलट देता है। सारी बात झूठ कह देता है। लोभ से अभिभूत होकर व्यक्ति झूठ बोलता है। वर्तमान में सारा व्यवहार तो लोभ से अभिभूत होकर ही चलता है। सारे व्यावसायिक जगत् की ओर दृष्टिपात करें, सब दो नम्बर का काम चलता है। ये दो नम्बर के धन्धे मृषावाद को बढ़ावा दे रहे हैं। लोभ की चेतना इन सब कार्यों में मुख्य निमित्त बन रही है। लोभ व्यक्ति को कहां से कहां ले जाता है।

एक करोड़पति सेठ अपनी दुकान पर बैठा था। पांच-सात व्यक्ति अच्छी वेशभूषा में उसके पास आए। सेठ ने देखा कि अच्छे आदमी हैं। अभिवादन कर पूछा—‘कैसे आए हो?’ ‘हमने सुना है कि आपके लड़का है। बड़ा अच्छा है। हमारे लड़की है। सगाई सम्बन्ध करना है। इसलिए बातचीत करने आए हैं।’ सेठ ने

कहा—‘ठीक है बातचीत करें।’ सेठ बहुत धनी था। पर लोभ कभी व्यक्ति को बड़ा नहीं बनने देता। वह उसे सदा दरिद्र ही बनाये रखता है। उसने कहा—‘सगाई सम्बन्ध की बात ठीक है। आज तक मेरे सामने कितनी ही प्रार्थनाएं आई हैं, किसी ने कहा—हम आपको दस लाख का दहेज देंगे, किसी ने कहा—बीस लाख का। किसी ने कहा—पचास लाख का पर मैंने सबको टुकरा दिया है। आप जानते हैं मेरा कितना बड़ा व्यापार है।’ अहंकार और लोभ के आवेश में भीतर गया, सारे बही-खाते प्रस्तुत कर दिये, कहा—‘कितना बड़ा व्यापार चलता है।’ तत्काल एक सीटी की आवाज आई। आगन्तुक व्यक्तियों ने कहा—‘हम इन्कम टैक्स के अधिकारी हैं, आपके यहां रेड डालने आए हैं। ये सब बहीखाते जब्त कर रहे हैं।’ सेठ देखता ही रह गया। लोभ का जब आवेश होता है तब वह यह नहीं सोचता किसको मैं बही-खाता दिखा रहा हूं, इसका क्या परिणाम आएगा? क्रोध का भी एक बड़ा आवेश होता है। उस आवेश में आदमी झूठ बोल जाता है, मृषावाद का प्रयोग करता है।

डर के कारण भी व्यक्ति झूठ बोलता है। बच्चे ज्यादा झूठ बोलते हैं। वे सोचते हैं सच बताएंगे तो मां पिटाई करेगी। इसलिए भय के कारण वे झूठ बोलते हैं। हंसी मजाक में भी झूठ बोल देते हैं। बच्चा घर में अकेला है। कोई व्यक्ति आया, उसने पूछा—तुम्हारी मम्मी घर में है? बच्चे ने हां भर दी। व्यक्ति भीतर गया, देखा—कोई नहीं है। बाहर आकर बच्चे को बताया। उसने कहा—मैंने तो मजाक की थी।

मृषा वाक् से बचने के लिए भावों की शुद्धि करनी होगी। जो कोई व्यक्ति उचित आचरण करना चाहता है उसे सबसे पहले मन का शोधन करना होता है। क्योंकि मन का शोधन किये बिना उचित आचरण नहीं होगा। बहुत सुन्दर प्रमाण के द्वारा इस बात को समझाया गया है। रोगी है और उसे दवा देनी है। यदि मल का शोधन किए बिना सीधी दवा दे दी तो कम काम करेगी। उससे विकृति पैदा हो जायेगी। आयुर्वेद की पद्धति और ऐलापैथी की पद्धति दोनों भिन्न हैं। आयुर्वेद की पद्धति में कोई भी दवा देनी है, रसायन का प्रयोग करना है, सबसे पहले उसको पंच कर्म कराया जाता है अथवा रेचन कराकर मल की शुद्धि कराई जाती है जिससे भीतर में मल न रहे। एक सप्ताह तक शोधन का क्रम चलता है। बाद में दवा शुरू होती है। वह दवा काम करती है और उससे शरीर पुष्ट बन जाता है। एलोपैथिक पद्धति में बीमार व्यक्ति के पेट में कितना ही मल जमा हो जाये, ध्यान नहीं दिया जाता है। सीधी एन्टीबायोटिक दवा का प्रयोग करते हैं जिससे मल आंतों में चिपक कर और अधिक विकृत पैदा कर देता है। शोधन के बिना स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता। प्राकृतिक चिकित्सा वाले पचास-पचास दिन वस्ति का प्रयोग करते हैं। हमने स्वयं देखा है, प्रयोग भी किया है, अनुभव भी किया है। जब जयपुर में पूज्य गुरुदेव का

साधना और सिद्धि—● ४८ ●

चातुर्मास था, मुनि शुभकरणजी प्राकृतिक चिकित्सा करा रहे थे। तीस दिन तक सामान्य स्थिति चलती रही। एक महीने बाद विजातीय तत्त्व निकलना शुरू हुआ। तब यह तर्क पैदा हुआ कि बिना खाए इतना मल कहां से आ रहा है। भीतर में अधिक मल इकट्ठा रहता है। उस अवस्था में अगर रसायन का प्रयोग किया जाए तो शायद वह घातक हो जाता है। कोई भी व्यक्ति अध्यात्म की साधना करना चाहे, उसे सबसे पहले मन का शोधन करना है। मन का शोधन नहीं किया, अध्यात्म की साधना में बैठ गया, ध्यान की साधना में बैठ गया और कोई महाव्रत की साधना विशेष में लग गया तब विकृति पैदा हो जाती है, उफान आ जाता है, तूफान भी आ जाता है। इसलिए सबसे पहले मन का शोधन करें।

सबसे बड़ा प्रश्न है—मन की शुद्धि कैसे करें? उसके लिए उपाय खोजना जरूरी है। दो बातें हैं—एक है मन को भीतर की ओर लगाना, दूसरी है मन को रोकना यानी मन का आकर्षण बदल देना। मन बाह्य पदार्थों में लगता है, उसको भीतर में लगा दें। जो बाहर के प्रकम्पनों में लगता है, भीतर के प्रकम्पनों में उसको नियोजित कर दें। मन की गति बदल जाए, दिशा बदल जाए। समग्र परिवर्तन दिशा का ही होता है। दिशा बदलो, सब कुछ बदल जाएगा। मन की गति कहां हो रही है? मन की गति को बदलना है। मन को श्वास के साथ जोड़ दो, मन की दिशा बदल जाएगी। बहुत लोग श्वास के साथ मन को जोड़ने की बात करते हैं, प्रयोग भी कराते हैं किन्तु आकर्षण पैदा नहीं होता। मन श्वास के साथ जब तक नहीं जुड़ेगा तब तक आनंद नहीं आएगा। मन जब श्वास जुड़ता है तब आनंद आता है, सुख का अनुभव होता है। मन की भ्रमणशील अवस्था में सुख का अनुभव नहीं होता। अगर श्वास को देखने में आपको आनंद आने लग जाए तो निश्चित रूप से दिशा बदल जाएगी। मन शुद्ध हो जाएगा। इस अवस्था का निर्माण होना ही पर्याप्त नहीं है, आनंद आना जरूरी है। उसके लिए निर्विचार और निर्विकल्प अवस्था बहुत आवश्यक है। हम सीधे शब्दों में कह दें—द्रष्टा भाव की साधना बहुत आवश्यक है। इससे आनंद आने लग जाएगा।

कोई भी घटना सामने आई और उस घटना के साथ बह जाओ। अच्छी आई तो अच्छा हो गया और बुरी आई तो बुरा हो गया। भावना के साथ जुड़ने और बहने से आनंद नहीं आएगा। घटना को केवल देखो, उसके साथ जुड़ो मत, आनंद आने लग जाएगा। घटना के साथ जुड़ते हैं तो स्थिति बदल जाती है। विद्यासागर के बारे में कहा जाता है—नाटक हो रहा था। उसमें खलनायक का दृश्य सामने आया। विद्यासागर ने बीच में जाकर पीठ पर मुक्का मार दिया। वह तो बेचारा अभिनय कर रहा था, उसके मुक्का जड़ दिया। भावावेश में आदमी घटना के साथ जुड़ जाता है। हमें घटना के साथ जुड़ना नहीं है, घटना को देखना है। जहां घटना को देखते हैं वहां द्रष्टा भाव का विकास होता है।

साधना और सिद्धि ————— ● ४९ ●

कुछ लोगों ने अभ्यास किया है, उन्हें पता है कि देखते-देखते भीतर में आनंद फूटने लग जाता है। काव्यानुशासन में नौ रस माने गए हैं। शृंगार की घटना आई, तो शृंगार में बह गया। हास्य की आई तो हंसने लग गया। द्वेष आया तो क्रूर बन गया। कभी रोने लग गया। वीर रस का आया तो एकदम लाठी हाथ में ले ली। उसके साथ बह गया। उसमें कोई आनंद नहीं आता। आनंद तब आता है जब हम केवल द्रष्टा बनें। यह एक बहुत बड़ा प्रयोग है। इसे अच्छी तरह से समझा नहीं गया, प्रयोग नहीं किया गया। केवल जो कुछ हो रहा है उसको हम देखते रहें, न उसको अच्छा कहें, न बुरा कहें और न हम उसके साथ जुड़ें। केवल देखते रहें। यह देखना बहुत बड़ी कला है। द्रष्टा भाव, ज्ञाता भाव। केवल देखें किन्तु भोगें नहीं। दो भाव बन गए। एक ज्ञाता-द्रष्टा का और एक भोक्ता का। भोक्ता घटना से चिपक जाता है। ज्ञाता-द्रष्टा केवल देखता है, घटना से जुड़ता नहीं। वहां मन का शोधन होता है।

कोई भी व्यक्ति उचित आचरण करना चाहे, उसे पहले मन का शोधन करना है, मन का रेचन करना है या पंचकर्म करना है। वह पंचकर्म क्या होगा? ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास। जैसे-जैसे हमारा ज्ञाता-द्रष्टा भाव बढ़ेगा वैसे-वैसे मन अपने आप शुद्ध होता चला जाएगा। धातु के शोधन का उदाहरण दिया जाता है। धातु का शोधन पानी नहीं, अग्नि से होता है। उससे धातुएं मजबूत बनती हैं। विजातीय कण नहीं रहते। अंतरिक्ष यान में सामान्य धातुएं काम में नहीं आती। वहां धातु का बहुत अधिक शोधन करना होता है। वह शोधन की प्रक्रिया क्या है? एक धातु का शुद्ध डण्डा बना लिया जाता है। अशुद्ध धातु पर वह डण्डा घुमाया जाता है। नीचे की धातु शुद्ध हो जाती है और विजातीय कण अलग हो जाते हैं। जैसे-जैसे हमारा ज्ञाता-द्रष्टा भाव का डण्डा घूमता है, मन का मैल अपने आप अलग होता चला जाएगा।

केवलज्ञानी सब कुछ जानता है, केवलदर्शी सब कुछ देखता है। बड़ी कठिनाई हो जाती है। हम अगर किसी को देखें कि एक आदमी दूसरे को मार रहा है, एक आदमी दूसरे को सतरा रहा है, चोरी कर रहा है। अगर सबको देखे और मन पर असर हो जाए तो उसके लिए जीना मुश्किल हो जाए। दुनिया में अच्छा-बुरा सब कुछ होता है। यदि हम घटना के साथ जुड़ जाएं तो शांति से नहीं रह सकते। जब ज्ञाता-द्रष्टा भाव हो गया या मन का शोधन हो गया तो सब कुछ हो रहा है, फिर भी व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं होता।

महाव्रत की साधना करनी है, अध्यात्म की साधना करनी है तो मन का शोधन पहले करना जरूरी है। सामायिक का प्रयोग किया, मन का शोधन नहीं हुआ, सामायिक का अधिक लाभ नहीं मिलेगा। उपवास किया और मन का शोधन नहीं हुआ। ध्यान किय, जप किया और मन का शोधन नहीं हुआ। उपवास, ध्यान और जप का अधिक लाभ नहीं मिलेगा। आदमी सबसे पहले सोचे कि मुझे मन का

साधना और सिद्धि—● ५० ●



शोधन करना है। मन का शोधन कब होगा ? जैसे-जैसे हमारे ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास होगा वैसे-वैसे मन का शोधन होता चला जाएगा। एक दिन मन इतना शुद्ध बन जाएगा कि किसी घटना का उस पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। शुद्ध आचरण और शुद्ध आचरण और शुद्ध आचरण के लिए मन का शोधन, मन के शोधन के लिए ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास। इस प्रक्रिया से हम आगे बढ़ें तो अध्यात्म क्षेत्र में विकास कर सकते हैं। अच्छा जीवन जीने का, सुख शान्ति का जीवन जीने का, आनंदमय जीवन जीने का, बहुत सारे मानसिक ताप, संताप, क्लेशों से बचने का एक सुंदर निदर्शन आध्यात्म के आचार्यों ने, तीर्थंकरों ने दिया। इस पर हम मनन करें।

## अचौर्य महाव्रत

अध्यात्म का तीसरा व्यावहारिक प्रयोग है अचौर्य, अदत्त वस्तु न लेना। महाव्रत की भाषा एक प्रतीक की भाषा है। यह मात्र सूचक है, सूचना दे रही है। केवल अदत्त न लेना अच्छी बात है पर सम्पूर्ण बात नहीं है। सम्पूर्ण अचौर्य को समझने के लिए आगे बहुत विकास करना होगा। पांच महाव्रतों को समझने के लिए उनकी पच्चीस भावनाओं को समझना होगा। प्रत्येक महाव्रत की पांच-पांच भावनाएं हैं। भावना को छोड़कर महाव्रत की भाषा पूरी समझ में नहीं आती। प्रतिक्रमण में बोलते हैं कि पांच महाव्रत की भावनाओं से भावित नहीं हुए तो मिच्छामि दुक्कडमं।

आचौर्य महाव्रत की पहली भावना है प्रामाणिकता। प्रामाणिकता को समझे बिना आचौर्य महाव्रत को कैसे समझा जा सकता है? प्रामाणिकता का सूक्ष्म निरूपण जैन धर्म में उपलब्ध होता है। मुनि के लिए विधान है कि साधु गृहस्थ के घर गया। जाकर बोला—बह न कैंची दो, नख लेने हैं या अमुक कार्य करना है। गृहस्थ को कह दिया कि नख काटना है तो कपड़ा नहीं काट सकता। कुछ भी विवरण नहीं दिया, ऐसे ही लाया तब तो ठीक है। यदि कह दिया कि यह वस्तु अमुक कार्य के लिए ले जा रहा हूं, उसका उसी कार्य में उपभोग करो। सिर दर्द है, बाम लगाना है। सिर पर लगाओ, हाथ के दर्द पर नहीं लगा सकते। या तो समुच्चय में कह दें, अमुक वस्तु दो, जरूरत है तब तो कोई भी काम कर सकता है। यदि किसी वस्तु को एक कार्य का संकेत कर ले लिया कि मुझे नख काटना है तो फिर दूसरा काम नहीं कर सकता। पछेवड़ी की सिलाई करने के लिए सूई ले जा रहा हूं, यह कर कर सूई लाया है तब पछेवड़ी की सिलाई कर सकता है, चोलपट्टे की सिलाई नहीं कर सकता। यह प्रामाणिकता है, इस पर ध्यान देना है। गृहस्थ के घर से जो वस्तु जिस प्रयोजन से लाया है उसका उसी प्रयोजन के लिए प्रयोजन के लिए प्रयोग करें। यदि उससे अन्य कार्य करना हो तो उस वस्तु की पुनः आज्ञा लें। यह प्रामाणिकता है। प्रामाणिकता का एक और उदाहरण लें, एक साधु के पास छोटा साधु रहता है। छोटे साधु ने कहा—यहां कोलाहल है। मैं सीखने के लिए ऊपर जा रहा हूं।

साधना और सिद्धि—● ५२ ●

एकान्त में बैठूंगा। ऊपर जाकर नींद शुरू कर दी, बातें शुरू कर दी। यह अचौर्य महाव्रत का भंग है, प्रामाणिकता का भंग है। आज्ञा लेकर गया कि पंचमी समिति की आज्ञा है, पंचमी समिति के लिए जा रहा हूँ। बीच में गोचरी चला गया, यह प्रामाणिकता नहीं है। यदि गोचरी जाना हो तो पूरी आज्ञा लेनी चाहिए। हमारे साधु सूरज उगते ही बोलते हैं—मैं अमुक-अमुक कार्य कर रहा हूँ, आपकी आज्ञा है। यह विधि सम्यक् है। एक बात की आज्ञा ली और दूसरा काम करे, वह अप्रामाणिकता है, यह सूक्ष्म बात है। किन्तु अचौर्य महाव्रत की एक भावना है प्रामाणिकता। साधक प्रतिदिन यह चिन्तन करे कि मेरा चित्त प्रामाणिकता की भावना से भावित रहे।

अचौर्य महाव्रत के लिए दूसरी भावना है—संविभाग। जो संविभाग नहीं करता वह अचौर्य महाव्रत की सम्यक् आराधना नहीं कर सकता। शब्द मात्र प्रारंभ का बिन्दु है, शुरू कहां से करे? हमारे लिए बनाकर दिया हुआ आहार नहीं लेंगे, इससे प्रारंभ किया किन्तु प्रारंभ पर अटकना नहीं है, उसका विकास करना है। संविभाग करना है। व्यवस्था कर दी कि दस-घरों में यह साधु जायेगा और दस घरों में यह जायेगा। अगर उसको पूछे बिना दूसरा उसके घरों में चला जाए तो यह असंविभाग है, चोरी है। गोचरी किसी दूसरे साधु की है और मैं गोचरी करके आ गया। यह अचौर्य महाव्रत का एक दोष है। प्रामाणिकता नहीं है, असंविभाग है। गर्मी का मौसम है। दरवाजा सामने है, ठंडी हवा आ रही है। जगह धारी है विश्रुतकुमारजी और जाकर सो गये कीर्तिकुमारजी। यह असंविभाग है। संविभाग कर लिया फिर उसका अतिक्रमण करना, यह भी एक दोष होता है।

बड़ी सूक्ष्मता से हम महाव्रतों पर विचार करें, इनकी साधना करें। पांच महाव्रतों का भार कितना है? उत्तराध्ययन सूत्र का एक प्रसंग है—मृगापुत्र दीक्षा ले रहे हैं। उसकी मां उसे समझा रही है कि बेटा तू नहीं जानता, महाव्रतों का भार कितना है—

**जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महाभरो।**

**गुरुओ लोह भारोव्व, जो पुत्ता होई दुव्वहो।।**

मेरु पर्वत को उठाना है, भार को हम कम से कम महसूस करें कि कितना भार उठाया है। कितना टन वजन है मेरु पर्वत का। ये दुबले-पतले छोटे-छोटे साधु सिर पर मेरु का भार उठाये घूम रहे हैं। हमारे साधु अनुभव करें कि हमने कितना भार उठाया है? उस भार की समीक्षा करें। यह भार जो हमने उठाया है वह हमारे लिए तनाव है या नहीं? उस भार को हम कैसे उठायें? अपनी शक्ति, ऊर्जा और प्राण शक्ति को बटोर कर भावनाओं पर ध्यान दें। प्रामाणिकता का अतिक्रमण न हो, संविभाग की चेतना बनी रहे।

तेरापंथ धर्मसंघ में आहार, पानी आदि के संविभाग की व्यवस्था थी। जितनी भी गोचरी आती उसकी पांती होती। सर्दी के दिनों में चार सौ-पांच सौ साधु-साध्वियां हो जाते। उस समय गोचरी सबकी सामूहिक होती थी। एक साथ

साधना और सिद्धि

● ५३ ●

सबकी गोचरी आती और संविभाग होता। 'पांती' रखाई जाती। पांती कितनी विचित्र होती थी। पांती में व्यंजन रखाना सबसे बड़ा मुश्किल काम था। हर कोई रखा ही नहीं सकता। बड़े कुशल साधु होते, कुशल साध्वियां होतीं, जिनमें धैर्य होता, सहिष्णुता होती, वे ही मण्डल की पांती रखा सकते थे। छपर की बात है, पानी का विभाग हो रहा था। मुनि चांदमलजी स्वामी ने पानी की पांती उस हांडी में से रखी जो मुनि मगनलालजी स्वामी की साझ की थी। उनके साझ में तीस संत थे। हांडी खाली कर दी। दूसरे दिन मुनि कुंदनमलजी स्वामी आए। उन्होंने मुनि चंदनमलजी की हांडी खाली कर दी। दूसरे दिन मुनि कुंदनमलजी स्वामी आए। उन्होंने मुनि चंदनमलजी की हांडी में पानी की पांती रखी। वे तीन साधु थे। हांडी खाली कैसे करें। प्रतिलेखन का समय आ गया। तब पानी की पांती पूरी हुई। कभी-कभी इस प्रकार जटिलता भी आ जाती। पूज्य गुरुदेव ने इस व्यवस्था को बदल दिया। अब आहार की पांती नहीं होती, अपनी-अपनी गोचरी होती है। पानी की भी पांती नहीं होती। मैं कई बार सोचता हूँ कि पांती की व्यवस्था को पूज्य गुरुदेव नहीं बदलते तो आज के साधु-साध्वियों के लिए खाना-पीना मुश्किल हो जाता। सर्दी के मौसम में व्यञ्जन का घी ठस जाता। जो छोटे होते उनके पांती में क्या आता, कहा नहीं जा सकता। छोटे साधु-साध्वियों के लिए तो निर्जरा ही थी। संविभाग की इस व्यवस्था में परिवर्तन हो गया। किन्तु आज जो विधि है, उस पर भी ध्यान दें। संविभाग का मतलब है स्थान का संविभाग, गोचरी का संविभाग। हमारी गोचरी में अमुक घर नहीं आया है फिर भी बिना स्वीकृति के जाना असंविभाग है, संविभाग का अतिक्रमण है।

प्रसंग है राजा भोज के समय का। वह बहुत बड़ा विद्वान था। एक बार घोषणा कर दी, 'कोई नया श्लोक बनाएगा उसको एक लाख रुपये दिये जाएंगे।' राजा ने कई व्यक्तियों को पुरस्कृत किया। मंत्री ने सोचा—वर्ष में एक लाख का पुरस्कार दें तब तो बात समझ में आती है। प्रतिदिन पुरस्कार दें तो खजाना खाली हो जाएगा। उस समय मंत्री ज्यादा चिंता करते थे। उसने एक उपाय खोज लिया। मंत्री की लड़की की स्मृति इतनी तेज थी कि कोई भी आकर श्लोक बोलता वह उसे उसी समय याद हो जाता। मंत्री बोलता—यह नया कहाँ है, यह बहुत पुराना श्लोक है। वह कहता - बिल्कुल नया बनाकर लाया हूँ। गलत बात मत कहो। इस लड़की को यह देखो, यह श्लोक याद है। लड़की को बोलने के लिए कहा, उसने उसी रूप में श्लोक बोल दिया। देखो, यह श्लोक पुराना है, इसको याद है। व्यक्ति शर्मिन्दा होकर चला जाता। बेचारा नया श्लोक बनाकर लाता, उसकी चोरी हो जाती। नव आगन्तुक विद्वान ने सोचा—यह मंत्री विद्वानों को लज्जित कर रहा है। एक दिन विद्वान योजनापूर्वक श्लोक बनाकर आया, आकर बोला—यह मेरा नया श्लोक है। मंत्री को चिंता नहीं थी। लड़की तैयार है। नया क्या है बोलें। विद्वान बोला—

स्वस्ति श्री भोजराज त्रिभुवनविदितो धार्मिकस्ते पिताज्भूत्,  
पित्रा तं वै गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोट्यो मदीया।

साधना और सिद्धि—● ५४ ●

तां मे देहीति राजन्! सकल बुधजनैः ज्ञायते तत्त्वमेतद्,  
नो वा जानन्ति केचित् मम कृति रचवा देहि लक्षं लतो माम् ।।

मंगल आशीर्वाद! भोज महाराज! आपके पिता बड़े तेजस्वी, यशस्वी, शक्तिशाली हुए। कठिनाई में उलझ गये थे, तब मंत्री को बुलाया और बुलाकर कहा कि धन की जरूरत है। निन्यानवे करोड़ रत्नों की मांग की और मैंने उनको दे दिया। अब मेरे निन्यानवे करोड़ रत्न मुझे वापस कर दें। बहुत लोग जानते हैं, यह श्लोक पुराना है। मुझे आप निन्यानवे करोड़ रत्न दे दें। सब विद्वान बोलें—नहीं, हम नहीं जानते। लड़की बोली—मुझे भी यह नहीं आता है। विद्वान ने कहा—‘तब यह मेरा नया श्लोक है। लाओ, मेरा लाख रुपया।’

चोरी के कितने तरीके होते हैं। किसी की बात चुरा ली जाती है, शब्द चुरा लिया जाता है, किसी का श्लोक चुरा लिया जाता है। चोरी का इतना सूक्ष्म संवदेनशील विषय है। प्रामाणिकता होने पर आचौर्य महाव्रत की साधना हो सकती है। यह अध्यात्म का एक सुन्दर और व्यावहारिक प्रयोग है।

## ब्रह्मचर्य महाव्रत

चौथा महाव्रत है ब्रह्मचर्य। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा। वेदान्त में ब्रह्म उसको कहा गया है जो व्यापक है। संस्कृत का शाब्दिक अर्थ भी ठीक है ब्रह्म अर्थात् व्यापक। जो व्यापक होता है वह ब्रह्म है। आत्मा और परमात्मा तात्पर्यार्थ में ले सकते हैं। ब्रह्मचर्य का एक अर्थ है आत्मा में रमण। ब्रह्मचर्य का व्यापक संदर्भों में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रारंभ बिन्दु है—इन्द्रिय विजय, वस्ति विजय। इन्द्रिय विजय या इन्द्रियों का निग्रह करना या वस्ति का निग्रह करना ही इसका अन्तिम ध्येय नहीं है। यह ब्रह्मचर्य का प्रारंभ मात्र है। मूलतः ब्रह्मचर्य का अर्थ है आत्मा में रमण करना। यह आचारांग का सूत्र है। आचारांग सूत्र में प्रारंभ बिन्दु की चर्चा नहीं है किन्तु निष्पत्ति की चर्चा है। दशवैकालिक में प्रारंभ बिन्दु बतलाए गए हैं। कठिनाई हो सकती है, यदि प्रारंभ बिन्दु को मानकर वहीं तक अटक जाए। हमें अटकना नहीं है। दशवैकालिक सूत्र में प्रदत्त पांच महाव्रतों की व्यवस्था को समझने के लिए आचारांग सूत्र को गहराई से पढ़ना चाहिए। आचारांग में पांच महाव्रतों की व्यवस्था नहीं है। वहां नाम भी नहीं है। वहां सीधा आचार के बारे में बतलाया गया है। आचार का मूल अर्थ है आत्मा। आचारांग का प्रारंभ आत्मा से होता है और आत्मा में ही आचार परिसंपन्न होता है। आत्मलीन होने और आत्म दर्शन करने से आत्मा अपने आप शांत रहेगी।

गंध का ब्रह्मचर्य के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। आज के शरीर विज्ञानी या ओकल्ट साइंस वाले बतलाते हैं कि हमारे मस्तिष्क में जो एक पुरानी परत है, वह गंध से उत्तेजित होती है। इसीलिए वातावरण को सुगंधित रखा जाता है। उत्तेजना के लिए सुगंधित वातावरण का निर्माण किया जाता है। सिर्फ गंध पर ही नहीं, पाचों इन्द्रियों पर विजय पाना जरूरी है। पाचों इन्द्रियों पर विजय पाना भी पर्याप्त नहीं है। वात, पित्त और कफ की प्रधानता शरीर को उत्तेजित करती है। वात की अधिकता वस्ति पर प्रभाव डालती है। पित्त की प्रधानता भी समस्या पैदा करती है। कफ की प्रधानता से थोड़ी कम समस्या होती है। किन्तु वायु और पित्त ये दोनों बहुत ज्यादा प्रभावित करते हैं। बहुत सारे लोग ब्रह्मचारी रहना चाहते हैं, भावना पवित्र रखना चाहते हैं किन्तु वात और पित्त ये दोनों शारीरिक समस्या पैदा करते हैं। बहुत लोगों के स्वप्न दोष और वीर्य स्खलन होता है। कुछ संन्यासी मानते हैं वीर्य का

साधना और सिद्धि—● ५६ ●

स्खलन होना भी ब्रह्मचर्य की हानि है। मैं ऐसा नहीं मानता। यह शारीरिक प्रक्रिया है अथवा वात, पित्त आदि के कारण पैदा होने वाली समस्या है। उससे ब्रह्मचर्य की हानि मानना कैसे उचित हो सकता है? इतना अवश्य है कि उसके पीछे विकारात्मक वृत्ति या विकारात्मक स्वप्न न हो।

ब्रह्मचर्य को हमें सम्यक् समझना है। सम्यक् नहीं समझने के कारण बहुत सारी भ्रान्तियां पैदा होती हैं। हमारे पास एक व्यक्ति आया। बहुत व्यथित था, मन में बड़ी वेदना थी। मैंने पूछा—क्या हुआ? वह बोला कि ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा है और वीर्य का स्खलन हो रहा है। मैंने कहा—इन दोनों को मत जोड़ो। यह परिभाषा थी पर उसका तात्पर्य दूसरा था। वह बहुत गूढ़ बात है। हमने इस पर बहुत खोज की। अनेक डॉक्टरों से बातचीत की। अनेक ग्रंथों को पढ़ा। मैंने 'मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्य' पुस्तक में लिखा है—जैसे शरीर के अन्य तत्त्वों का निर्गमन होता है, वैसे ही वीर्य का भी स्खलन होता है। यदि वह न हो तो समस्या पैदा हो जाती है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसमें ब्रह्मचर्य की हानि मानकर मन में कुण्ठा पैदा नहीं करना है और दुःखी भी नहीं होना है। ब्रह्मचर्य है मन की पवित्रता, मन में विकार न हों, इन्द्रियां भी विकृत न हों।

अभी हमारा योगशास्त्र के आठवें अध्याय का पाठ चल रहा था। उसमें आचार्य हेमचन्द्र ने बहुत सुन्दर लिखा है—आत्मा मन को प्रेरित करती है। मन इन्द्रियों को प्रेरित करता है। यह प्रेरणा हमारी वहां तक पहुंच जाए कि आत्मा मन को प्रेरित न करे, मन इन्द्रियों को प्रेरित न करे। यह है ब्रह्मचर्य की साधना। वृत्ति भीतर से न जागे। मैंने अनुभव किया—प्रेरणा कहां से उठती है? इन्द्रियां अपने आप कोई भी काम नहीं करती। मैं स्वयं अपनी वृत्ति को देखता रहता हूं। एक बार मैं हाथ धो रहा था। मन में विकल्प उठा—कितने बजे हैं। हाथ धोने का काम तो गौण हो गया और घड़ी के सामने ध्यान चला गया। क्यों? आंख का काम तो नहीं था। आंख घड़ी देखना नहीं चाहती थी। क्या कभी आंख घड़ी देखना चाहती है? आंख का काम ही नहीं है। आंख तो बेचारी जहां है वहां है। मन ने कहा—घड़ी देखो तो ध्यान उधर चला गया। मन ने कहा—इधर देखो तो आंख उधर चली गई। आंख को कौन चला रहा है? मन का नाथ कौन है? पवन। इन्द्रियों का नाथ कौन है? मन। इन्द्रियां स्वतः चालित नहीं हैं। मन में आया - आज मिठाई खानी है। मन कभी नहीं कहेगा। आज मिठाई खानी है। आत्मा बेचारी कहती नहीं है। सारा दोष जीभ को दिया जाता है। इन्द्रियों ने क्या बिगाड़ा? आंख ने क्या बिगाड़ा? जीभ ने क्या बिगाड़ा? पर सारा दोष जीभ पर आता है कि जीभ बड़ी खराब है। कुछ लेखकों ने आंख को बहुत गालियां दी हैं। एक मत यह चल पड़ा कि आंख विकार पैदा करती है तो आंख को फोड़ देना चाहिए। उस मत के अनुयायी साधना करते हैं और आंख को फोड़ डालते हैं। इतना तो अच्छा किया कि जीभ को काटा नहीं।

साधना और सिद्धि

• ५७ •



हम मूल बात को पकड़ें। इन्द्रियों का संचालन करने वाला है मन। सबसे पहले उसको नियंत्रित करें, उसका शोधन करें। मन नियंत्रित है, खाने की बात मन में नहीं आएगी। बढ़िया-बढ़िया चीजें खाएं, कठिनाई भी नहीं आएगी। ब्रह्मचर्य का बिल्कुल ठीक अर्थ बैठता है आत्मरमण। जब मन आत्मा में लीन होता है तब वह स्थिति बनती है। शरीर विज्ञान का मत है हमारे शरीर में विकास पैदा होता है, उसके अनेक कारण हैं—शरीर, शरीर की धातुएं, शरीर में पैदा होने वाले रसायन और बाह्य उत्तेजना आदि-आदि।

हमारा मन आत्मलीन बने। आत्मलीन की स्थिति तक पहुंचने के लिए बाह्य स्थितियों से सावधान रहना पड़ेगा। वायु ज्यादा न बढ़े। वह मन को चंचल बनाती है। पित्त ज्यादा न बढ़े। पित्त के कारण ऊष्मा बढ़ती है। प्रज्ञापना वृत्ति में अनेक निमित्तों की चर्चा की गई। वहां बतलाया गया है एक चीज खाई, पित्त बढ़ा, क्रोध मोहनीय का उदय हो गया। क्रोध आने का बड़ा कारण बनता है पित्त की गर्मी। क्रोध बढ़ने से ऊष्मा बढ़ेगी और बात-बात में गुस्सा आने लग जाएगा। यह ध्यान देना जरूरी है कि ऐसी चीजें न खाऊं, जो पित्त को बढ़ाने वाली हों। ऐसी चीजें न खाऊं, जो वायु को बढ़ाने वाली हों। वात, पित्त कुपित होते हैं फिर कंट्रोल करना मुश्किल हो जाता है। ब्रह्मचर्य के बहुत सारे पहलू हैं, उन सारे पहलुओं पर विचार करना जरूरी है। मैं यह नहीं मानता कि उपवास, बेला, तेला आदि की तपस्या करने से ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है। तपस्या के समय वृत्तियां शांत रहती हैं। खाना खाया और उत्तेजित हो गई। तपस्या स्थाई उपाय नहीं है। इस पर हमारे प्राचीन आचार्यों ने बहुत विचार किया और एक समाधान दिया—तुम्हारा भोजन संतुलित होना चाहिए। कभी विगय खाओ और कभी विगय का वर्जन करो। व्याख्या साहित्य में यह बतलाया गया है कि अगर बौद्धिक काम करना है, मेधा से काम लेना है, स्निग्ध और मधुर भोजन का सेवन जरूरी है। अन्यथा बुद्धि कुण्ठित हो जाएगी। बौद्धिक काम नहीं कर सकोगे।

भगवान महावीर ने दो प्रकार के साधुओं के बारे में बताया। पहले प्रकार के वे साधु थे, जो स्वयं अध्ययन करने की क्षमता नहीं रखते, तपस्या में लीन होकर तपस्या करते। वर्धमान प्रतिमा, आर्यंबिल आदि तप अथवा बेला-तेला आदि तपस्या। दूसरे प्रकार के वे साधु थे, जो अध्ययन की क्षमता रखते, वे अध्ययन में लग जाते, वे स्निग्ध और मधुर आहार का सेवन करते। ध्यान करने की क्षमता वाले ध्यान की गहराइयों में जाते। एक बौद्ध भिक्षु आर्यरक्षित के पास आए और बोले—‘बौद्धों में जैसी ध्यान की प्रणाली है वैसी आप लोगों में नहीं है।’

आर्यरक्षित सूरि ने कहा—यह क्या कह रहे हो? जैन परम्परा में ध्यान का स्थान बहुत ऊंचा है। हमारी ध्यान की प्रणाली भी बहुत उत्कृष्ट है। मैं शब्दों में क्या कहूँ? इसका जीवन्त उदाहरण है दुर्बलिका पुष्यमित्र। यह दुबला क्यों हुआ?

बौद्ध भिक्षु ने कहा—पौष्टिक आहार के अभाव में ऐसा हुआ होगा?

साधना और सिद्धि—● ५८ ●

आर्यरक्षित ने कहा—देखो! यह है घृत पुष्यमित्र! इस घृतलब्धि-योगविभूति प्राप्त है। कल्पना करो—एक दरिद्र स्त्री है गर्भवती है। उसके पति ने छह मास के प्रयत्न से घृत संचय किया है। वह स्त्री कृपण है। उसका पति भूखा हो, घी मांगे तो भी वह अपने पति को देना नहीं चाहती। घृतपुष्यमित्र गोचरी जाए तो वह उसके पात्र में सहर्ष घी उंडेल देगी। फिर कैसे माना जाए कि पौष्टिक आहार के अभाव में दुर्बलिका पुष्यमित्र दुबला-पतला है। बौद्ध भिक्षु—फिर क्या कारण है? आर्यरक्षित ने कहा—ध्यान की उत्कृष्ट आराधना से ही ऐसा बना है। विश्वास न हो तो कुछ दिन इसे आपके साथ रखकर परीक्षा कर लीजिए। बौद्ध भिक्षु ने आर्यरक्षित की बात को स्वीकार कर लिया। दुर्बलिका पुष्यमित्र आचार्य का आदेश प्राप्त कर उस भिक्षु के साथ चले गए। कुछ दिन वहां रहे। पौष्टिक भोजन किया। पर वे स्थूल नहीं बने। साधना के लिए घी आदि का वर्जन नहीं है किन्तु भोजन का संतुलन जरूरी है।

बहुत खाना अथवा प्रतिदिन खाना साधना का बाधक तत्त्व है। कोरा रूखा भोजन करोगे तो प्रस्रवण अधिक होगा। स्निग्ध भोजन ग्रहण करोगे तो प्रस्रवण कम होगा। इसलिए खाद्य संयम का विवेक आवश्यक है। हमारा भोजन कैसा हो? यह एक बहुत बड़ा विषय है। आज चर्चा चल रही है कि विद्यालयों में यौन शिक्षा होनी चाहिए। एक अर्थ में यह गलत बात है। वास्तव में सोचता हूं तो प्रतीत होता है कि अगर ठीक ढंग से वह हो तो अति आवश्यक है। छोटे बच्चे को यह विवेक दे दिया जाए कि तुम्हें इन्द्रियों का संयम कैसे करना है? न करने से क्या हानि है? करने से क्या लाभ है?

बीकानेर की बात है। एक व्यक्ति आया। वह बहुत समझदार था। मैं उस समय छोटा था और वह अवस्था में बड़ा था। बोला—मेरी एक समस्या है? मेरा दिमाग सूना हो गया। किसी को बताने जैसी बात नहीं है। बताने में संकोच होता है। आपसे मुझे मार्गदर्शन लेना है इसलिए कहना पड़ेगा। मैंने पूछा—बोलो—क्या बात है? उसने बताया—‘दुर्भाग्यवश मैंने अप्राकृतिक मैथुन का सेवन किया। उससे मैं शक्तिहीन-सा हो गया हूं। मस्तिष्क में पागलपन आ गया है और मुझे कुछ सूझ नहीं रहा है। सारी दुनिया मेरे लिए निकम्मी हो गई है।’ प्रारंभ से एक बच्चे को यह ज्ञान कराना चाहिए कि अति वीर्य की हानि से क्या-क्या नुकसान होते हैं, शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, मन पर क्या प्रभाव पड़ता है? स्मृति पर क्या प्रभाव पड़ता है? छोटे-छोटे बच्चे आते हैं कहते हैं याद नहीं रहता। अभी तो जन्मे हैं और याद नहीं रहता। कोई बूढ़ा आदमी सत्तर वर्ष का कहे कि मुझे याद नहीं रहता, बात समझ में आ सकती है। पर यह बात अच्छी नहीं है कि एक बारह वर्ष का, चौदह वर्ष का बच्चा कहे कि मेरी स्मरण शक्ति कमजोर है। इसका मतलब कि कोई न कोई बात वहां हो रही है। बचपन में सब कुछ बता दिया जाए तो वह अप्राकृतिक मैथुन से बच सकता है। वीर्य का यथावश्यक संरक्षण करना मन के लिए, स्मृति के लिए, चिंतन के लिए, बुद्धि के लिए कितना जरूरी है, यह बात ठीक समझ में आ जाए तो आदमी अनेक बीमारियों

साधना और सिद्धि

• ५९ •

से बच सकता है, उसके विकास का रास्ता भी खुल सकता है।

मैं गृहस्थों की बात छोड़ दूँ, छोटे-छोटे साधु-साध्वियों को भी इन सब बातों का ज्ञान होना चाहिए। इस विषय में संकोच नहीं होना चाहिए। वीर्य क्षय से क्या-क्या हानियाँ होती हैं और उन्हें ध्यान में न रखा जाए तो कितना नुकसान हो सकता है, कितनी कठिनाइयाँ हो सकती हैं। ज्ञान हो तो काफी उपाय हो सकता है और काफी सुरक्षा भी की जा सकती है। इसलिए यह आवश्यक विषय है कि इन्द्रियों का संयम कैसे किया जाए? इन्द्रियों का संयम करने के लिए मन का संयम कैसे किया जाए? मन का संयम करने के लिए पवन का संयम यानी श्वास का संयम कैसे किया जाए? इन सबको जानना अपेक्षित है। कुछ बातें जहाँ चिन्ता नहीं करने की हैं वहाँ तो बहुत चिन्ता कर लेते हैं और जहाँ चिन्ता करने की हैं वहाँ ध्यान ही नहीं जाता। इस विषय में पूरा ज्ञान होना बहुत जरूरी है। ज्ञान होने से बचाव की उपयोगी प्रेरणा मिलेगी।

हम अध्यात्म की चर्चा कर रहे हैं, अध्यात्म का अनुष्ठान कर रहे हैं। अध्यात्म का मतलब ही है आत्मा में रहना। गणित का प्रयोग करें—चौबीस घण्टों में हम आत्मा के साथ कितने घण्टे रहते हैं? मन के साथ कितने घण्टे रहते हैं? बुद्धि के साथ कितने घण्टे रहते हैं? इन्द्रियों के साथ कितने घण्टे रहते हैं? ये चार हैं—आत्मा, मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ। जब हम पढ़ते-लिखते हैं तब हम स्मृति, मति और बुद्धि के साथ रहते हैं। लेख लिखते हैं तब किसके साथ होते हैं? मन और बुद्धि दोनों के साथ रहते हैं। कोई भी निर्णय लेते हैं, बुद्धि के साथ रहते हैं। जब चिन्तन करते हैं स्मृति करते हैं तब हम मन के साथ जीते हैं और जब इन्द्रियों से काम लेते हैं तब इन्द्रियों के साथ रहते हैं। अब अपना-अपना गणित करें। मुझे लगता है कि हम इन्द्रियों के साथ बहुत रहते हैं। कभी देखते हैं, कभी सुनते हैं, कभी खाते हैं, कभी कुछ करते हैं। मन के साथ भी रहते हैं। बुद्धि के साथ उससे कम रहते हैं। आत्मा के साथ और भी कम रहते हैं। हम एक क्रम बनाएं—दिन में कम से कम दो घण्टा तो आत्मा के साथ रहना है।

जो व्यक्ति इन्द्रियों के साथ रहे, मन के साथ रहे, बुद्धि के साथ रहे और आत्मा के साथ न रहे वह केवल भौतिकवादी है और जो व्यक्ति इन्द्रिय, मन और बुद्धि से परे आत्मा के साथ रहता है वह है अध्यात्मवादी। पहली बहुत महत्त्वपूर्ण बात है हम किसके साथ रह रहे हैं? अगर हम आत्मा के साथ रहें तो ब्रह्मचर्य की बात पूरी समझ में आएगी और आत्मा के साथ न रहें तो एक मच्छर का काटना भी भारी पड़ जाएगा।

साधना और सिद्धि ————— ● ६० ●

## अपरिग्रह महाव्रत

पांचवां महाव्रत है अपरिग्रह और अध्यात्म का पहला सूत्र है अहंकार का त्याग, ममत्व का त्याग, मैं और मेरेपन का त्याग। समस्या क्या है? दुनिया की सारी समस्याओं का वर्गीकरण करें और फिर खोज करें कि इनका उत्स क्या है? इनका माता-पिता कौन है? तब निष्कर्ष सामने आएगा—अहंकार और ममकार। मैं और मेरेपन ही समस्या की जड़ है। मैं के साथ हजारों समस्याएं जुड़ी हुई हैं। मैं डॉक्टर 'मैं हूँ' यह अहंकार बन गया। यह प्रयोग गलत है। अध्यात्म के विचारकों ने 'मैं हूँ' के स्थान पर 'मैं है' यह प्रयोग शुद्ध माना है।

अहंकार की बहुत बड़ी समस्या है। 'मैं' यह समस्या पैदा कर रहा है। मैं धनवान हूँ। दुनिया में धनवान लोग सुख का भोग कम करते हैं। यह 'मैं' सारा धन इकट्ठा करवा रहा है। अगर यह 'मैं' नहीं होता तो आदमी इतना बुरा काम नहीं करता, पाप का धंधा नहीं करता, दूसरे का शोषण भी नहीं करता। अहंकार के कारण सब कुछ हो रहा है। अधिक धन का संग्रह करने वाला अधिक तनाव का अनुभव करता है। वह अच्छी तरह से भोजन भी नहीं कर सकता। एक बार प्रश्न पूछा गया—मीठी रोटी कौन खाता है। उत्तर मिला—गरीब आदमी। संपन्न आदमी मीठी रोटी नहीं खाता, स्वादिष्ट भोजन नहीं करता। यह बात समझ में नहीं आती है। पर रहस्य को समझने पर सच लगेगी। कारण स्पष्ट है। भूख किसको लगती है? संपन्न आदमी को भूख नहीं लगती तो रोटी मीठी कैसे लगेगी?

पंजाब यात्रा के बाद पूज्य गुरुदेव दिल्ली पधारे। डालमियाजी की कोठी पर विराजे। गुरुदेव ने देखा—डालमियाजी के सामने टेबल पर भोजन रखा हुआ था। चारों ओर से फोन की घण्टियां बज रही थीं। डालमियाजी कभी किसी से बात कर रहे थे, कभी किसी से। गुरुदेव ने डालमियाजी से कहा—'यह क्या हो रहा है?' डालमियाजी ने कहा—'महाराज! मैं रूखा खांखरा और उबली हुई सब्जी खाता हूँ। मेरा ड्राइवर खूब खाता है। मुझे तो गोलियां लेकर भी पूरी नींद नहीं आती और मेरा ड्राइवर रात भर मजे की नींद लेता है। उसको देखता हूँ तो मन में आता है, घर का मालिक यह है या मैं हूँ?' स्वादिष्ट भोजन गरीब आदमी करता है, धनी आदमी

नहीं। उसकी भूख ही बंद हो जाती है। जब तक धन नहीं होता, खाने की इच्छा रहती है, खाता भी है। जब धन हो जाता है, खाने के पदार्थ सुलभ होते हैं तब खाना बंद हो जाता है।

अहंकार की समस्या के कारण व्यक्ति सुख भी प्राप्त नहीं कर सकता। इस समस्या का गहराई से विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि 'मैं' केन्द्र में रहता है तब परिधि में कितनी समस्याएं पैदा होती हैं। दूसरे दृष्टिकोण से देखें—अगर 'मैं' न हो तो दुनिया कैसे चलेगी? दुनिया को दुनिया रहना है, उसको इसी रूप में चलना है तो 'मैं' को भी चलना है।

हम दूसरी दुनिया की बात कर रहे हैं, अध्यात्म की चर्चा कर रहे हैं। अध्यात्म का जीवन स्वीकार करने वालों के लिए अपरिग्रह क्या है? मैं विद्वान हूं, मैं पण्डित हूं, यह 'मैं' भी परिग्रह है। मैं अच्छा विचार करता हूं, यह विचार क्या है? यह भी परिग्रह है। जैसे धनी लोगों के मकान आदि परिग्रह होते हैं, वैसे ही विद्वानों के विचार और शास्त्र परिग्रह बन जाते हैं। ये मेरी पुस्तकें हैं, यह परिग्रह है। लिखना अच्छा है, विचार देना अच्छा है, उससे बंधे रहना अच्छा नहीं है। मैं पुस्तक लिखता हूं। लिखने के बाद कौन छपाता है? कहां छपती है? मुझे कुछ भी अवगति नहीं रहती। मेरी पुस्तकों का सम्पादन कार्य पहले मुनि दुलहराजजी करते थे। अब धनज्जयजी कर रहे हैं। बहुत लोग दर्शन करते आते हैं, पूछते हैं—आपकी नई किताब कौन-सी है? मुझे नाम भी याद नहीं रहता। मैं कहता हूं—संतों से जानकारी कर लो। छपने के बाद पुस्तकें कहां गईं, कौन कितनी संख्या में ले गया? अगर यह सारा भार हमारे सिर पर रहे तो अपरिग्रह कहां हुआ?

कोई भी कार्य किया और उसे छोड़ दिया, यह है अपरिग्रह। देवता ने साधु से कहा—वरदान मांगो। साधु ने कहा—मुझे जरूरत नहीं है। देवता ने बहुत आग्रह किया—कुछ तो मांगना ही पड़ेगा। बहुत अनुनय-विनय के बाद आखिरकार साधु ने कहा—देना है तो दे दो, क्या देना चाहते हो? देवता ने वरदान देते हुए कहा—तुम मुड़ कर जिसकी ओर देखोगे वह मृत आदमी भी जिन्दा हो जायेगा। साधु ने कहा—इसके साथ एक वरदान और दे दो—मैं पीछे मुड़कर न देखूं। यह है अपरिग्रह, अध्यात्म का बिल्कुल नया स्वरूप।

पूज्य गुरुदेव उदयपुर विराज रहे थे। स्थान बहुत बड़ा था। परिषद भी बहुत बड़ी थी। लगभग दस हजार आदमी होंगे। मैं गुरुदेव के सान्निध्य में वक्तव्य दे रहा था। मैंने गुरुदेव से निवेदन किया। भारतीय धर्मों में 'अहिंसा परमोधर्मः' यह घोष बहुत मुखर हो रहा है। आज से इसको बदल देना चाहिए। हम महावीर को समझें, महावीर वाणी को समझें। महावीर ने कभी नहीं कहा कि अहिंसा परम धर्म है। महावीर की वाणी निष्कर्ष है, 'अपरिग्रहः परमोधर्मः' अपरिग्रह परम धर्म है।

साधना और सिद्धि—● ६२ ●

अपरिग्रह को समझने पर ही जीवन में अहिंसा का अवतरण होगा। अपरिग्रह के अभाव में अहिंसा अधर में झूलती रह जाएगी, आकाश में लटकती रह जाएगी।

सबसे पहली बात है अपरिग्रह, ममत्व का त्याग, मेरेपन का त्याग। बहुत कठिन साधना है। साधु बन जाने की बात कठिन है फिर भी साधना के द्वारा आगे बढ़ा जा सकता है। यदि कोई साधु यह कहे कि यह मेरा पेन है, मेरी डायरी है। गलत बात है। वह कहेगा—यह डायरी में मेरी निश्रा में है, पेन मेरी निश्रा में है। मेरा नहीं है। मेरी निश्रा में है, मैं इसे काम में ले रहा हूँ। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ की स्थापना की। तेरापंथ की स्थापना अपरिग्रह का व्यावहारिक प्रयोग है। मैं और मेरा, अहंकार और ममकार का विसर्जन। आचार्य भिक्षु ने कहा—कोई किसी का शिष्य नहीं होगा। शिष्य सारे आचार्य के होंगे। पुस्तक, पत्रे, पात्र, रजोहरण आदि उपकरण किसी भी साधु-साध्वी के नहीं हैं। सब गुरु की निश्रा में हैं। कोई साधु किसी को अपना शिष्य नहीं बनाएगा, यह अपरिग्रह है। उपकरण आदि संघ की निश्रा में हैं, यह अपरिग्रह है।

पुराने साधु हाथ से प्रतियां लिखते थे। वे समुच्चय में भेंट आती। उन पर लिखा जाता—श्री भिक्षु, भारीमाल, कालूगणी और तुलसीगणी री नेश्राय में है। आज भी सैकड़ों प्रतियों पर लिखा हुआ है। सब कुछ संघ की निश्रा में है, व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है। हमारे साधु-साध्वियां पात्रों पर नाम देते हैं। यह पात्र मुनि कीर्तिकुमार की निश्रा में, मुनि जम्बूकुमार की निश्रा में है। निश्रा में है, इसका मतबल है उपयोग करने के लिए उसको दी गई है, वह उसकी नहीं है। रजोहरण किसका है? संघ का। तुम किसके हो? संघ के। अपना कुछ भी नहीं है। अपना कुछ न होना, मैं और मेरेपन का त्याग करना तेरापंथ है। यह अपरिग्रह का व्यावहारिक प्रयोग है।

पूज्य गुरुदेव और मैं कई वर्षों से सोच रहे थे कि कुछ व्यक्तियों को और दीक्षित करके सब सिंघाड़ों को व्यवस्थित कर दें। फिर हम महोत्सव पर सभी सिंघाड़ों का आमूलचूल परिवर्तन कर दिया जाए। पर उस स्थिति का निर्माण नहीं हो सका। एक समय था जब सिंघाड़े, साधु या साध्वी पर अग्रगामी का अधिकार था। मेरे सिंघाड़े के साधु या साध्वी को कोई नहीं ले सकता। इसीलिए साध्वी दीपांजी के पास सतरह, अठारह अथवा बीस तक साध्वियां रहती थीं। किसी सिंघाड़े के पास तीन-चार साध्वियां रहती थी। जयाचार्य ने सब सिंघाड़ों का समर्पण कराया।

महासती सरदारांजी और जयाचार्य के विरल योग ने परिवर्तन का नया इतिहास बना दिया। जयाचार्य ने कहा—सारी पुस्तकें संघ की हैं। अग्रगामी इस सुझाव को कैसे मान्य कर सकते थे? उन्होंने कहा—पुस्तकें हमारी हैं। हम संघ को कैसे देंगे? जयाचार्य ने कहा—तुम तो हमारे हो और पुस्तकें तुम्हारी हैं। तुम्हारी पुस्तकों का भार कोई दूसरा साधु नहीं उठाएगा। अकेला अग्रगामी पुस्तकों का भार कैसे उठाए? सारे अग्रगामियों ने कहा—हम सब अपनी पुस्तकें संघ को समर्पित करते

साधना और सिद्धि ————— ● ६३ ●

हैं। सबने विसर्जन कर दिया। विसर्जन बड़ा मुश्किल है।

कोई व्यक्ति धन को कैसे छोड़ सकता है ? उसका विसर्जन कैसे हो सकता है ? विसर्जन का सूत्र समाज को दिया गया है पर वह क्रियान्विति नहीं हो रहा है। सौ, दो सौ रुपये का विसर्जन करना हो तो भी हाथ भारी हो जाते हैं। एक कंजूस आदमी साग-सब्जी खरीदने बाजार गया। हाथ में एक पैसा था। सोचने लगा एक पैसे से तो बहुत चीजें आ सकती हैं। मालिन के पास सब्जी लेने के लिए भाव मुलाई करने लगा। अहं में कहा—ठीक है अमुक सब्जी ले लेंगे। सब्जी लेकर थैले में डाली। अब पैसा देने के लिए मुट्टी खोली। उसने देखा—पैसा तो रो रहा है। सब्जी मालिन को लौटा दी। पुनः घर आ गया। पत्नी ने कहा—सब्जी ले आए ? उत्तर दिया—कैसे लाता, बेचारा पैसा रोने लगा। इसका दुःख मुझसे देखा नहीं गया।

साधुओं के लिए भी समस्या थी कि विसर्जन कौन करेगा ? अपनी पुस्तक, अपना अधिकार, कौन विसर्जन करेगा ? जयाचार्य मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने पुस्तकों का समर्पण करवा लिया। यह है अहंकार का विसर्जन और ममकार का विसर्जन। अगर कोई अध्यात्म को समझना चाहे, आध्यात्मिक बनना चाहे तो उसका पहला पाठ क्या होगा ? अध्यात्म की वर्णमाला अथवा अध्यात्म का क, ख, ग क्या होगा ? मैं नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है—यह अध्यात्म का पहला पाठ है। यही अध्यात्म की वर्णमाला है। इसी का नाम है अपरिग्रह। इसी का नाम है असंग्रह। यह शरीर भी मेरा नहीं है। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है—यह कायोत्सर्ग है, यही अपरिग्रह है। कायोत्सर्ग के अभ्यास से ममत्व छूटता है। पूज्य गुरुदेव राजलदेसर में चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। अचानक साईटिका का दर्द हो गया। चलना मुश्किल हो गया। दिल्ली की यात्रा पूर्व घोषित थी। समस्या पैदा हो गई। अस्थि विशेषज्ञ डॉ. माथुर बीकानेर से आए। वे मधुर व्यवहार वाले हैं और वाक्पटु। उन्होंने कहा—गुरुदेव ! आपको २-३ सप्ताह बेडरेस्ट करना होगा। मैंने कहा—बेडरेस्ट शब्द अच्छा नहीं लगता। गुरुदेव कायोत्सर्ग का प्रयोग करेंगे। गुरुदेव ने कायोत्सर्ग किया। यह ममत्व विसर्जन का प्रयोग है। यह अपरिग्रह का परम प्रयोग है। प्रयोग प्रारंभ करने में एक-दो दिन बाद ही गुरुदेव ने लिखा—

आनंदो में रोमणि रोम्णि,  
प्रवहतु सततं मनः प्रसत्तिः।  
स्वस्थः स्वस्थोऽहमिति च मन्ये  
कायोत्सर्गे सुखं शयानः ॥

‘मेरे रोम-रोम में आनन्द प्रवाहित हो रहा है। मन प्रसन्न हो रहा है। मैं स्वस्थ हो गया हूँ, मैं स्वस्थ हो गया हूँ। कायोत्सर्ग में सुख से सो रहा हूँ।’

चिन्तन में अन्तर आ गया। कोई व्यक्ति बीमार हो गया, किसी की हड्डी टूट गई, उसको डॉक्टर बेड-रेस्ट का परामर्श देता है। अध्यात्म को जानने वाला

साधना और सिद्धि—● ६४ ●



बेडरेस्ट नहीं, कायोत्सर्ग करेगा। शरीर का दुःख कम होगा और दर्द भी कम हो जायेगा। शरीर की पकड़ छोड़ने पर दर्द की अनुभूति कम हो जाती है।

आचार्य विनोबा भावे ने लिखा है—‘जब मैं छोटा था तब सिर दर्द बहुत होता था। एक बार मेरे सिद में दर्द हो गया। मैं घर के एक कोने में जाकर बैठ गया। सिर को पकड़ लिया और जोर-जोर से उच्चारण किया—सिर मेरा नहीं है, सिर मेरा नहीं है। मां और बहिन ने कहा—सिर तुम्हारा नहीं है तो किसका है? मैं ने कहा—मेरा नहीं है। पांच-दस मिनिट में सारा सिर दर्द गायब हो गया। किसी भी दवा का प्रयोग नहीं किया। फिर भी स्वस्थ होकर मां के पास पहुंच गया।’ परिग्रह को छोड़ो दर्द कम होगा, तनाव कम होगा। जितनी पकड़ मजबूत होगी उतना सिर दर्द अधिक होगा। अपरिग्रह बहुत बड़ा प्रयोग है।

भगवान् महावीर ने आचारांग सूत्र में कहा है—जे ममाइयमतिं जहाति, से जहाति ममाइयं—जो ममत्व की बुद्धि को छोड़ता है वह ममत्व को छोड़ता है। इसीलिए अपरिग्रह बहुत महत्त्वपूर्ण है। यही अध्यात्म का पहला बिन्दु है। कहां से अध्यात्म शुरू होता है? उत्तर होगा—कायोत्सर्ग से। अध्यात्म का प्रारंभ ममत्व विसर्जन से होता है। मेरापन छोड़ो, अध्यात्म स्वतः ही घटित हो जाएगा। अपरिग्रह महाव्रत के सधने पर अध्यात्म जीवन व्यवहार में अपने आप अवतरित हो जाएगा।

## विवेक जागरण का प्रयोग : समिति ( १ )

प्रश्रव्याकरण सूत्र में पांच महाव्रत की पच्चीस भावनाओं की चर्चा की गई है। अहिंसा महाव्रत की पहली भावना है—ईर्या समिति। चलना एक सामान्य क्रिया है। इस पर बल क्यों दिया गया? इसके पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है? ईर्या की पहली बात है—कोई भी स्थूल जीव, चींटी, पतंगा आदि हमारे पैर से न मरे, हम उन्हें कष्ट न दें। दूसरी बात है पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना न हो, इसलिए देखकर चलना जरूरी है। एक आदमी उतनी दूर तक देखकर चले जितनी उसके शरीर की छाया हो। यह नियम क्यों बनाया गया? इसके शब्दों पर नहीं, तात्पर्य, पर ध्यान देना है। सूत्रकार ने लिखा है—एवं खु सव्वपाणा न हीलियव्वा, न निंदियव्वा, न गहरियव्वा। किसी भी प्राणी की अवहेलना, निंदा, गर्हा नहीं करनी चाहिए। यदि हम बिना देखे चलते हैं तो जीवों की अवहेलना करते हैं। जिसकी अवहेलना की जाती है वह जीव दुःखी बनता है। यथार्थता यह है कि सब जीवों का सम्मानपूर्ण स्थान है, बराबर का स्थान है। अपमानित जीव कहता है 'तुम भी प्राणी हो, मैं भी प्राणी हूँ। तुम्हें क्या अधिकार है कि चलते समय तुम मुझे कुचल डालो।' वे बेचारे बोलते नहीं हैं। यदि बोलते तो सारे जीव जो बिना देखे चलते हैं, जीवों को मारते हैं उनके विषय में न्यायालय में जाकर अपील कर देते कि हमारे साथ कैसा व्यवहार हो रहा है? अथवा मानवाधिकार आयोग के सामने अपनी शिकायत कर देते कि हमारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं हो रहा है।

मैंने एक बार कहा था—मानवाधिकार की तरह जीवाधिकार होना चाहिए। मानव का ही नहीं, सृष्टि के सब प्राणियों का अपना अधिकार है। उनके पास भाषा नहीं है इसलिए वे अधिकार की मांग करने में असमर्थ हैं। उनका अधिकार है पर मनुष्य उस पर ध्यान नहीं देते। संभव है वे अपनी उपेक्षा का प्रतिशोध लेते हैं, प्राकृतिक प्रकोप के रूप में बदला लेते हैं।

हर आदमी में प्रतिशोध की, प्रतिक्रिया की भावना होती है। एक युवक रास्ते में जा रहा था। दूसरा युवक मिला। उसकी आकृति को देखा और बोला—तुम्हारी आकृति को देखकर लगता है तुम्हारे पूर्वज बंदर ही थे। वह बोला—कोई

साधना और सिद्धि—● ६६ ●

बात नहीं पर तुम्हारी आकृति को देखकर लगता है कि मनुष्य आज भी बंदर है। उसने उसको पुराना बंदर बताया तो उसने उसको आज का बन्दर बता दिया। प्रतिशोध में ऐसा ही होता है। हम यह न मानें कि छोटे जीव प्रतिशोध नहीं लेते हैं। हम जैन इतिहास में पढ़ते हैं कि एक व्यक्ति ने काचर को छीला। भविष्य में उस व्यक्ति की चमड़ी छिली गई। लगता है वह काचर को छीलने की ही आसक्तिपूर्ण प्रतिक्रिया थी। हो सकता है काचर ने भी छीलने वाले के वैसे ही भाव बना दिए हों। छोटे जीव भी प्रतिक्रिया करते हैं। इसलिए उनकी अवहेलना मत करो, अपमान मत करो, तिरस्कार मत करो।

दूसरी बात है छोटे जीवों की निन्दा मत करो। न निंदियव्वा—बड़ा विचित्र पाठ है। जो बिना देखे चलता है वह उनकी निन्दा कराता है। निन्दा कैसे हुई? हम गहराई में जाएं। हमारा कोई अधिकार नहीं है कि हम उनको कुचल डालें, चोट पहुंचाएं। उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं है तो वह उनकी निन्दा हो गई। निन्दा केवल वाचिक ही नहीं होती, मानसिक और कायिक भी होती है। साधु बन गया और बिना देखे चलता है, वह छोटे जीवों की निन्दा करता है, उन्हें कुत्सित मानता है। किसी भी जीव को छोटा मानना भी उसकी निन्दा है।

छोटे जीवों की गर्हा मत करो। बड़ा विचित्र प्रयोग है। ईर्या समिति के विषय में सूत्र में बहुत गंभीर कारण बतलाए गए हैं। तीनों शब्दों का एक साथ विश्लेषण करें। जो पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय के जीव मार्ग में बिखरे हुए हैं उनका अपमान मत करो, उनकी निन्दा मत करो, उनकी गर्हा मत करो। इस विषय में गृहस्थ कोई सोचे या न सोचे, साधु-साध्वियों को अवश्य सोचना है कि आगम में जो उपदेश या निर्देश दिया गया है उसकी उपेक्षा करने वाला जीवों का अपमान करता है, उनकी निन्दा करता है, गर्हा करता है। ईर्या समितिपूर्वक नहीं चलने वाला साधु छोटे-छोटे जीवों की अवमानना करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है। अगर उन जीवों को अपने बराबर समझता तो अवमान, निन्दा व गर्हा का भाव नहीं होता।

साधु किसी भी जीव को भयभीत न करे और उससे भयभीत न हो। चलते समय कभी रास्ते में गाय आ गई, कुत्ता आ गया तो रजोहरण सामने कर देते हैं। स्वयं भयभीत व्यक्ति दूसरे में भय पैदा करता है। भय स्वयं में न हो तो दूसरे में पैदा नहीं होता। कुत्ता सामने आए, गाय मारने आए और हम उन्हें भयभीत न करें, इससे व्यवहार में कठिनाई आती है। जिसमें अहिंसा का विकास हुआ है वह इस कठिनाई को भी झेल लेगा। कोई मुनि जिनकल्प की साधना करता है उसे कोई मारने आ गया, काटने आ गया तो वह न अपने स्थान से दूर जाएगा, न उसे डराएगा। उसका प्रतिकार नहीं करेगा। अपने स्थान पर खड़ा रहेगा। यह बहुत अग्रिम साधना है। हमारा लक्ष्य है भय पैदा नहीं करना, न डरना और न किसी को डराना। ईर्या समिति के साथ जुड़ी हुई बात है कि किसी को भयभीत नहीं करना और किसी को दुःख नहीं देना। ईर्या समिति में समित मुनि बैठा है। कोई जीव उसके पास आया और उस मुनि ने उसे तत्काल उठाकर फेंक दिया। यह व्यवहार सम्यक् नहीं है।

ईर्या समिति के साथ दो शब्द जुड़े हुए हैं—स्थान और गमन। केवल चलते समय ही नहीं, बैठते समय भी ईर्या समिति को देखना है। मुनि के लिए बैठने की भी एक निश्चित विधि है। सबसे पहले स्थान की प्रतिलेखना करो—स्थान को देखो। यह ईर्या समिति है। फिर उसका प्रमार्जन करो, उसके बाद उस पर बैठो। ये सारी बातें ईर्या समिति की पृष्ठभूमि में हैं। ‘इरियासमितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा’ यदि इसका पूरा अभ्यास हो जाए तो हमारी अन्तरात्मा ईर्या समिति के योग से भावित होगी।

ईर्या समिति के योग से भावित साधु चलते समय बात नहीं करेगा। उसका न बोलने का संस्कार गहरा हो जाता है। फिर उसे कहने की जरूरत नहीं होती। पुराने जमाने में मुनि रंगलालजी इसके उदाहरण थे। वे चलते समय बहुत जागरूक थे। हमने उन्हें साक्षात् देखा है। बाल-साधुओं की देखरेख के लिए सहज प्रभारी बने हुए मुनि कुन्दनमल जी ईर्या समिति में बहुत सजग थे। आमेट के मुनि भीमराजजी की ईर्या समिति बड़ी विलक्षण थी। उनमें अनेक विशेषताएं थी। वे धुन के पक्रे थे। देवता भी उनके संकल्प को विचलित नहीं कर सकते थे। श्रावक मदनचंदजी गोठी जब चलते थे तो ईर्या समिति के साथ चलते थे।

हम चिंतन करें कि हमारी अन्तरात्मा ईर्या समिति के योग से भावित है या नहीं? वह संस्कार निर्मित हुआ है या नहीं? संस्कार निर्मित नहीं है तब तो चलते ही बात शुरू हो जाएगी। संस्कार निर्मित हो गया, भावना से चित्त भावित हो गया तो वह ईर्या में तन्मय हो जाएगा। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी की ईर्या समिति बेजोड़ थी। इतने वर्षों तक मैं गुरुदेव के साथ रहा किन्तु मैंने ईर्या समिति के विषय में उन्हें प्रमाद करते नहीं देखा। वे बहुत जागरूक थे।

हमारी पुरानी विधि रही है—रास्ते में अगर कोई बात करनी है तो पैर पर पैर रखकर खड़े हो जाओ, फिर बात करो। इसका अर्थ हुआ अब तुम चल नहीं सकते, बात कर सकते हो। एक बार पिलानी से गुरुदेव विहार कर रहे थे। जुगलकिशोर बिड़ला रास्ते में गुरुदेव से बात कर रहे थे। गुरुदेव को कुछ कहना होता तो गुरुदेव कुछ क्षण रुक जाते, अपनी बात कहते, फिर चलना शुरू कर देते। दो-चार बार गुरुदेव ठहरे। बिड़लाजी ने पूछा—‘महाराज! आपके पैर में दर्द है क्या?’ गुरुदेव ने कहा—‘दर्द नहीं है, तुम्हारे से बात करने ठहर रहा हूँ।’ जैन मुनि चलते समय बात नहीं करते। बिड़लाजी ने कहा—‘मुझे इसकी जानकारी होती तो मैं भी नहीं बोलता।’ गुरुदेव की अन्तरात्मा ईर्या समिति के योग से भावित हो गई थी।

अहिंसा की पुष्टि के लिए यह महत्त्वपूर्ण भावना है। अहिंसा के संस्कार का निर्माण करने के लिए भावना है कि चलते समय सावधानी बरतें।

## विवेक जागरण का प्रयोग : समिति ( २ )

वाणी को साध लेना अहिंसा महाव्रत की तीसरी भावना है। प्रश्नव्याकरण सूत्र का निर्देश है—वतीते पावियाते पावगं न किंचि वि भासियव्वं। एवं वतिसमित्तिजोगेण भावितो भवति अन्तरप्पा—जिस व्यक्ति की अन्तरात्मा वचन समिति से भावित हो जाती है वह कोई भी पापकारी वचन नहीं बोलता, न कटु बोलता, न व्यंग्य बोलता, न सावद्य वचन बोलता और न किसी को बुरा शब्द कहता। यह वाचिक अहिंसा है।

वाणी का काम बहुत विचित्र है। मन अपने भीतर रहता है। उसका दूसरे को पता नहीं चलता। हिंसा की बहुत सारी समस्याएं वाणी के कारण पैदा होती हैं। इसलिए आदमी को बहुत कम बोलना चाहिए। बहुत ज्यादा बोलना अच्छा नहीं है। मौन बहुत अच्छा है। जितने भी महापुरुष हुए हैं वे बहुत कम बोलते थे, काम अधिक करते थे। ज्यादा बोलने वाला कहीं-कहीं समस्या पैदा कर लेता है। कोई ऐसी बात कह देता है कि फिर माफी मांगनी पड़ती है। किसी अभिनेता ने दूसरे देश के बारे में टिप्पणी कर दी तो बात का बतंगड़ हो गया, संघर्ष पैदा हो गया। इससे भारतीय समाज को काफी कठिनाई झेलनी पड़ी।

वाणी संघर्ष का मूल कारण है। बोलने वाला बोलता है और जिसके प्रति कहता है उसेमं सहन करने की शक्ति नहीं होती, समस्या पैदा हो जाती है। वाणी का और सहिष्णुता का बहुत गहरा सम्बन्ध है। एक व्यक्ति बात कहे, दूसरा सहन कर ले तब तो ठीक है, यदि सहन नहीं करे तो समस्या पैदा हो जाती है। दशवैकालिक में कहा गया है—

‘मुहुत्तदुक्खा हु हवंति कंटया  
अओमया ते वि तओ सुउद्धरा ।  
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि  
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥’

वाणी का कांटा निकालना बड़ा मुश्किल है। कांटा चुभता है उसे हम निकाल देते हैं किन्तु वाणी के चुभे हुए कांटे को निकालना कठिन कार्य है। सहन करना मुश्किल है। अहिंसक व्यक्ति में वाणी का विवेक और साथ ही सहन करने

की शक्ति होनी चाहिए। स्वयं अपशब्द का प्रयोग न करे तो सामने वाले के समस्या पैदा नहीं होती। दूसरा यदि कोई अपशब्द का प्रयोग करे और उसे सहन करने की शक्ति हो तो समस्या पैदा नहीं होती।

ज्ञातासूत्र में सहन करने का बड़ा सुंदर प्रसंग आया है—देशआराधक और देशविराधक का। भगवती सूत्र में श्रुत और शील के आधार पर चार विकल्प किए गए हैं—देशआराधक, देशविराधक, सर्वाराधक, सर्वविराधक। ज्ञातासूत्र में सहन करने की शक्ति के आधार पर चार विकल्प किए गए हैं। एक मुनि जिस गण में दीक्षित हुआ वह उसके लिए स्वपक्ष है, शेष सब परपक्ष। अपने गण के साधु, साध्वियां, श्रावक, श्राविकाएं कोई कठोर बात कहते हैं उसको सहन कर लेता है किन्तु दूसरे सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति थोड़ी-सी बात कहता है उसको सहन नहीं कर पाता। वहां वह उखड़ जाता है, आवेश में आ जाता है। उसमें स्वपक्ष को सहन करने की शक्ति है किन्तु वह परपक्ष को सहन नहीं करता। महावीर की भाषा में व देशविराधक है। यह एक प्रकार की मनोवृत्ति है।

दूसरे प्रकार की मनोवृत्ति है देशआराधक की। दूसरे सम्प्रदाय का व्यक्ति कोई बात कह दे तो उसे सहन कर लेता है। अपने गण का कोई साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका हित की बात कहे, तत्काल आवेश में आ जाता है, सहन नहीं कर पाता। वह देशआराधक है। आराधक थोड़ा है, विराधक ज्यादा है। पास में रहने वालों को सहन करना बड़ा मुश्किल है।

आज व्यक्ति अपने मित्र को सहन कर लेता है, पर अपने परिवार का सदस्य कोई बात कह दे तो तत्काल रुष्ट हो जाता है। मुझे कह दिया। अहंकार एकदम फुफकार उठता है। अपना भाई कोई हित की बात कह दे, सहन नहीं करता, अपने पास में रहने वाले की बात को सहन नहीं करता, दूसरे की बात को सह लेता है। भगवान महावीर ने उसे देशआराधक कहा है। हमारे साधु-साध्वी सोचते हैं कि विराधक न बनें। अन्तिम समय में आराधक रहें। इस संदर्भ में इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि ज्ञातासूत्र क्या कह रहा है? महावीर की वाणी क्या कह रही है? जो अपने पास रहने वालों को सहन नहीं करता, उनके व्यवहार को सहन नहीं करता, उनकी वाणी को सहन नहीं करता वह पूरा आराधक नहीं होता। वह पच्चीस प्रतिशत आराधक होता है और पचहत्तर प्रतिशत विराधक।

आज विचार की भिन्नता, चिन्तन की भिन्नता और व्यवहार की भिन्नता है। इस भिन्नता की स्थिति में वह दूसरे को सहन नहीं करता। हर आदमी यह चाहता है कि मैं करूं जैसे ही दूसरा करे। मैं खाऊं जैसे ही दूसरा खाए। मैं सोचूं जैसे ही दूसरा सोचे। मैं चलूं जैसे ही दूसरा चले। हर आदमी के मन में यह भावना रहती है। पर स्थिति कुछ भिन्न है। मैं कुछ सोचता हूं, दूसरा मेरे से भिन्न सोचता है। यह पता चलते ही एकदम आवेश आ जाता है। वह स्थिति सहन नहीं होती। दूसरों को सहन करना बहुत भारी समस्या है। उसकी आकृति को सहन करना भी मुश्किल है।

साधना और सिद्धि—● ७० ●

आकृति, प्रकृति, व्यवहार, चिन्तन—इन सबको सहना बहुत बड़ी कला है। पत्नी रूठ गई, बोलना बंद कर दिया। एक बार पति के हाथ से टार्च गिर गई। इधर-उधर खोजने लगा। काफी देर तक घूमता रहा, मिली नहीं। पत्नी से रहा नहीं गया, बोली—‘क्या खोज रहे हो?’ पति बोला—‘तुम्हारी वाणी ही खोज रहा था जो इतने दिनों से गुम हो गई थी।’

कालूगणी कहते थे—‘कोई रूठ गया तो उसे मनाओ मत, मनुहार मत करो। भूख लगेगी तो अपने आप खाएगा।’

बहू रूठ कर सो गई। नाश्ता करने नहीं आई। पूरे दिन भोजन नहीं किया। शाम होते-होते तारे दिखने लग गए, रात मुश्किल से बीती। सुबह का नाश्ता हुआ कोई बुलाने नहीं आया। भोजन के समय दरवाजे के पीछे आकर खड़ी हो गई। सास ने कहा—बहू को भूख लगी होगी, उसे भोजन के लिए कह दो—

छाछ रोटी रायतो, कहो बहू न खाय तो।

बहू बोली—

किंवाड़ लारे खड़ी हूं, कोई कहे आय तो।

कालूगणी की अनुभवपूर्ण वाणी में एक यथार्थ है। जो समस्या को भोग ले वह फिर समस्या पैदा करना नहीं चाहता।

१. देशविराधक स्वपक्ष को सहन कर लेता है पर परपक्ष को सहन नहीं करता।
२. देशआराधक स्वपक्ष को सहन नहीं करता पर परपक्ष को सहन कर लेता है।
३. जो व्यक्ति दोनों को सहन करता है वह सर्वाराधक है।
४. जो दोनों को ही सहन नहीं करता वह सर्व विराधक है।

सर्वाराधक होना वर्तमान समस्या का सुन्दर समाधान है। वर्तमान की ज्वलन्त समस्या है असहिष्णुता की। एक विचार दूसरे विचारों को, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को, एक समाज दूसरे समाज को, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को सहन नहीं कर रहा है। असहिष्णुता के कारण बहुत सारी समस्याएं जन्म लेती रही हैं। हम इन पर गहराई से चिन्तन करें। सहिष्णुता का विकास करना है तो अहिंसा महाव्रत की तीसरी भावना का अभ्यास करना होगा। वाणी का पापकारी प्रयोग नहीं करूंगा। इस वर्ष मैं एक भी अपशब्द का प्रयोग नहीं करूंगा। फिर उसे पुष्ट करने हेतु भावना करें।

अहिंसा महाव्रत स्वीकार करने के बाद उसे परिपक्व बनाने के लिए अभ्यास करना जरूरी है। वह व्यक्ति अहिंसा का विकास करता है जो वचन को साध लेता है। जो वचन को नहीं साधता वह अहिंसा का विकास कैसे कर सकता है? वचन सिद्ध व्यक्ति के मुंह से एक भी अपशब्द नहीं निकलता। कितना सुन्दर उसका मुंह होता होगा। दांत भी सुंदर बन जाते हैं। उसकी वाणी में मिठास आ जाती है। शालीनता का सबसे सुंदर प्रयोग है वाणी का संयम।

साधना और सिद्धि ————— ● ७१ ●



## विवेक जागरण का प्रयोग : समिति ( ३ )

हमारी दो मुख्य प्रवृत्तियां हैं—गमन और भाषण। तीसरी आवश्यक प्रवृत्ति है खाना, आहार करना। इसके बिना बोलने की शक्ति भी नहीं रहती और चलने की शक्ति भी नहीं रहती। मुनि प्रतिदिन अर्हत् वंदना व प्रतिक्रमण का उच्चारण करता है। किन्तु आज वह मौन था। मैंने पूछा—‘आज उच्चारण क्यों नहीं कर रहे हो?’ उसने कहा—‘कल आयम्बिल था, आज उपवास है।’ आहार के बिना बोलने और चलने की शक्ति कम हो जाती है। आहार से ऊर्जा पैदा होती है, शक्ति का संवर्धन होता है।

आहार करना हमारे जीवन की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। आहार कैसे करें—यह विवेक बहुत जरूरी है। गमन योग और वचन योग की तरह ही आहार योग बन जाता है। यह भी साधना का एक प्रकार है। खाना भी साधना है, अध्यात्म है। उपवास करने वाला निर्जरा करता है और कभी-कभी खाने वाला शायद उपवास से भी ज्यादा निर्जरा कर लेता है। खाना बहुत बड़ी तपस्या है। खाने का विवेक न हो तो शरीर रोगों का घर बन जाता है। आहार को योग भी बनाया जा सकता है और उसको रोग का साधन भी बनाया जा सकता है।

हमारा निश्चित अभिमत है कि अगर आहार का सम्यक् विवेक हो जाए तो पचास प्रतिशत बीमारियां कम हो सकती हैं। ऋतुजनित बीमारियां तो हो सकती हैं पर बहुत बड़ी-बड़ी बीमारियों से काफी बचाव हो सकता है। एषणा समिति आहार का विवेक है। आहार की कैसे गवेषणा करना, कैसे ग्रहण करना और कैसे उपभोग करना, क्या खाना, कब खाना, कितना खाना—यह आहार का विवेक है। एक समय था जब दिन में एक बार भोजन होता था। दशवैकालिक में साधु के लिए ‘एगभत्तं च भोयणं’ का निर्देश प्राप्त होता है। धीरे-धीरे दो बार और तीन बार खाने का भी क्रम प्रारंभ हो गया।

वर्तमान में खाने के प्रति विवेक जागृत हुआ है। मैंने जब दीक्षा ली थी तब आहार का क्रम भिन्न था। हमारे साधु सुपारी बहुत खाते थे। पांती के समय सुपारी का ढेर लग जाता था। आज बहुत कम साधु-साध्वियां हैं जो सुपारी खाते हैं। पंडित

साधना और सिद्धि—● ७२ ●

रघुनन्दनजी बहुत बार कहते कि घुटनों का दर्द जल्दी करना है तो सुपारी ज्यादा खाओ। यह वातवर्धक है। इसे खाने में लाभ कम है, हानि अधिक है। एक समय था जब हमारे विहार क्षेत्रों में मिठाई का बहुत अधिक प्रचलन था। यहां का खास भोजन था घी, दूध, दही और मिठाई। कुछ लोग तो ऐसा सोचते थे कि मिठाई के बिना भोजन क्या? पर आज चिन्तन का कोण बदल गया है। भोजन में अधिक मिठाई का प्रयोग आयु कम करता है, स्वास्थ्य को खराब करता है, चिन्तन को दूषित करता है।

हमारा भोजन सात्विक और संतुलित होना चाहिए। कभी खाना और कभी नहीं खाना, कभी रूखा और कभी चिकना। दोनों का संतुलन जरूरी है। राबड़ी रूखा भोजन है पर सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद है। आजकल मिठाई खाने की प्रवृत्ति कम हुई है। तली हुई चीजें कचौरी, पकौड़ा आदि बिल्कुल काम के नहीं हैं। खाने में शायद स्वादिष्ट लगते होंगे। मैंने पचास वर्षों में तली हुई चीजों का कभी सेवन नहीं किया। इनका स्वाद भी कैसा है, याद नहीं है। जिनको मस्तिष्क से काम करना है उन्हें तो इन चीजों से परहेज अवश्य करना चाहिए। पेट और जीभ कभी भी राजी नहीं होंगे। हमें दिमाग को राजी रखना है। मस्तिष्क को राजी रखने के लिए अनावश्यक चीजों का वर्जन करना होगा और अगर जीभ को राजी रखना है तो फिर दिमाग के ताला लगा देना होगा। दोनों बातें साथ नहीं होंगी।

एक बार गुरुदेव दिल्ली प्रवास के दौरान पत्रकार विद्यालंकार के घर पधारे। उन्होंने कहा—हमारे घर की भिक्षा लें। उनका बहुत आग्रह था। गुरुदेव ने भिक्षा ली। साधारण-सा भोजन। गुरुदेव ने कहा—‘आप इतना हल्का और सादा भोजन करते हैं?’ पत्रकार ने कहा—‘गुरुदेव! आजकल मैं एक विशेष पुस्तक लिख रहा हूँ इसलिए भोजन बिल्कुल हल्का-सा करता हूँ।’ हमें एक नया सूत्र मिला। कोई अच्छा काम, गहरा काम करना हो तो भोजन बिल्कुल हल्का होना चाहिए। भोजन ज्यादा कर लिया तो ध्यान सारा पेट पर जाएगा। फिर मस्तिष्क कैसे कार्य करेगा? शरीरशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार हमारे शरीर में जितने अवयव हैं उनमें सबसे ज्यादा रक्त की जरूरत मस्तिष्क को है। उसे बीस प्रतिशत रक्त चाहिए। क्योंकि हमारा सारा संचालन मस्तिष्क से हो रहा है। इसलिए विशेष रूप से ध्यान दें—यदि दिमाग से महत्वपूर्ण कार्य संपादित करने हैं तो जीभ को, पेट को विश्राम दें। हाथ जोड़कर उन्हें प्रार्थना करें—अभी हमारा दूसरा काम चल रहा है आप विश्राम करें। मुझे महत्वपूर्ण कार्य करना है।

आहार का विवेक क्यों करना है? एषणा समिति का एक अंग है मांडलिक दोष। आहार में रस लोलुपता न बढ़े इसलिए मांडलिक के पांच दोषों का विधान किया गया है—

**लगे दोष इंगाल, करे प्रशंसा भोज्य की।  
निन्दा निरस निभाल, धूम दूसरा मांडलिक ॥**

## बिन कारण आहार, स्वादवृत्ति संयोजना।

### मात्रा का परिहार, दोष मांडलिक पांच ये।।

आहार करते समय इन दोषों का वर्जन करना साधु के लिए आवश्यक है।

आहार योग का एक अंग है—आहार कैसे लेना? इसका विवेक होना आवश्यक है। गृहस्थ अत्यधिक श्रद्धा के साथ और भावना के साथ अपना भोजन हमें देता है। छोटा बच्चा भी स्वयं न खाकर साधु के पात्र में डालना चाहता है। सुपात्रदान के संस्कार हमारे श्रावकों में कूट-कूट कर भरे हुए हैं। श्रावक जिस भावना और श्रद्धा के साथ साधु को दान देता है, क्या साधु के लिए उसी भावना और श्रद्धा से खाना जरूरी नहीं है? उसे सोचना है कि जिस श्रद्धा से आहार मुझे दिया है उस श्रद्धा को मुझे पचाना है। श्रद्धा को लेना बहुत सरल है किन्तु श्रद्धा को पचाना महामुश्किल है। हम दूसरों से श्रद्धा लेते हैं यह ठीक है पर हमें उसे पचाना है। जो श्रद्धा है उस श्रद्धा को ठेस न लगे। कोई ऐसा आचरण न करें, कोई ऐसा व्यवहार न करें जिससे श्रद्धा के साथ अन्याय हो, धोखा हो। मेरी दृष्टि से श्रद्धा को पचाना जहर को पचाना है। लोग श्रद्धा से हमें नमस्कार करते हैं, सिर झुकाते हैं, पैरों में सिर रखते हैं, हाथ जोड़ते हैं। एक दाना आहार का देकर कृतार्थता का अनुभव करते हैं। यदि श्रद्धा लेने वाला देने वाले के प्रति जागरूक न रहे तो सचमुच अन्याय है, धोखा है। यह स्थिति अच्छी नहीं है। यह विषय जितना श्रावक के लिए चिन्तनीय है उससे अधिक साधु के लिए चिन्तनीय है। इतनी श्रद्धा ले रहा हूँ यानी इतना जहर पी रहा हूँ, यदि उसको नहीं पचाऊंगा तो क्या होगा?

हमारे सामने एक गंभीर प्रश्न है आहार को कैसे पचाएं? आहार शरीर-पोषण के लिए ग्रहण किया जाता है। वही आहार यदि संयम के पोषण में निमित्त बनता है तब श्रद्धा लेना और देना—दोनों सार्थक हो जाते हैं। आहार संयम को पोषण देने का निमित्त न बनकर असंयम के पोषण का निमित्त बन जाए तो देने वाले की श्रद्धा खंडित होती है, लेने वाले का नुकसान होता है। बहुत बड़ा अपराध होता है। एषणा समिति बहुत महत्वपूर्ण है। इसे उद्गम और उत्पादन के सोलह-सोलह दोषों तक सीमित नहीं रखना है। ये दोष तो मात्र उदाहरण हैं। हमें भावना को पकड़ना है।

आहार देने वाले की श्रद्धा को हम कैसे सुरक्षित रखें? देने वाला किस उद्देश्य से अपनी वस्तु का त्याग कर रहा है? वह यह चिन्तन करता है—मुनि रसोई नहीं बनाता, किसी भी द्रव्य को नहीं पकाता, मैं इसको कुछ दान देकर इसकी संयम साधना में हेतु बनूँ, निमित्त बनूँ। आहार संयम की साधना को परिपक्व करने के लिए दिया जाता है। आजकल दूध इतना महंगा हो गया कि बच्चों को पूरा नहीं पिलाया जाता। घी कितना महंगा हुआ है, हम इसका अन्दाज भी नहीं लगा सकते। देशी घी के नाम पर बिकने वाला घी भी कितना महंगा है। इतनी महंगाई के जमाने में जब साधु घरों में भिक्षा के लिए जाता है तब गृहस्थ निःसंकोच अपनी वस्तु उपहृत करते

साधना और सिद्धि—● ७४ ●

हैं और यह चिन्तन करते हैं कि इनकी साधना में निमित्त बन रहा हूँ। धर्म लाभ कमाने की भावना से दान दे रहा हूँ।

एषणा समिति के विषय में यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हम चिंतन करें कि जो भावना है उस भावना को हम कैसे सुरक्षित रखें? आहार के संदर्भ में कभी-कभी आसावधानी हो जाती है। लेते समय आगे-पीछे का चिंतन नहीं करते। एक घर में पांच साधु चले गए और उसके सामने वाले घर में भावना भाने पर भी कोई नहीं गया। क्या यह एषणा समिति है? मेरी दृष्टि में यह एषणा के प्रति अन्याय है। इस संदर्भ में हम गहराई से चिंतन करें। जब एक गृहस्थ का उद्देश्य है संयम का पोषण करना तब आहार लेने वाले का उद्देश्य होना चाहिए कि मेरे संयम का पोषण हो, न कि लोलुपता का।

एक बहुत बड़ा योग है एषणा योग। इसको योग कैसे बनाएं? एषणा योग को जीवन्त धर्म बना सकते हैं। सूफी संत ने प्रश्न किया—भिक्षा मांगना पुण्य है या पाप? गुरु ने उत्तर दिया—साधना के लिए रोटी मांगना पुण्य है। आराम करने के रोटी मांगना पाप है। ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना व चरित्राराधना के लिए रोटी मांगना बुरी बात नहीं है। न ज्ञानाराधना, न दर्शनाराधना, न चरित्राराधना, न तपाराधना और न वीर्याराधना। केवल खाने के लिए, उदर पूर्ति के लिए जो रोटी मांगता है वह पाप है। यह मत सोचो, साधु का खाना धर्म ही है। साधु का खाना पाप भी हो सकता है। साधु यदि संयम के पोषण के लिए आहार करता है तो वह धर्म है और यदि स्वाद के लिए आहार करता है तो वह अधर्म है, पाप है।

आहार योग बहुत पवित्र योग है। इस पर विचार करें। आहार योग, एषणा समिति के प्रति प्रत्येक साधु जागरूक बनकर चरित्र को उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करे। यही हमारे जीवन की सफलता का रहस्य है।

## विवेक जागरण का प्रयोग : समिति ( ४ )

ईर्या समिति—गमन योग, भाषा समिति—भाषा-योग और एषणा समिति—एषणा योग। समिति योग बन सकती है यदि विवेक चेतना जागृत हो जाए। विवेक का अर्थ है विवेचन करना, पृथक्करण करना। रसोई बनाने वाली चावल और कंकड़ को अलग कर देती है। केरिया का साग बनाते समय ठीक विवेक नहीं किया जाए तो। कंकड़ ही कंकड़ रह सकते हैं। इतने मजबूत कंकड़ आ जाते हैं कि दांत को भी हानि पहुंच सकती है। इसीलिए हर जगह विवेक आवश्यक है।

आदान निक्षेप समिति हमें विवेक देती है कि पहले देखो, प्रमार्जन करो, फिर बैठो। इन वर्षों में गुरुदेव बहुत ध्यान रखते थे कि कोई साधु या साध्वी कैसे बैठते हैं? हमारी विधि है—कोई साधु बैठे या सोये, पहले स्थान का प्रतिलेखन करे फिर प्रमार्जन करे और उसके बाद बैठे। यह विवेक है बैठने का। कोई वस्तु रखना है तो कैसे रखें? पहले स्थान का प्रतिलेखन करें फिर आवश्यकता हो वहां प्रमार्जन करें, फिर किसी चीज को रखें। यह आदान निक्षेप समिति का विवेक है। किसी भी वस्तु को लेने में विवेक जरूरी है।

समिति विवेक जागरण का प्रशस्त प्रयोग है। छोटे-छोटे प्रयोग हमारी चेतना को परिष्कृत करते हैं। चेतना परिष्कृत होने पर जागरूकता बढ़ती है। जीवन की सबसे बड़ी सफलता है जागरूकता। चेतना में जागरूकता आ जाए, वह सोई हुई न रहे, नींद में न रहे। कोई भी काम करें, जागृति के साथ करें। बौद्धों में एक ध्यान सम्प्रदाय है—झेन। जापान, ताइवान, कोरिया आदि देशों में यह ध्यान बहुत चलता है। इसका मुख्य ध्येय है साधकों की जागरूकता बढ़ाना। कोई भी कार्य करें जागरूकता से करें। एक बौद्ध भिक्षु जेन सम्प्रदाय में साधना करता था। एक बार उसके गाल पर मक्खी बैठ गई। उसने उसे उड़ा दिया। कुछ क्षण बाद उसने गाल से मक्खी उड़ाने का पुनः प्रयत्न किया। किसी ने पूछा—यह क्या कर रहे हो? उसने उत्तर दिया—मेरे गाल पर मक्खी बैठ गई। मैंने प्रमाद में उसे उड़ा दिया। अब जागृति में उड़ा रहा हूं।

साधना और सिद्धि—● ७६ ●

शिष्य ने गुरु से पूछा—‘आप क्या साधना कर रहे हैं?’ गुरु ने उत्तर दिया—‘भूख लगती है तब खा लेता हूँ और नींद आती है तब सो जाता हूँ। यही मेरी साधना है।’ शिष्य ने कहा—‘यह तो मैं भी कर सकता हूँ। कौन-सी बड़ी बात है। भूख लगेगी तब भोजन कर लूंगा और नींद आएगी तब सो जाऊंगा।’ गुरु ने कहा—‘आओ, मेरे पास बैठो।’ भोजन का समय हुआ। दोनों साथ में बैठ गए। भोजन कर लिया। शिष्य ने कहा—‘गुरुदेव! भोजन करने में कौन-सी साधना थी?’ गुरु ने पूछा—‘सही-सही बताओ तुमने भोजन करते समय क्या-क्या सोचा?’ शिष्य ने विचारों का पोथा खोल दिया, ‘यह विचार मन में आया, यह विचार मन में आया, बीस मिनट में सैकड़ों विचार आ गए। मैंने पूरा भोजन भी कर लिया। एक चावल भी शेष नहीं छोड़ा।’ गुरु ने कहा—‘तू समझता नहीं है। भूख लगती है तब खा लेता हूँ इसका मतलब है मैं केवल खाता हूँ, खाते समय खाने का ही ध्यान रखता हूँ। न कोई चिन्तन, न कोई स्मृति, न कोई कल्पना, कुछ भी याद नहीं रहता। तुमने खाने के साथ-साथ न जाने कितने विचारों को खाया है। केवल खाना बहुत बड़ी साधना है। एक प्रयोग करें कि केवल खाऊंगा। बड़ा कठिन है। दस-बीस मिनट खाने के समय न जाने कितने विचार आ जाते हैं। नींद लेने के समय केवल नींद लेता हूँ।’ शिष्य को कहा—मेरे पास सो जाओ। पास में सो गया पर नींद नहीं आई। सारी रात करवटें बदलता रहा। पूछा—‘रात को सोया या नहीं?’ उत्तर दिया—‘सारी रात सपनों की रात रहीं, जाल-जंजाल आते रहे, सपने ही सपने आते रहे।’ गुरु ने कहा—‘मुझे पूरी रात गहरी नींद आती है। न सपना, न चिन्तन और न कल्पना।’

अनेक लोगों को सोने के बाद नींद नहीं आती, विचार ही विचार आते रहते हैं। दो गप्पी मिल गए। आपस में बातचीत शुरू हुई। एक बोला—कोई भी कार्य करने के बाद इतने अधिक विचार आते हैं कि तीन घण्टा मुझे नींद ही नहीं आती। दूसरा गप्पी बोला—मैं सोता हूँ उसी क्षण मुझे नींद आ जाती है। केवल सोना बड़ा कठिन है। हर कार्य के पीछे केवल शब्द लगा दें। केवल बोलना, केवल सोना, केवल खाना, केवल चलना, कोई दूसरा काम उसके साथ न करना। यह बहुत बड़ी साधना है। इसके लिए जागरूकता को बढ़ाने की जरूरत है। साधना के प्रति हमारी रुचि जागृत हो जाए, आकर्षण बढ़ जाए तो जागरूकता बढ़ जाएगी। एक विवेक दिया गया उत्सर्ग का। जितना आहार का महत्त्व है उससे ज्यादा उत्सर्ग का महत्त्व है। आगम साहित्य में एक सूत्र दिया गया—‘वच्चमुत्तं न धारण’ मल और मूत्र के वेग को धारण मत करो। शरीर के किसी भी वेग को धारण न करें, चाहे खांसी है, छींक आ रही है, उबासी आ रही है। वेग को रोकने से हानि होती है। दशवैकालिक सूत्र में इस संबंध में बहुत अच्छा विवेक दिया गया है। कोई साधु गोचरी गया और बीच में ही आवश्यकता हो गई, स्थान की प्रतिलेखना कर वेग का विसर्जन कर दे किन्तु वेग धारण न करे।

आयुर्वेद में वेग धारण न करने के संदर्भ में पूरा विवरण है। इससे अनेक बीमारियां पैदा होती हैं। मल के वेग को रोकने से पागलपन की बीमारी हो सकती है। आयुर्वेद में दो प्रकार के वेग बतलाए गए हैं—

(१) शरीर का वेग

(२) मन का वेग

वहां निर्देश दिया गया है कि शरीर के वेग को धारण मत करो, मन के वेग को धारण करने का अभ्यास करो। शारीरिक वेगों को रोका जाता है तो बीमारियां होती हैं। मन के वेगों को नहीं रोका जाता है तो बीमारियां होती हैं। यह उत्सर्ग का विवेक है। आदमी खाने पर ज्यादा ध्यान देता है किन्तु उससे ज्यादा ध्यान उत्सर्ग पर देना चाहिए। कहीं मल का अवरोध तो नहीं है? शरीर में विजातीय तत्त्व तो इकट्ठा नहीं हो रहा है? कहीं कोई दूसरी गड़बड़ी तो नहीं हो रही है? कई लोग कहते हैं—बुरे विचार आते हैं, बुरी कल्पनाएं आती हैं, बुरा चिन्तन आता है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि जिस व्यक्ति का पेट शुद्ध नहीं, उसकी न बेचैनी मिटती है, न उदासी मिटती है, न प्यास मिटती है, न हीन भावना मिटती है। आहार का संबंध पाचनतंत्र से है, उस पर ध्यान देना जरूरी है। मेरा लीवर, स्प्लिन, पेन्क्रियाज कैसे काम कर रहे हैं? मेरी छोटी आंत और बड़ी आंत कैसा काम कर रही है? यदि नाभि से नीचे का स्थान शुद्ध नहीं है तो विचार शुद्धि की कल्पना ही न करें। बुरे विचार और बुरी भावनाएं आती ही रहेंगी। इसलिए उत्सर्ग समिति का विवेक दिया गया है।

जो व्यक्ति पेट के प्रति जागरूक रहता है, वह स्वस्थ रह सकता है। कोई भी वैद्य अथवा डॉक्टर आता है, पूछता है—आपके कब्ज तो नहीं है? निदान करते समय मुख्य प्रश्न ही यही रहता है। क्यों? मल यदि पेट में इकट्ठा हो रहा है तो बीमारियों के लिए, कीटाणुओं के लिए खुला अवकाश है। इसलिए आहार विवेक के साथ उत्सर्ग का विवेक होना जरूरी है। प्रकृति का एक नियम है ग्रहण और विसर्जन। यह नियम सर्वत्र लागू होता है। जैन दर्शन में छः पर्याप्तियों की चर्चा है। सबसे पहले आहार के योग्य पुद्गलों का ग्रहण करो, आहार के रूप में परिणमन करो और फिर विसर्जन करो—वापस छोड़ दो। धन के लिए भी क्या यही नियम लागू नहीं होता? लोग धन ग्रहण करते हैं, उसका उपभोग भी करते हैं किन्तु विसर्जन नहीं करते। यह सबसे बड़ी समस्या है। वर्तमान की समस्याएं संग्रह के कारण उपजी हुई हैं। जहां लोग धन का सदुपयोग करना नहीं जानते, विसर्जन करना नहीं जानते, वहां समस्या पैदा होती है।

आज विश्व में हिंसा, बलात्कार, अपहरण आदि की समस्याएं द्रौपदी के चीर की भांति बढ़ रही हैं। मूल कारण एक ही है। यह प्रकृति का नियम, किसी भी वस्तु को काम में लो और छोड़ दो। आहार लो, उससे ऊर्जा प्राप्त करो, जो बचे उसे

साधना और सिद्धि—● ७८ ●



छोड़ दो। इस नियम को जानना जरूरी है। नौकर ने मालिक से कहा—‘साहब! मोची आया है। कह रहा है कि मुझे जूते गांठने के पैसे नहीं मिले।’ मालिक ने कहा—‘अभी तो जिससे जूता खरीदा था उसे भी दाम नहीं दिया, जूता गांठने वाले की बारी तो बाद में आएगी।’ व्यक्ति छोड़ना नहीं जानता, सिर्फ लेना ही जानता है। यह अच्छा नहीं है। गुरु अपने शिष्यों से सेवा लेता है किन्तु शिष्यों को देना नहीं जानता, इससे गुरु का गुरुत्व कम होता है। यह प्रकृति का नियम हमारे शरीर पर भी लागू होता है। आहार करते हैं, उससे ऊर्जा प्राप्त होती है फिर उसका विसर्जन करते हैं। यह उत्सर्ग समिति का विवेक है।

पांच महाव्रत, तीन गुप्ति और पांच समिति की साधना मुनि जीवन के लिए अनिवार्य है। आंशिक रूप से इनका अनुसरण करने वाला व्यक्ति शान्तिपूर्ण, स्वस्थ, अपराधमुक्त जीवन जी सकता है। यह आध्यात्म का व्यावहारिक प्रयोग है। अध्यात्म केवल आकाशीय उड़ान नहीं है, जीवन का दर्शन है। पांच समिति का प्रयोग अध्यात्म का व्यावहारिक प्रयोग है। यह हमारी पूरी दिनचर्या से जुड़ा हुआ है। समितियों का प्रयोग साधु-साध्वियां तो निश्चित रूप से करें। यदि श्रावक भी आंशिक रूप से इनका प्रयोग करेंगे तो यह उनके हित में होगा।

आध्यात्मिक अनुष्ठान चल रहा है। इसमें केवल आत्मा की चर्चा ही नहीं कर रहे हैं, उसके साथ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और भावों की भी चर्चा कर रहे हैं। यह समग्रता से अध्यात्म को समझने का प्रयास है।

## ज्ञान योग ( १ )

योग साहित्य में तीन प्रकार के योगों का वर्णन मिलता है—भक्ति योग, ज्ञान योग और कर्म योग। भक्ति योग में भक्ति और श्रद्धा पर बल दिया जाता है। एक दिन राजस्थान के राज्यपाल से बातचीत कर रहे थे। उन्होंने एक बहुत अच्छी बात कही है—अंधश्रद्धा बहुत जरूरी है। मैंने सोचा—इतना प्रबुद्ध व्यक्ति और आज के जमाने में कहता है कि अंधश्रद्धा जरूरी है। बिल्कुल उल्टी बात है पर उन्होंने उसके साथ एक नई बात जोड़ दी। उन्होंने कहा—पहले परीक्षा कर गुरु को स्वीकार करो और फिर अंधश्रद्धा करो। मानने के बाद भी यदि अंधश्रद्धा नहीं होती तो फिर कार्य का फल नहीं मिलेगा। आचार्य भिक्षु ने परीक्षा पर बहुत बल दिया। उन्होंने कहा—किसी को गुरु मानो तो पहले परीक्षा करो। उदाहरण—कोई आदमी घड़ा लेने कुम्भकार के पास जाता है, ठक-ठक कर देखता है, घड़ा फूटा हुआ तो नहीं है? परीक्षा कर घड़ा लेता है। जब पानी डालने लगता है तब विकल्प उठता है—पानी डालूं या नहीं? ऐसी स्थिति में पानी डाल ही नहीं पाएगा। उस समय विश्वास के साथ पानी डाल देता है, पानी सुरक्षित रहता है, राज्यपाल की बात बहुत अच्छी लगी कि परीक्षा कर गुरु मानो और मानने के बाद अंधश्रद्धा करो।

मैंने इस प्रसंग में एक बात उनको सुनाई। वि. सं. २०१९ में गुरुदेव उदयपुर में चातुर्मासिक प्रवास कर रहे थे। उस समय डॉ. कॉल गुरुदेव के दर्शनार्थ आए। साध्वी किस्तूरांजी आदि कुछ साध्वियां उनके पास अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करती थीं। कॉल साहब बड़े अनुभवी थे। एक दिन उन्होंने साध्वियों को कहा—‘आप लोग कहते हैं गुरु के प्रति हमारी भक्ति है, श्रद्धा है। हम गुरु के प्रति बहुत समर्पित हैं। मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। आचार्य तुलसी आपको कहें कि कुएं में उतर जाओ, क्या आप उत्तर जाएंगे?’ साध्वियों ने कहा—‘गुरुदेव ऐसा कभी नहीं कहेंगे।’ कॉल साहब ने कहा—‘आप सब अनुत्तीर्ण हो गए। गुरुदेव कहेंगे या नहीं कहेंगे, इसकी चिन्ता आप क्यों कर रहे थे? आपको उत्तर यह देना चाहिए कि गुरुदेव कहेंगे तो कुएं में उतर जाएंगे।’ बिल्कुल ठीक बात कही थी। या तो गुरु मानो मत, मानो तो फिर अंधश्रद्धा ही करो। ऐसा विश्वास मत करो जिसमें न इधर का

साधना और सिद्धि—● ८० ●

रहे न उधर का। आचारांग का बहुत सुन्दर सूक्त है—‘णो हव्वाए णो पाराए’। न इधर का रहा न उधर का। यह है भक्ति योग।

दूसरा है—ज्ञान योग। ज्ञान योग स्कूल की शिक्षा नहीं है, पुस्तक की शिक्षा नहीं है। पुस्तक की शिक्षा का अर्थ है शास्त्र की शिक्षा। दूसरे ने लिखा उसे पढ़ा, वह ज्ञान योग नहीं है। वह शास्त्र का ज्ञान है। ज्ञान योग का तात्पर्य है जो भीतर से निकलता है। आपने कुण्ड को देखा होगा। कुण्ड में पानी कहां से आता है? ऊपर से डाला जाता है। हम जो पढ़ते हैं वह बाहर से ग्रहण होता है। उसे जैन शिक्षा प्रणाली में गृहीत ज्ञान अथवा ग्रहण शिक्षा कहा है। दूसरा ज्ञान है उत्पन्न ज्ञान। उसे बाहर से लिया नहीं जाता, भीतर से उत्पन्न होता है। इसके स्रोत हमारे भीतर हैं। प्रायः सभी स्थानों पर कुएं हैं। क्या कभी बरसात का पानी कुएं में डाला है? कुण्ड में पानी लेने के लिए नाले बनाए जाते हैं। क्या कुएं में पानी लेने के लिए नाले बनाते हैं? कुएं में पानी का स्रोत है। बाहर से नहीं डाला जाता। वह भीतर से, स्रोतों से ही बाहर आता है। ठीक इसी तरह ज्ञान योग पढ़ाई नहीं है। भीतर का स्रोत है। वह भीतर से प्रकट होता है।

एक ओर शास्त्र है, एक ओर ज्ञान योग है। किसे मानकर चलें? शास्त्र तुम्हें दिशा बता देगा। यह काम अच्छा है, तुम करो। यह बुरा है, तुम मत करो, फिर तुम्हारे साथ नहीं चलेगा। केवल ज्ञान होगा तब तक आपका साथ नहीं छोड़ेगा, निरन्तर आपके साथ रहेगा। न कभी विस्मृति होगी, न कोई पुनर्वाचन होगा, न पुनः स्मरण होगा। वह ज्ञान योग क्या है? ज्ञान योग है—अन्तर्दृष्टि का जागरण। ज्ञान योग है—प्रातिभ ज्ञान। जो भीतर से पैदा होता है। नंदी सूत्र में इसे औत्पत्तिकी बुद्धि कहा गया है। न सुना, न पढ़ा, न जाना, अपने आप ज्ञान भीतर से पैदा हो गया। यह औत्पत्तिकी बुद्धि, प्रातिभ ज्ञान या ज्ञानयोग है।

ढाई-तीन हजार वर्ष के इतिहास में अनेक महापुरुष हुए हैं, जिन्हें प्रातिभ ज्ञान प्राप्त था। यह ज्ञान उपदेश से नहीं होता। उसका चिन्तन अलौकिक होता है। यूनान में शोलन नाम का एक दार्शनिक था। राजा ने बहुत सुन्दर महल बनाया। करोड़ों-करोड़ों की सम्पदा लगाई। कोई बढ़िया चीज होती है तो उसका दूसरों को दिखाए बिना और उसकी प्रशंसा सुने बिना मन को तृप्ति नहीं मिलती। सुख आनन्द भी नहीं मिलता। दूसरा कहे तुम्हारे पास आलीशान महल है तब सुख मिलता है। सुख पदार्थ में नहीं है, वह है प्रशंसा में। कोई महल को अच्छा बता दे, प्रशंसा कर दे तो उस व्यक्ति को अत्यधिक सुख का अनुभव होता है। राजा के मन में आया—चारों ओर मेरी प्रशंसा हो रही है पर जब तक शोलन मेरी प्रशंसा न करे तब तक इसका कोई मूल्य नहीं है। वह यदि प्रशंसा करे तो वास्तव में समझूंगा कि महल प्रशंसा योग्य है। दार्शनिक को निमंत्रण भेजा। वह आया। राजा ने स्वयं उसके साथ में और पूरे महल के एक-एक कक्ष को दिखाया। शोलन कुछ नहीं बोला। राजा ने साधना और सिद्धि ————— ● ८१ ●

सोचा—क्या बात है, बोलते क्यों नहीं हैं ? शायद कक्ष में बैठने के बाद बताएंगे। कक्ष में बैठे फिर भी शोलन मौन था। आखिर राजा ने पूछा—‘आपको महल कैसा लगा ? आप मौन क्यों हैं ? आपने पूरे महल को देख लिया फिर भी कुछ प्रतिक्रिया नहीं की ?’ दार्शनिक ने कहा—‘आपके महल में प्रशंसा करने जैसा कुछ भी नहीं है। मैं कहूँ—बुरा है तो आपको अच्छा नहीं लगेगा। मौन रहना ही मेरे लिए अच्छा है।’ जो व्यक्ति अन्तर्ज्ञान सम्पन्न हो जाता है उसका निर्णय बिल्कुल भिन्न होता है। बहिर्मुखी व्यक्ति महल को देखकर प्रशंसा के पुल बांध सकता है। अन्तर का ज्ञान जाग जाने पर प्रशंसा के लिए कुछ अवकाश नहीं रहता। उसके लिए प्रशंसायोग्य है तो केवल आत्मा है, केवल चेतना है, केवल पवित्रता है।

आज प्रशंसा करो, दस वर्ष बाद क्या होगा ? सरदारशहर की बड़ी-बड़ी हवेलियों को देखा—मुझे लगा कि बनाने वालों ने कितने उत्साह के साथ बनाया होगा। अब उन पर मैल जम गया। जब नई-नई बनी थीं तब कितनी भव्य थीं और आज वे किस स्थिति में हैं ? जिस समय हवेलियां बनी थीं उस समय प्रशंसा हुई होगी कि इतनी बड़ी अट्टालिकाएं बनाई हैं। पर आज उनका रखरखाव करना भी बड़ा मुश्किल है। एक दिन हमने नया कपड़ा पहना। क्या दो-चार महीने बाद कोई उसकी प्रशंसा करेगा ? एक तीस वर्षीय युवक कितना सुन्दर लगता था। आज वह अस्सी वर्ष पार कर गया। चेहरा झुर्रियों से भर गया। आज तो शायद साठ वर्ष पार करते ही चेहरा झुर्रियों से भर जाता है। हम क्या प्रशंसा करें ? किसकी प्रशंसा करें ? जिसका स्वरूप सदा एक समान रहता है, वह प्रशंसा के योग्य है। जो बीस दिन या महीने बाद विपरीत बन जाता है फिर किसकी प्रशंसा करें ? यह दृष्टि प्राप्त होती है ज्ञान योग्य के द्वारा।

जब व्यक्ति में ज्ञान योग का विकास होता है तब भीतर से ज्ञान फूटता है। थली में पानी के दो स्रोत हैं—कुआं और कुण्ड। मेवाड़ में हमने तीसरा स्रोत देखा, वह है उमगा। जमीन में से पानी निकलता है। उसकी धारा बह रही है और आगे जाकर वह नाला बन जाता है। ज्ञान योग में भी ज्ञान अपने भीतर से निकलता है, भीतर से प्रगट होता है। आचार्य भिक्षु को यही ज्ञान था। कुछ भाई आते हैं, कहते हैं—लड़के को अमुक जगह पढ़ा रहा हूँ। साल का एक लाख रुपया लगता है। कोई कहता है दस लाख रुपए लगते हैं। अभी एक भाई ने बताया—मेरे पुत्र को इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रविष्ट कराया, दस लाख रुपए लग गए। ठीक है, यह भी जीवन की आवश्यकता है। यह ज्ञान दूसरे प्रकार का ज्ञान है।

मैंने एक दिन कहा—मंत्री मुनि मगनलालजी की पढ़ाई में कितने लाख रुपए खर्च हुए ? उनकी पूरी पढ़ाई में बारह आना लगे। मैंने अपने जीवन में उनके जैसा बुद्धिमान व्यक्ति नहीं देखा। इतनी सूझबूझ और इतना विवेक कहां से आया ? भीतर से ज्ञान योग प्रकट हो गया।

साधना और सिद्धि—● ८२ ●

भिक्षु स्वामी की पढ़ाई कहां हुई थी ? हमारे इतिहासकारों ने उनके बारे में कई बातें बताईं। उनकी शादी हुई, उनके एक लड़की हुई आदि-आदि। पर यह किसी ने नहीं लिखा कि उनकी पढ़ाई कहां हुई। किस पाठशाला में पढ़े। महाजनी विद्या कहां पढ़ी ? अध्ययन के बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। मंत्री मुनि की पढ़ाई में बारह आने लगे और भिक्षु स्वामी के शायद बारह पैसे भी नहीं लगे होंगे। कई बार मन में आया—काश ? तेरापंथ के आचार्यों के गृहस्थ जीवन की पढ़ाई का विवरण उपलब्ध होता। उसका कोई इतिहास नहीं है। गुरुदेव का इतिहास अवश्य उपलब्ध है। गुरुदेव लाडनूं में पढ़े थे। हीरालालजी उनके शिक्षक थे। गुरुदेव स्कूल में मॉनीटर भी थे। यह अध्ययन ज्ञान योग नहीं है। ज्ञान योग शास्त्र पढ़ने से या पुस्तकें पढ़ने से नहीं आता।

ज्ञान योग का प्रगटीकरण भीतर से होता है। इसलिए अध्यात्म की चर्चा करते समय भक्ति योग और ज्ञान को भी समझना है। भक्ति योग में भाइयों की तुलना में बहिनें अधिक सफल होती हैं। कारण क्या है ? उनमें अंधश्रद्धा होती है। आजकल के युवक कह सकते हैं—अंधश्रद्धा तो अच्छी नहीं है। जब राज्यपाल ने कहा—अंधश्रद्धा बहुत आवश्यक है, एक बार तो समझ में नहीं आया। उन्होंने कहा—अंधश्रद्धा के बिना सफलता नहीं मिलेगी। एक बात और जोड़ दी—पहले किसी को मानो मत, परीक्षा करके मानो और फिर अंधश्रद्धा करो। फिर तुम्हारे तर्क का कोई मूल्य नहीं होगा। भक्ति योग के द्वारा श्रद्धा का विकास करें और ज्ञान योग के द्वारा अन्तर्दृष्टि और अन्तर्ज्ञान का विकास करें। अंतश्चक्षु का उद्घाटन होगा। आजकल पश्चिमी साहित्य में तीसरे नेत्र पर बहुत चर्चा हो रही है।

तीसरा है कर्म योग। जो कार्य अनासक्तिपूर्ण होता है वह कर्म योग बन जाता है। जिस कर्म के साथ आसक्ति जुड़ जाती है वह कर्म योग नहीं बनता। कोई भी कार्य मात्र आवश्यकता की पूर्ति के लिए, जीवन को चलाने के लिए, जीवन यात्रा का निर्वाह करने के लिए किया जाता है तब वह कर्म योग बन जाता है। यह अध्यात्म का एक बहुत सुन्दर विषय है। आध्यात्मिक अनुष्ठान में इन तीनों योगों का विकास आवश्यक है।

## ज्ञान योग ( २ )

हम ज्ञान योग की भूमिका में प्रवेश कर सकें इसलिए अनुष्ठान चल रहा है। बहुत कम लोग ज्ञानयोगी होते हैं। पढ़े-लिखे बहुत मिलते हैं। विश्व की प्रायः सभी सरकारों ने सबको साक्षर बनाने का संकल्प किया है। यह अच्छी बात है पर इसे ज्ञान योग नहीं कहा जा सकता। ज्ञान योगी बनना किसी सरकार या शिक्षा संस्थान के वश की बात नहीं है। केवल व्यक्ति के वश की बात है। एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति ज्ञान योगी बन सकता है। एक निरक्षर व्यक्ति भी ज्ञान योगी बन सकता है। इसीलिए आज एक नया चिन्तन सारे संसार में उभर रहा है—कोरी इंटेलीजेंसी (Intelligency) पर्याप्त नहीं है। इमोशनल इंटेलीजेंसी (Emotional Intelligency) का विकास करना जरूरी है। वह विकसित हो तब ज्ञान योग का विकास हो सकता है। ज्ञान योग हमारी अन्तर्दृष्टि है। वह पढ़ने से नहीं, साधना से जागती है। स्वभाव से ही कोई व्यक्ति पूर्व संस्कार लेकर जन्म लेता है तो वह ज्ञान योगी बन जाता है। गुरु के उपदेश से कोई ज्ञान योगी बन सकता है।

हर व्यक्ति के मन में आकांक्षा होती है कि मैं अपने आपको जानूं, आत्मा का साक्षात्कार करूं। यह जिज्ञासा सौ में से नब्बे व्यक्तियों में मिलती है। नोहर की घटना है। रात को मैंने प्रवचन किया। विषय था तीसरा नेत्र। दूसरे दिन हम लोग पण्डाल में जा रहे थे। रास्ते में अग्रवाल परिवार की कुछ बहिनें मिलीं। उन्होंने हमारा मार्ग अवरुद्ध कर दिया। उनमें से एक बहिन ने गद्गद स्वर में कहा—महाराज! हमें सांवरिये का दर्शन करा दो। उसकी वाणी में करुणा थी। दर्शन की तीव्र आकांक्षा व्यक्त हो रही थी। यह आकांक्षा हर व्यक्ति में होती है कि मैं आत्मा का दर्शन करूं, परमात्मा का दर्शन करूं। परोक्ष को हम प्रत्यक्ष करना चाहते हैं, साक्षात् देखना चाहते हैं।

जो आत्मदर्शन का आकांक्षी है, आत्मा का साक्षात्कार करना चाहता है उसे ज्ञान से अन्तर्मुखी होना है, अपनी प्रतिभा से अन्तर्मुखी होना है। हमारी इन्द्रियां बाहर की ओर हैं। इन्द्रियों को भीतर की ओर ले जाकर उनका रास्ता बदलना है। जो

साधना और सिद्धि—● ८४ ●

कान बाहर का शब्द सुनता है उसको भीतर की आवाज सुननी है। बहुत लोग कहते हैं यह मेरी आत्मा की आवाज है। एक बार यह प्रश्न मेरे सामने भी आया कि यह आत्मा की आवाज क्या है? मैंने कहा—यह आत्मा की आवाज नहीं, यह राग-द्वेष की आवाज है। यह आवाज राग से निकल रही है। यह आवाज द्वेष से निकल रही है। अपने आपको ऊंचा दिखाने के लिए या दूसरों को नीचा गिराने के लिए निकल रही है। आत्मा की आवाज का अधिकारी वीतराग हो सकता है। जिसमें न राग है न द्वेष है, केवल द्रष्टा है, वह कह सकता है— यह मेरी आत्मा की आवाज है। जो आदमी राग-द्वेष से लिस, कषाय से लिस, क्रोध, मान, माया, लोभ और भय से घिरा हुआ है वह कहे कि मेरी आत्मा की आवाज है। यह मिथ्या प्रलाप है। तुम स्वयं सोचो, तुम्हारी आवाज कहां से निकल रही है? शायद पूरी कण्ठ से भी नहीं निकल रही है, आत्मा की तो बात ही दूर है।

आत्मा तक कौन पहुंच सकता है? आत्मा का साक्षात्कार कौन कर सकता है? ज्ञान योग के विकास वाला आत्मा तक पहुंच सकता है। उसके द्वारा बाहर का रास्ता बदल जाता है, भीतर की ओर प्रवेश हो जाता है। हमारी कठिनाई यह है कि हम भीतर को देखने का प्रयत्न नहीं करते, भीतर झांकने का प्रयत्न भी नहीं करते। सारा बाह्य व्यवहार चलता है। जब भीतर प्रवेश होगा, वहां व्यवहार समाप्त हो जाएगा, कुछ नया प्रकट होगा। कबीर और सूफी संत फरीद अपने समय के दोनों बड़े साधक थे। दोनों का मिलन हुआ। साथ में दोनों के शिष्य थे। उन्होंने सोचा, आज बातचीत सुनने का आनन्द आएगा। न कबीर बोला और न फरीद। शिष्य उनकी बातचीत की प्रतीक्षा कर रहे थे। समय पूरा हुआ, दोनों उठकर चले गए। शिष्यों ने पूछा—‘दो बड़े संतों का मिलन हुआ, आप एक शब्द भी नहीं बोले।’ सूफी संत ने उत्तर दिया—‘बोलने की जरूरत नहीं थी, मैं जो कहना चाहता था वह कबीर समझ गया।’ कबीर ने कहा—‘मैं जो कहना चाहता था वह फरीद समझ गया। बोलने की जरूरत ही नहीं रही।’ जब अन्तर्मुखता आती है, हमारी दिशा बदल जाती है, दृष्टि बदल जाती है, सारा कार्य-कलाप बदल जाता है। बहुत कठिन है अन्तर्मुखी होना। जब ज्ञान योग का विकास होता है, आदमी अन्तर्मुखी बनता है।

हमारे सामने अनेक बार प्रेक्षाध्यान के शिविरों में प्रश्न आया—भीतर जाने का रास्ता कौन-सा है? उसके लिए कोई दरवाजा चाहिए। बाहर के रास्ते से हम परिचित हैं। भीतर जाने के रास्ते को खोजना है। शायद हर धर्म ने इस विषय पर सोचा होगा—भीतर में प्रवेश करने का द्वार कौन-सा है? भीतर प्रवेश के लिए दरवाजा जरूरी है। वह दरवाजा है—ज्ञान योग। ज्ञान योग के द्वार हमें पता चलता है कि रास्ता कहां है? वह रास्ता है हमारी रीढ़ की हड्डी, सुषुम्ना (Backbone)। इस मार्ग से भीतर प्रवेश किया जा सकता है।

हमारे शरीर में रीढ़ की हड्डी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। तत्त्वविद्या के साधना और सिद्धि ————— ● ८५ ●



अनुसार रीढ़ की हड्डी का विकास मानवीय सभ्यता का विकास है। यदि यह नहीं होती तो विकास की कहानी अधूरी रहती। आदमी रीढ़ की हड्डी के आधार पर खड़ा होता है। जिन प्राणियों के रीढ़ की हड्डी नहीं है, वे सीधे खड़े नहीं रह सकते। कभी-कभी चौपाया पशु पैरों के सहारे खड़े हो जाता है पर मनुष्य की तरह चल नहीं सकता। आदमी ने दो पैरों से चलना शुरू दिया क्योंकि उसके पास रीढ़ की हड्डी है। इस रीढ़ की हड्डी में ईड़ा, पिंगला और सुषुम्णा—ये तीन नाड़ियां हैं। तीनों का प्रवाह इसी में होता है। आज के शरीरशास्त्री बतलाते हैं कि जागृत अवस्था में सारा ज्ञान मस्तिष्क से होता है और नींद के समय सुषुम्णा के माध्यम से होता है। सुषुम्णा में प्रवेश के लिए एक प्रयोग कराया जाता है, उसका नाम है अन्तर्यात्रा। यह अंतर्मुख होने का प्रयोग है। उसमें शक्ति केन्द्र, रीढ़ की हड्डी के पिछले सिरे से ज्ञान केन्द्र, मस्तिष्क में चोटी के स्थान तक यात्रा की जाती है। यह यात्रापथ बहुत छोटा है। वास्तव में यही भीतर प्रवेश का द्वार है।

बहुत लोगों को शायद जरूरत भी नहीं है भीतर जाने की। पैसा पास में है, अच्छा खाने को मिलता है, अच्छा कपड़ा पहनने को मिलता है। समाज में सम्मान है, प्रतिष्ठा है। समाज के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में, राजनीति आदि के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। फिर भीतर जाने की क्या जरूरत है ?

बाहर के जगत् में सब कुछ है। पानी है, रोटी है, कपड़ा है, मकान है, पैसा है, बाजार है, हजारों-हजारों चीजें आपको मिलती हैं। कुछ धर्मस्थानों पर आपको प्रभावना मिलती है, प्रसाद मिलता है। कोई लड्डू देते हैं, कोई कुछ देते हैं। बच्चों को टॉफी देते हैं। हमारे यहां धर्मस्थान में कुछ नहीं मिलता, फिर आप क्यों आते हैं ? आपके मन में प्रश्न होना चाहिए—हम क्यों जा रहे हैं ? हम जहां जाते हैं बहुत बड़ा प्राङ्गण भी छोटा बन जाता है। आखिर क्यों ? प्रश्न ही छोड़ दूं या समाधान भी करूं ? इस प्रश्न पर जितनी गहराई से चिंतन करेंगे, आप भीतर जाने में उतने ही सक्षम बन जाएंगे। स्वतः प्रयोजन समझ में आएगा कि भीतर जाना क्यों जरूरी है ?

दो आदमी यात्रा कर रहे थे। रास्ते में दोनों साथ हो गए। उस समय पदयात्राएं होती थीं। रास्ता लम्बा था। दोनों ने निश्चय कर लिया कि कुछ दूर तक हमारा रास्ता एक है तब तक साथ चलेंगे। जब रास्ता अलग हुआ तो दोनों अलग जाने की तैयारी करने लगे। उनमें से एक ठग था। वह साहूकार से बोला—‘आप साहूकार लगते हो। क्या आपने मुझे पहचाना ? मैं एक नम्बर का ठग हूं। पर अब मुझे लगता है मेरा नम्बर दूसरा हो गया है। प्रथम नम्बर के ठग आप बन गए। मुझे पता था कि आपके पास एक कीमती हीरा है। मैंने बहुत प्रयत्न किया पर मुझे नहीं मिला। मैं आपको ठग नहीं सका। आपने मुझे ठग लिया इसलिए आप एक नम्बर के ठग हैं, मैं दो नम्बर का ठग हो गया। सेठ साहब ! बताइए आप इसे कहां रखते

साधना और सिद्धि—● ८६ ●

थे ?' वह बोला—'भाई ! मैं ठग नहीं हूँ। मुझे यह लगा कि मुझे सावधान रहना चाहिए।' 'फिर आपने क्या किया ? उसे कहां रखा ? मैंने आपकी सारी वस्तुएं खोज ली फिर भी वह नहीं मिला।' उसने सोचा—अब तो दोनों को अलग होना है, इसका रहस्य बता दूँ। उसने कहा—'हम दोनों ने एक शर्त की थी एक बाहर जाए तो दूसरा सामान की सुरक्षा करेगा। जब तुम बाहर जाते तो मैं मेरा हीरा तुम्हारी पोटली में बांध देता। मैं बाहर जाता, तुम मेरी पोटली को देखते, तुम्हें कुछ नहीं मिलता।' हमारी यही वृत्ति है दूसरे को देखना, दूसरे को टटोलना, दूसरे की समीक्षा करना, दूसरे के बारे में सोचना, दूसरों की आलोचना करना, दूसरों की कमियों को देखना, कभी-कभी दूसरे की विशेषता को देखना। यह सारा व्यवहार चल रहा है। व्यवहार का जीवन जीना है तो दूसरों को देखना पड़ेगा। यदि चलना है तो रास्ते को देखना पड़ेगा। बिना देखे चलोगे तो ठोकर खा सकते हो। दूसरे को देखना भी जरूरी है। पर साथ-साथ अपने आप को देखना भी जरूरी है, अपनी पोटली को देखना भी जरूरी है। यह प्रतिभा जहां से आती है उसका नाम है—ज्ञान योग। यह हमें अपने आपको देखने की दृष्टि देता है। केवल दूसरे को मत देखो, साथ-साथ अपने आप को देखो।

हम दो दुनिया में जी रहे हैं और देख रहे हैं एक दुनिया को। यही हमारे दृष्टिकोण की भिन्नता है, यही मिथ्या दृष्टिकोण है। कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जो केवल बाहर के आधार पर जीवन चला रहा है। हमारी चेतना भीतर है। इन्द्रियों की शक्ति भीतर है, मन भी भीतर है। भावधारा भी भीतर है। सब कुछ भीतर है और काम चलाना चाहते हैं केवल बाहर के आधार पर। यह एक द्वंद्व है और इसी द्वन्द्व ने ही मनुष्य को अशान्त और दुःखी बना रखा है। ज्ञान योग के द्वारा हम इस समस्या का समाधान पा सकते हैं। अपने आपको देखना शुरू करें, पचास प्रतिशत दुःख समाप्त हो जाएगा। दूसरों को देखना ही दुःख को निमन्त्रण देना है। एक स्थूल कहानी के द्वारा हम सचाई को समझ करते हैं। पिता-पुत्र भोजन कर रहे थे। रसोई में से बर्तन फूटने की आवाज आई। पिता ने कहा—'तुम्हारी पत्नी के हाथ से फूटा है।' पुत्र ने कहा—'पिताजी ! बर्तन मेरी पत्नी ने नहीं, मां ने फोड़ा है।' पिता गुस्से में आ गया। हमेशा अपनी मां का ही दोष देखता है, पत्नी का नहीं। पिता रसोई में गया। देखा बर्तन तो अपनी पत्नी के हाथ से फूटा है। बाहर आया और अपने पुत्र से पूछा—'तुमने यह कैसे जाना ?' पुत्र बोला—'पिताजी ! बर्तन मेरी मां के हाथ से ही फूटा इसलिए एक ही मिनट में आवाज बंद हो गई। मेरी पत्नी के हाथ से फूटता तो एक घण्टा तक इसकी झंकार होती रहती।' एक धारणा बन जाती है, सचाई समझने का प्रयत्न नहीं होता। उस स्थिति में समस्या का समाधान कैसे हो सकता है ? किसी विवाद को लेकर एकांगी धारणा न बनाएं, दोनों पक्षों—बाह्य जगत् व भीतरी जगत् पर भी विचार करें।

भगवान महावीर ने दो नयों का प्रतिपादन किया था—निश्चय नय और व्यवहार नय। व्यवहार नय से स्थूल जगत् को देखो और निश्चय नय से सूक्ष्म जगत् को। इन दोनों नयों का समन्वय होने पर सम्यक् ज्ञान का विकास होगा। हमारी बहुत सारी समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाएगा। जो आदमी समाधान चाहता है, सुख और शान्ति का जीवन जीना चाहता है, उसे अंतर्मुखी होना होगा। अंतर्मुखी हुए बिना ज्ञान योग का विकास संभव नहीं है।

साधना और सिद्धि ————— ● ८८ ●

## सम्यक् ज्ञान

शिष्य गुरु से पूछता है—मैं कहा हूँ, किस स्थिति में हूँ? पर सबसे ज्यादा अपने आप से पूछना जरूरी है कि मैं कहाँ हूँ, किस स्थिति में हूँ और मेरे परिपार्श्व में क्या हो रहा है? स्वयं का प्रश्न स्वयं के लिए समाधान कारक बनता है। जो व्यक्ति न तो आत्म निरीक्षण करता है और न कभी अपने आप से प्रश्न करता है उसे कोई दूसरा व्यक्ति समाधान नहीं दे सकता। जब अपने आप से प्रश्न शुरू होता है तब स्थितियाँ बदलती हैं। जब सम्यक् ज्ञान का उदय होता है तब परिग्रह का आकर्षण नहीं रहता, रुचि नहीं होती। जटिल प्रश्न है संग्रह नहीं करना, परिग्रह नहीं करना, वस्तु को न लेना या कम लेना। सम्यक् ज्ञान का उदय होने पर व्यक्ति अपने आप से पूछता है कि मैं भव्य हूँ या नहीं? सम्यक् दृष्टि हूँ या नहीं? यह प्रश्न अपने आप से पूछें, दूसरों से भी पूछें—मुझमें सम्यक् ज्ञान का उदय हुआ या नहीं?

यह प्रश्न स्वयं से पूछा जाए और इसका उत्तर स्वयं से लिया जाए तो परिग्रह के प्रति आकर्षण नहीं रहेगा। सम्यक् ज्ञान का उदय नहीं होता और यह प्रश्न नहीं पूछा जाता तब तक बटोरने की, संग्रह करने की, इकट्ठा करने की, अर्थ के प्रति आसक्त होने की बात समाप्त नहीं होती।

भारतीय साहित्य में अनेक योग माने गये हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, मंत्रयोग, लययोग आदि-आदि। ज्ञान योग सबमें प्रमुख है। दो शब्द योग में प्रचलित हैं। कर्मशास्त्र में भी आते हैं—ज्ञान और संवेदना। जो ज्ञान राग-द्वेष से जुड़ा हुआ है वह ज्ञान नहीं, अज्ञान है और जो ज्ञान राग-द्वेष रहित है वह ज्ञान है। जहाँ राग-द्वेष नहीं है, संवेदना नहीं है, वह कोरा ज्ञान है और वही ज्ञानयोग है। उसे चाहे संवर कह दो, शुद्धोपयोग कह दो, चाहे ज्ञान योग कह दो। जब वह प्रकट होता है तब सारी रुचियाँ बदल जाती हैं, आकर्षण की दिशा बदल जाती है। जो रुचि कहने से नहीं बदलती वह ज्ञानयोग प्रकट होने पर स्वतः बदल जाती है।

सम्यक् दर्शन की तरह सम्यक् ज्ञान को भी समझना बहुत जरूरी है। सम्यक् श्रद्धा के बारे में तो काफी छानबीन होती है और बहुत बार बताया भी जाता है। ऐसे ही सम्यक् ज्ञान को मान लेना पर्याप्त नहीं है। सम्यक् दर्शन हुआ तो सम्यक्

ज्ञान हो गया। वास्तव में जब सम्यक् ज्ञान का विकास होता है तब दृष्टिकोण बदल जाता है। यह प्रश्न अपने आप से पूछें—पदार्थ के प्रति और अपने प्रति मेरा दृष्टिकोण बदला या नहीं? मेरा ज्ञान सम्यक् बना या नहीं? ज्ञान के साथ संवेदना जुड़ी है या नहीं? बहुत प्रसंग हैं, प्रिय-अप्रिय राग-द्वेष जनित शायद अनेक घटनाएं घटित होती हैं। उन सबमें मैं कितना लिस रहा हूँ, कितना अलिस रहा हूँ? यह प्रश्न ज्ञानयोग का है। ज्ञानयोग का विकास होने पर आकर्षण बदल जाते हैं, वासनाएं सहज ही छूट जाती हैं। विदेह महाराज जनक के पास संन्यासी आया और बोला—संन्यासी बन गया हूँ पर वासनाएं छूट नहीं रही हैं। वासना का अर्थ सीमित न करें। कोरी काम की वासना ही नहीं होती, वृत्ति की भी वासना होती है। अहंकार की भी वासना है, लोभ की भी वासना है, वह छूट नहीं रही है। मुनि तत्काल खड़े हो गए और खंभे को पकड़ लिया। जोर-जोर से चिल्लाने लगे और बोले—‘आओ, मुझे बचाओ, खंभे ने मुझे पकड़ लिया।’ संन्यासी मन ही मन हंसने लगा। मैं इसके पास समाहित होने के लिए आया हूँ यह तो अज्ञानी आदमी है, कुछ नहीं जानता। चिल्ला रहा है। संन्यासी बोला—‘महाराज! कैसी भोलेपन की बातें कर रहे हैं। खंभे ने आपको कहां पकड़ा है? आपने खंभे को पकड़ रखा है।’ जनक बोले—‘दूसरों को भोला कहना बहुत सरल है, जरा स्वयं सोचो कि वासना को तुमने पकड़ रखा है या वासना ने तुमको पकड़ रखा है?’ उसे आत्म बोध हो गया। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दृष्टिकोण होने पर अध्यात्म की दिशा में कुछ चरण आगे बढ़ सकते हैं।

## सम्यक् दर्शन ( १ )

आत्मा को जानने की विधि है अध्यात्म। समाचार पत्र में पुनर्जन्म की घटना को पढ़ा—‘उसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान है। उस व्यक्ति ने अपने पूर्वजन्म के बारे में जो विवरण दिया वह सत्य था।’ पुनर्जन्म आत्मा को जानने की एक विधि है। सबसे पहले आत्मा में श्रद्धा होना जरूरी है। आत्मा को जानने का प्रयत्न शुरू करना है। पहले अध्ययन करो, मनन करो, वस्तु का ज्ञान हो जाएगा। ज्ञान हुआ पर रुचि नहीं हुई तो ज्ञान, ज्ञान तक सीमित रह जाएगा। उसमें प्रीति हुई है, रुचि हुई है, तब श्रद्धा उत्पन्न होगी। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है—तत्त्व के अर्थ में श्रद्धा पैदा होना आवश्यक है। बहुत लोग तत्त्व को जानते हैं पर उनमें रुचि नहीं होती। रुचि नहीं है तो फिर उसके आचरण का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। रुचि होना बहुत बड़ी बात है। कुछ लोगों में रुचि पैदा हो जाती है। कुछ लोग सत्य को जान लेते हैं उन्हें ज्ञान हो जाता है पर श्रद्धा नहीं हुई, उनमें प्रीति पैदा नहीं हुई, रुचि पैदा नहीं हुई। मात्र सत्य को जान लिया। रुचि पैदा होना चारित्र का अंग है।

शरीर धर्म का साधन है। वह तीन भागों में विभक्त है—दायां, बायां और मध्य। एक ओर ज्ञान रहता है, दूसरी ओर दर्शन होता है और मध्य भाग में चारित्र रहता है। आचारांग का सूत्र है—चारित्र मध्य में है। दोनों ओर दो भाग हैं तो चारित्र मध्य भाग में रहेगा। एक से कभी मध्य नहीं बनता। मध्य तब बनता है जब दोनों ओर एक-एक है। तीन प्रदेशी स्कन्ध के मध्य माना गया है। एक प्रदेशी, दो प्रदेशी स्कन्ध में मध्य नहीं बनता। हमारे शरीर के तीन हिस्से बन गये। दायां ओर ज्ञान, बायां ओर श्रद्धा, मध्य में चारित्र।

दो तटों के बीच नदी का प्रवाह है। दो तट हैं ज्ञान और दर्शन, मध्यवर्ती प्रवाह है चारित्र। ज्ञान और श्रद्धा के तट मजबूत होने चाहिए।

बहुत बार प्रश्न होता है कि ज्ञान पहले या श्रद्धा? एक बार बीदासर में इस प्रश्न को लेकर घण्टों तक विवाद हो गया। पहले कौन? ज्ञान या श्रद्धा। सामान्यतः श्रद्धा को पहले बताया जाता है किन्तु पहले श्रद्धा नहीं होती। पहले ज्ञान पैदा होगा, बाद में ज्ञेय विषय के प्रति रुचि पैदा होगी, श्रद्धा होगी। जब ज्ञान ही नहीं है तो

आकर्षण कैसे होगा? पहले जानेंगे फिर आकर्षण पैदा होगा। मुनि घासीरामजी स्वामी वैरागी अवस्था में सुजानगढ़ में लोढ़ाजी के घर आए। वहां वैरागी को भोजन कराया गया। खीर परोसी गई, और भी दूसरे व्यञ्जन परोसे गए। उन्होंने खीर नहीं खाई, दूसरे व्यञ्जन खा लिए। लोगों ने कहा—खीर क्यों नहीं खा रहे हो? उन्होंने कहा—‘क्या खाएं? सारी लटें ही लटें कुलबुला रही हैं।’ खीर में ऊपर पिस्ता, नौजा, बादाम की कतरन डाली हुई थी। लोढ़ाजी ने कहा—ये लटें नहीं हैं। ये बादाम, पिस्ता, नौजा आदि की कतरन हैं। फिर खाना शुरू किया। खीर स्वादिष्ट लगी, प्याला भर कर खा लिया। ज्ञान होने पर रुचि पैदा होती है। ज्ञान ठीक नहीं है तो उसके प्रति आकर्षण पैदा नहीं होता।

हम जानें। जानने के बाद अच्छा लगे तो रुचि पैदा हो जाती है। श्रद्धा, रुचि, इच्छा एक ही बात है। इच्छा कब होगी? रुचि कब पैदा होगी? श्रद्धा कब पैदा होगी? सब लोग जानते हैं कि पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति हैं। जानने मात्र से श्रद्धा पैदा नहीं होती, रुचि पैदा नहीं होती। इस रुचि को जगाने की साधना आवश्यक है।

तीन गुप्तियों में सबसे कठिन साधना है मनोगुप्ति की। उसके लिए संकल्प, एकाग्रता और साध्य के साथ तन्मयता आदि-आदि साधना के सूत्र हैं। रुचि पैदा हुए बिना मनोगुप्ति की साधना नहीं होती। इसलिए बहुत आवश्यक है कि जो पाना है उसमें हमारी रुचि पैदा हो।

रुचि नैसर्गिक भी होती है और अधिगम के द्वारा भी होती है। भोजन के संदर्भ में भी बात लागू होती है। अग्नि तेज है, खाने की रुचि सहज होती है। अग्नि मंद है तो सहज खाने की रुचि नहीं होती। रुचि पैदा करनी पड़ती है। लवणभास्कर चूर्ण दिया जाता है, हिंश्वष्टक दिया जाता है। इन दवाओं का सेवन करो, खाने की रुचि पैदा हो जायेगी।

काव्यानुशासन में आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है—कवि दो प्रकार के होते हैं, निसर्गज और प्रयत्नज। एक व्यक्ति प्रतिभा से कवि होता है, सहज प्रतिभा उपलब्ध होती है। उसे अभ्यास करने की जरूरत नहीं होती। वह जो बोलता है वह स्वतः कविता बन जाती है। यह नैसर्गिक प्रतिभा है। अधिगमज प्रतिभा वाला व्यक्ति प्रयत्न से कविता का अभ्यास करते-करते कवि बन जाता है, लेखक बन जाता है। दोनों मार्ग हैं—निसर्ग का मार्ग और प्रयत्न अथवा अधिगम का मार्ग। ध्यान भी प्रयत्न से आता है, प्रतिभा भी प्रयत्न से आती है, रुचि का विकास भी प्रयत्न से होता है। अनुष्ठान रुचि पैदा करने का साधन है। रुचि पैदा हो जाए तो अनुष्ठान सफल हो जाता है।

रुचि पैदा करना बड़ा कठिन काम है। बाधाएं काफी हैं। नींद बहुत बड़ी बाधा है। आलस्य भी बहुत बड़ी बाधा है। यदि हमारा दृढ़ संकल्प हो, पूरा प्रयोग साधना और सिद्धि—



जागरूकता के साथ करें तो रुचि पैदा हो जाएगी। रुचि है तो फिर आलस्य भी नहीं आता। बच्चा टीवी देखता है, फिल्में देखता है। उसे आलस्य नहीं सताता। कुछ दिन पहले एक परिवार आया था। उनके आठ-दस वर्ष का एक बच्चा था। घरवालों ने कहा—यह बच्चा टीवी बहुत देखता है, इनको टीवी नहीं देखने का संकल्प करा दो। मैंने पूछा—कितने घण्टे टीवी देखोगे? बच्चे ने कहा—दस घण्टे से ज्यादा नहीं देखूंगा। उस समय वह नींद और भोजन सब भूल जाता है। आकर्षण पैदा हो गया, रुचि पैदा हो गई।

अनुष्ठान का सारा प्रयत्न रुचि पैदा करने का प्रयत्न है। सबकी रुचि पैदा हो जाए, सबको भूख लग जाए, प्यास लग जाए। प्यास कैसे लगे? प्यास लगाना बड़ी बात है। कुछ लोग गर्मी के दिनों में पकौड़ा-कचौड़ी खाते हैं। मैंने पूछा—‘भयंकर गर्मी है फिर ये तली हुई और चटपटी चीजें क्यों खाते हैं।’ उत्तर मिला—‘इससे प्यास अच्छी लगती है। पानी पीने में स्वाद आता है। पानी पीने की भी रुचि पैदा हो जाती है।’ बहुत लोग ऐसे हैं जो बहुत कम पानी पीते हैं। गर्मी में भी कम पानी पीते हैं। पानी पीने में रुचि नहीं होती। वहां आत्माभिमुखता की चर्चा करना कितना कठिन कार्य है। जहां इतना भौतिक वातावरण है वहां आत्मा की बात करें, आत्मा की ओर अभिमुख होने की बात करें, मुश्किल काम है। फिर भी अशक्य नहीं है, असंभव नहीं है। अपना-अपना क्षयोपशम भी होता है। ये छोटे-छोटे बच्चे साधु कैसे बन सकते हैं, मद्रास में रहने वालों के लिए राजस्थान में रहना कठिन बात है। फिर भी इस कठिनाई को स्वीकार करते हैं। बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले भी साधुत्व को स्वीकार करते हैं। कारण क्या है? क्षयोपशम। क्षयोपशम के साथ रुचि भी पैदा हो गई। पिता ने रुचि पैदा कर दी, साधु-साध्वियों ने रुचि पैदा कर दी कि साधु जीवन बहुत अच्छा है। यह रुचि होना सफलता की पहली बात है। यह श्रद्धा जम गई कि बहुत अच्छा है, इससे बहुत कुछ मिलने वाला है।

हमारा एक काम है प्रयत्न करना और प्रयत्न से रुचि पैदा करना। अगर रुचि पैदा न कर सकें, तो ज्ञान बहुत साथ नहीं देता। उसकी अपनी सीमा है। वह साथ नहीं चलता। रुचि हमारे साथ चलती है।

कर्नाटक, बंगाल, बिहार, असम आदि प्रान्तों से लोग गुरुदेव के दर्शन करने आते हैं। क्यों? रुचि पैदा हो गई। आकर्षण के कारण लोग यहां आते हैं। अगर आकर्षण न हो कोरा ध्यान हो तो कोई नहीं आएगा। श्रद्धा बहुत बड़ा तत्त्व है। ज्ञान के बाद श्रद्धा और श्रद्धा के बाद सम्यक् ज्ञान। ज्ञान के विकास के पश्चात श्रद्धा बढ़ती चली जाएगी। ज्ञान को हम सीमित न मानें। ज्ञान असीम है। अनुष्ठान का सारा क्रम रुचि के संवर्द्धन का क्रम है। परीक्षण करते जाएं कि आज जप का प्रयोग किया, रुचि बढ़ी या नहीं? बढ़ी तो कितनी मात्रा में बढ़ी? इस प्रकार ज्ञान के साथ रुचि बढ़ती चली जाए तो सचमुच एक अंग में ज्ञान, एक अंग में रुचि और बीच में चारित्र्य का प्रवाह अवश्य वृद्धिगत होगा।

साधना और सिद्धि ————— ● ९३ ●

## सम्यक् दर्शन ( २ )

सम्यक् दर्शन बहुत व्यापक है और इसका प्रयोग क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। अनेक दृष्टियों से इसके प्रयोग को समझा जा सकता है। सम्यक् दर्शन के एक पर्याय पर हमें विचार करना है।

प्रत्येक कर्म का विपाक निश्चित होता है। शुभ कर्म का विपाक शुभ होता है, अशुभ कर्म का विपाक अशुभ। शुभ कर्म के विपाक को कैसे भोगना, यह सम्यक् दर्शन का क्षेत्र बनता है। एक व्यक्ति सम्यक् दृष्टि है, प्रचुर शुभ कार्यों का उदय है पर उन्हें अनासक्ति के साथ भोग रहा है। उदाहरण के लिए भरत चक्रवर्ती को प्रस्तुत किया जा सकता है। दूसरा व्यक्ति सम्यक् दृष्टि वाला नहीं है इसलिए उन्हें आसक्ति के साथ भोग रहा है। उदाहरण के लिए ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को प्रस्तुत किया जा सकता है।

चक्रवर्तित्व की दृष्टि से दोनों समान थे। भरत भी चक्रवर्ती था, ब्रह्मदत्त भी चक्रवर्ती। दोनों के पास छः खण्डों का राज्य था। प्रचुर ऐश्वर्य था। नौ निधान और चौदह रत्न थे। कोई अन्तर नहीं। किन्तु शुभ कर्म के विपाक को भोगने में अंतर था। भरत चक्रवर्ती उस विपाक का अनासक्ति के साथ भोग रहा था और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती उसको आसक्ति के साथ। परिणाम यह आया कि भरत मुक्त हो गया और ब्रह्मदत्त जन्म-मरण के दलदल में फंस गया। यह अन्तर क्यों? कारण स्पष्ट है। चक्रवर्ती भरत के पास सम्यक् दर्शन था इसीलिए अपने पूरे शुभ कर्म के उदय को शांत भाव से भोगा। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पास सम्यक् दर्शन नहीं था इसलिए शुभ कर्म के उदय को आसक्ति के साथ भोगा। जब मुनि चित्त ने उसे समझाया, चक्रवर्ती ने कहा—मैं इसको छोड़ने में असमर्थ हूँ। अपनी असमर्थता इन शब्दों में व्यक्त की—

**नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्टुं थलं नाभिसमेइ तीरं।**

**एवं वयं कामगुणोसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो।।**

जैसे दलदल में फंसा हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे पर नहीं पहुंच पाता, वैसे ही कामगुणों में आसक्त बने हुए हम श्रमणधर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नहीं कर पाते।

साधना और सिद्धि ————— ● ९४ ●

कर्म विपाक के समय व्यक्ति को शांत और संतुलित रहना आवश्यक है। जैसे शुभ कर्म का विपाक भोगते समय आसक्ति और अनासक्ति, मूर्च्छा और अमूर्च्छा का प्रयोग मिथ्या दर्शन और सम्यक् दर्शन का हेतु बनता है वैसे ही अशुभ कर्म का विपाक भी मिथ्या दर्शन और सम्यक् दर्शन का हेतु बन सकता है। जिस व्यक्ति का दर्शन सम्यक् है, कर्मफल को शांति के साथ भोग लेता है इसलिए वह नए कर्म का बंध नहीं करता।

जिस व्यक्ति का दर्शन मिथ्या है वह कर्म के अशुभ फल के व्यथा के साथ भोगता है इसलिए नए-नए कर्मों का बंध करता रहता है। जिस व्यक्ति का दर्शन सम्यक् है वह शुभ कर्मफल को अनासक्ति के साथ भोगता है। इसलिए नए कर्म का गाढ़ बंधन नहीं करता। जिस व्यक्ति का दर्शन मिथ्या है वह कर्म के शुभफल को आसक्ति के साथ भोगता है इसलिए नए कर्म का गाढ़ बंधन करता है। सनत्कुमार ने अशुभ कर्म के फल विपाक को समभाव से झेला, यह एक उत्कृष्ट निदर्शन है।

सम्यक् दर्शन का विकास होने पर अशुभ कर्म के विपाक को व्यक्ति समभाव से सह लेता है। अनेक लोगों को देखते हैं, बीमारी के समय बेचैन हो जाते हैं, अधीर बन जाते हैं। सम्यक् दर्शन के अभाव में ऐसी स्थिति का निर्माण होता है।

बंधे हुए प्रत्येक कर्म का विपाक निश्चित है। उसके अनेक रूप होते हैं। विपाक तीव्र रूप में हो सकता है, मंद रूप में भी हो सकता है। कर्म विपाक के समय चेतना की अवस्था कैसी होती है, चेतना की स्थिति कैसी रहती है? यह सब दृष्टिकोण पर निर्भर है। जिस व्यक्ति ने सम्यक् दृष्टिकोण बना लिया, उसका चिंतन बदल जाएगा। जयाचार्य की आराधना के बोल उसके सामने मुखर हो जाएंगे—

**पुन्य पाप पूरब कृत, सुख दुख नां कारण रे।**

**पिण अन्य जन नहीं, इम करै विचारण रे॥**

दृष्टिकोण के मिथ्या होने पर यह चिंतन नहीं आएगा। इन सारे पहलुओं पर विचार करने से आचारांग का सूत्र ठीक समझ में आता है—‘समत्तदंसी न करेइ पावं’—सम्यक् दृष्टिकोण वाला व्यक्ति पाप नहीं करता। इसका तात्पर्यार्थ यह है कि जिसका दर्शन सम्यक् हो गया वह विपाक को इस प्रकार भोगता है कि नए सिरे से पाप का बंध न हो अथवा तीव्र बंध न हो, प्रगाढ़ बंध न हो, चिकने कर्मों का बंध न हो। इसे सूखे और आर्द्र वस्त्र के उदाहरण से समझा जा सकता है।

कपड़ा सूखा था तब वजन कम था। गीला हो गया, वजन बढ़ गया। गधे और ऊँट पर भार लदा हुआ था। एक पर नमक था एक पर रूई। जिस पर नमक था वह हल्का हो गया क्योंकि नमक पानी में बह गया। जिस पर रूई थी वह गीली हो गई, भार दुगुना हो गया। हमें भार नहीं बढ़ाना है। कर्मों के विपाक को हम इस प्रकार भोगें कि नमक बह जाए, रूई भीगे नहीं, वजन बढ़े नहीं, तब ‘समत्तदंसी न करेइ पावं’ के रहस्य को समझा जा सकता है।

साधना और सिद्धि ————— ● ९५ ●

## सम्यक् चारित्र

धर्म का मार्ग, साधना का मार्ग, अध्यात्म का मार्ग, बोधि का मार्ग सब एक ही हैं। ये सब ज्ञान, दर्शन और चारित्र के अंतर्गत हैं। इनमें मोक्ष का समग्र मार्ग समाया हुआ है। उत्तराध्ययन सूत्र में मोक्ष का मार्ग निर्दिष्ट है—

**णाणं च दंसणं चैव चरित्तं च तवो तथा ।  
एस मग्गोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥**

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप यह मोक्ष का मार्ग है, समस्या के समाधान का मार्ग है। जीवन की सफलता का भी यही मार्ग है। उमास्वाति ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र के पहले सम्यक् शब्द का प्रयोग किया है। तत्त्वार्थसूत्र में मोक्षमार्ग को परिभाषित करते हुए कहा है—‘सम्यक् दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः’ सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है। उपाध्याय यशोविजयजी ने काव्य की भाषा में लिखा—

**ज्ञानं दुग्धं दधिः श्रद्धा घृतं तच्चरणं स्मृतम् ।  
गुरोर्गव्यमिदं धर्म्यं धार्यं चानन्तवीर्यकम् ॥**

ज्ञान दूध है, श्रद्धा दही है और चारित्र मक्खन है। इसलिए गुरु से अनन्तवीर्य प्रदायक धर्म रूप घृत प्राप्त करना चाहिए। पंच गव्य को औषध के रूप में माना गया है। आज इस पर बहुत खोज हो रही है। अनेक लोगों ने इसके द्वारा अपना इलाज किया है। दूध तरल होता है। दही गाढ़ा होता है। दूध जमा, दही बन गया। ज्ञान तरल होता है, श्रद्धा गाढ़ी होती है, घनीभूत होती है। दूध और दही का सार है मक्खन। ये तीनों अलग-अलग नहीं हैं। दूध से दही और दही से घी निकला। तीनों एक हो गए। एक ही वस्तु के तीन रूप बन गए। ठीक इसी तरह ज्ञान, दर्शन और चारित्र भी तीन हैं पर एकात्मक हैं।

मूल प्रश्न है विचार का। हमने जो ध्येय बनाया है उसकी सही जानकारी है या नहीं? जो प्राप्तव्य है, जो लक्ष्य है उसकी जानकारी होना जरूरी है। उसका ज्ञान होने पर श्रद्धा गाढ़ बन जाएगी। जाने बिना श्रद्धा नहीं बढ़ेगी।

साधना और सिद्धि—● ९६ ●

भगवान् महावीर ने उपदेश दिया। श्रावक के बारह व्रतों की चर्चा की। उपदेश सुनकर तत्काल आनंद श्रावक खड़ा हुआ, निवेदन किया—‘ भंते! मैंने तत्त्व को जान लिया और उस पर श्रद्धा हो गई।’ जब ज्ञान और श्रद्धा दोनों प्रबल हैं तो चारित्र का होना स्वाभाविक है। दूध से दही बन गया। अब मंथन की जरूरत है। मक्खन स्वतः ही निकल जाएगा। उसके लिए बाहर से कुछ भी लाने की जरूरत नहीं है। प्रबल ज्ञान है, प्रबल श्रद्धा है, तो व्यक्ति में चारित्र अपने आप आ जाएगा। इन तीनों में एकात्मकता है। ज्ञान के बिना श्रद्धा नहीं होती और श्रद्धा के बिना चारित्र नहीं होता। इनका परस्पर योग मिलने पर ज्ञान श्रद्धा में परिणत होगा और श्रद्धा चारित्र में परिणत हो जाएगी। मक्खन अपने आप मिल जाएगा।

मक्खन को प्राप्त करने के लिए अनुष्ठान के दिनों में मानसिक संकल्प जागे—मुझे ज्ञान का विकास करना है, स्वाध्याय को गति देना है। समाचार पत्र और पत्रिकाओं को स्वाध्याय के साथ नहीं जोड़ना है। आगम का स्वाध्याय करना है, महावीर वाणी का स्वाध्याय करना है। भगवान् महावीर ने साधना की और साधना के बाद उनकी तपःपूत वाणी से ध्वनि के जो प्रकम्पन हुए हैं, उनका स्वाध्याय करना है। आगम का स्वाध्याय इसलिए जरूरी है कि हमारे साधुओं को उनका विशेष अध्ययन करना है, विशेषज्ञ बनना है। विशेषज्ञों के आधार पर ही दर्शन की परम्परा चलती है।

आज महावीर जीवित हैं। उनके जीने का आधार क्या है? आगम के आधार पर महावीर जी रहे हैं। यदि आज आगम नहीं होते तो महावीर का नाम भी लुप्त हो जाता। बुद्ध पिटक के आधार पर जीवित हैं। ईसा बाईबिल के आधार पर, मोहम्मद कुरान के आधार पर और कन्फ्यूसियस ताओ के आधार पर जीवित हैं। इन छोटे-छोटे ग्रन्थों के आधार पर सैकड़ों-सैकड़ों व्याख्याएं हुई हैं। जो मूलभूत वाणी है, आगम की वाणी है, इसका हम अध्ययन करें। श्रद्धा गाढ़ हो, निष्पत्ति स्वतः मिल जाएगी।

अनुष्ठान के नौ दिनों में हम आत्मचिंतन करें, आत्मालोचन करें, लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने का संकल्प करें। महावीर वाणी का गहराई से अध्ययन कर सत्य को पाने का प्रयत्न करें।

## संतुलन राग और विराग का

एक विषय जिस पर पूज्य गुरुदेव चिन्तन करते थे, मैं भी करता हूँ—वह यह है—जीवन में केवल राग न हो, वैराग्य भी हो। समाज में रागात्मकता होती है, इसे कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। रागात्मकता के बिना समाज चल भी नहीं सकता। जिस समाज में राग के साथ वैराग्य नहीं होता वह समाज रुग्ण समाज होता है। व्यक्ति और समाज को स्वस्थ रखने के लिए संतुलन आवश्यक है।

अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और धर्म में जिस तत्त्व का दृढ़ता के साथ प्रतिपादन किया गया है वह यह है कि राग के साथ विराग को अवश्य जोड़ो अन्यथा राग प्रगति में बाधा बन जाएगा। भौतिकता के साथ अध्यात्म की चेतना को जोड़ो, नहीं तो भौतिकता से मिलने वाली सुविधाएं स्वयं के लिए प्रलयंकारी बन जाएगी। यदि समाधि का जीवन जीना है तो भौतिकता के साथ नैतिकता, ईमानदारी और प्रामाणिकता को जोड़ना होगा।

यथार्थता का बोध करने के लिए आध्यात्मिक चेतना के सिवाय कोई दूसरा विकल्प नहीं है। अध्यात्म की गहराई में जाना कठिन कार्य है। अध्यात्म का सतही रूप भी हमारे सामने आ जाए तो बहुत अधिक लाभ की संभावना है। जब व्यक्ति का यह चिन्तन हो जाता है कि मैं अकेला नहीं हूँ तब नई जीवन शैली का शुभारंभ होता है। वह सबके हित के बारे में सोचता है। जब व्यक्ति में स्वार्थ पनपता है तब वह सोचता है कि मुझे सुविधा मिले, धन मिले, सत्ता मिले। सब कुछ मिले। उस समय वह दूसरे की बिल्कुल उपेक्षा कर देता है, दृष्टि से ओझल कर देता है। महावीर वाणी में बतलाए गए अध्यात्म के सूत्र को भी वह विस्मृत कर देता है कि मैं अकेला नहीं हूँ।

महावीर ने कहा—दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करो। जो दूसरे के अस्तित्व का अभ्याख्यान करता है, अस्वीकार करता है, वह अपने अस्तित्व का अस्वीकार करता है। स्व और पर, मैं और दूसरा—दोनों के बीच जब एकात्मकता की अनुभूति होती है तब व्यक्ति अपने सुख के लिए दूसरे के सुख में बाधा नहीं पहुंचाता, दूसरे के हित का हनन नहीं करता। अध्यात्म के इस सूत्र से राजनीति व

साधना और सिद्धि—● ९८ ●

समाज दोनों का भला हो सकता है। चाणक्य ने भी इस बात पर बहुत बल दिया था कि समाज में तुम अकेले मत खाओ, दूसरों को भी उनका हिस्सा दो।

आध्यात्मिक चेतना है आत्मा की पवित्रता। दूसरे को मेरे द्वारा कष्ट न हो, यह विशुद्ध आध्यात्मिक चेतना है। तुम अकेले ही सब कुछ मत करो। अकेले भूमि पर, धन पर और सत्ता पर अपना अधिकार मत जमाओ। इन सब पर दूसरों का भी अधिकार है इस बात को विस्मृत मत करो। बहुत प्राचीन प्रसंग है। महाराजा प्रसेनजित के मन में आया—मुझे अपना उत्तराधिकारी चुनना है। मैं परम्परागत चुनाव नहीं करूंगा, नए तरीके से मनोनयन करूंगा। उत्तराधिकारी के मनोनयन की कसौटी करूंगा। जो उसमें उत्तीर्ण होगा उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करूंगा। राजा ने योजना बना ली।

सौ राजकुमारों को आमन्त्रित किया गया। उन्हें एक पंक्ति में भोजन करने के लिए बिठाया। महाराजा प्रसेनजित वातायन में बैठे सब कुछ देख रहे थे। भोजन का समय होते ही भोजन परोस दिया गया। भोजन की घण्टी बजने के साथ ही दरवाजे खुले और शिकारी कुत्ते भोजन पर झपट पड़े। राजकुमारों में भगदड़ मच गई। राजा प्रसेनजित मूक भाव से सारे दृश्य का अवलोकन कर रहे थे। सारे राजकुमार दौड़ गये। राजकुमार श्रेणिक अब भी वहां उपस्थित था। महाराजा प्रसेनजित ने कार्य सम्पन्नता की सूचना दे दी।

दूसरे दिन घोषण की गई कि आज महाराजा प्रसेनजित अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन करेंगे। चारों ओर उत्सुकता थी, कुतूहल था, जिज्ञासा थी। कौन इस पद को अलंकृत करेगा? यदि परम्परागत चुनाव होता तो राजा का बड़ा बेटा उत्तराधिकारी बन जाता। मनोनयन का जहां प्रश्न है वहां पहला भी उत्तराधिकारी बन सकता है, पांचवां भी बन सकता है, अन्तिम भी बन सकता है। कौन उत्तराधिकारी बनेगा? इस दृश्य को देखने के लिए हजारों की भीड़ एकत्रित हो गई।

महाराजा प्रसेनजित राज्यसभा में सिंहासन पर आसीन थे। सभी राजकुमार और मंत्रीमण्डल के सदस्य भी वहां उपस्थित थे। महाराजा ने घोषणा की—अब मैं कार्य प्रारंभ कर रहा हूँ। राजा ने एक राजकुमार से पूछा—‘कल तुमने भोजन किया?’ प्रश्न पूछते ही राजकुमार उबल पड़ा। यह नहीं सोचा, मैं कहां बोल रहा हूँ। ‘महाराज! मैं भोजन कैसे करता? यहां के अधिकारी गैर जिम्मेदार हैं। राजकुमारों का भोजन हो रहा है, चारों ओर कुत्ते ही कुत्ते झपट रहे हैं।’ राजा ने कहा—‘बैठ जाओ।’ दूसरे से पूछा, तीसरे से पूछा, सब की एक ही स्थिति थी।

आखिर श्रेणिक का नम्बर आया। महाराज ने पूछा—‘तुमने भोजन किया या नहीं?’ श्रेणिक ने कहा—‘राजन्! मैंने भोजन कर लिया।’ राजा ने कहा—‘तुम समझदार नहीं हो। सब राजकुमारों को भय था कि शिकारी कुत्ते काट खाएंगे, क्या

साधना और सिद्धि ————— ● ९९ ●



तुम्हें भय नहीं लगा ? ऐसा लगता है तुम्हारे भीतर चिन्तन नहीं है अथवा तुम सही निर्णय नहीं ले सकते।' श्रेणिक ने कहा—'राजन्! मैं आत्मश्लूघा करना नहीं चाहता। मैं समझता हूँ, मैंने चिंतन भी किया है और समझदारी का प्रयोग भी किया है। शिकारी कुत्तों के काटने का मुझे किञ्चित मात्र भी भय नहीं लगा। मेरे पास मेरे भाइयों के निन्यानवे थाल पड़े थे। जैसे ही कुत्ते मेरे पास आते मैं एक-एक थाल उनके सामने करता रहता। वे भी खाते गए और मैं भी खाता रहा। कुत्ता उसको काटता है जो अकेला खाना चाहता है। जो विभाजन कर खाता है, दूसरे को खिलाना जानना है, उसको कुत्ते कभी नहीं काटते।' राजा ने घोषणा की—'श्रेणिक मेरा उत्तराधिकारी होगा।'

यह अध्यात्म का सामाजिक प्रयोग है, व्यावहारिक प्रयोग है। व्यवहार की भूमिका में यह समता का प्रयोग है।

सामायिक को जिसने समझा है उसने अध्यात्म को हृदयंगम किया है। सामायिक की साधना से तात्पर्य है अध्यात्म की साधना। जहां सामायिक है, अध्यात्म है, वहां जाति, सम्प्रदाय बहुत नीचे रह जाता है। जैसे-जैसे समाज में आध्यात्मिक चेतना का विकास होता है, बाहर से दिखाई देने वाली बहुत सारी समस्याएं अपने आप विलीन हो जाती हैं। आध्यात्मिक चेतना को जगाए बिना समस्या का समाधान नहीं होगा।

एक बहुत पुरानी घटना है। राजस्थान में एक चोर ने तुम्बे चुरा लिए। खेत के मालिक को पता लग गया। उसने चोर का पीछा किया। चोर ने सोचा—मालिक मेरा पीछा कर रहा है, अच्छा होगा इस तालाब में इनको छिपा दूँ। तुम्बों को छिपाने उसमें उतरा। तुम्बों को पानी में दबाने लगा। एग दबाता है, दूसरा उछल जाता है। हम आध्यात्मिकता के बिना समस्या को समाहित करने का प्रयत्न करते हैं। एक समस्या सुलझती नहीं, दूसरी संमस्याएं और उभर जाती हैं। इसलिए आवश्यकता है राग और विराग में संतुलन की, भौतिकता और आध्यात्मिकता के संतुलन की। इस स्थिति में प्रामाणिकता, नैतिकता स्वतः प्रस्फुटित हो जाएगी। संतुलन हमारे जीवन का मंत्र बन जाएगा।

साधना और सिद्धि—● १०० ●

## दसवैकालिक : एक मंत्र

आज नवरात के प्रथम दिन में दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन का पाठ किया। यह प्रथम अध्ययन एक मंत्र है और उसमें मुनि की जीवनचर्या का विधान भी है। इसका पहला श्लोक है—

**धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।**

**देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मो सया मणो ॥**

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिस व्यक्ति का मन धर्म में रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

एक बार उपाध्याय यशोविजयजी आचार्य आनंदघनजी के पास गये। यशोविजयजी बहुत बड़े तार्किक, विद्वान और पण्डित थे पर थोड़ा-सा छिपा हुआ अहं था। आनंदघनजी ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे पर साधना में बहुत आगे थे। यशोविजयजी ने कहा—महाराज! इस 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं' के पचास अर्थ हो सकते हैं। आनंदघनजी समझ गये कि यशोविजय नहीं बोल रहा है, अहं बोल रहा है। उन्होंने कहा—आप अर्थ बताइये। यशोविजयजी ने पचास अर्थ कर दिये, तब आनंदघनजी ने कहा—उसके अनेक अर्थ हो सकते हैं। उन्होंने जब अर्थ करने शुरू किये तो सौ से ज्यादा अर्थ कर दिये। यशोविजयजी आश्चर्यचकित रह गए। आनंदघनजी के पैरों में गिर गए। विनम्रता के साथ बोले—'आपके पास अन्तर का ज्ञान है, मैं तो पढ़ा हुआ बोल रहा हूँ।' अन्तर्दृष्टि जागृत होने के कारण वे उनके प्रति प्रणत हो गए।

प्रत्येक अक्षर के अनंत पर्याय हैं, इसीलिए एक श्लोक के पचास, सौ, हजार, लाख अर्थ हो सकते हैं। आखिर वर्णमाला के अक्षर कितने हैं? चौसठ हैं। कोई दो चार अधिक या कम मानते हैं। इतने अक्षरों में दुनिया भर का ज्ञान समाया हुआ है। कितनी कविताएं बनती हैं, कितने लेख बनते हैं और कितनी रचनाएं होती हैं। इन चौसठ वर्णों के असंख्य विकल्प बन जाते हैं। हजारों विकल्प तो हमारे सामने हैं। विशिष्ट ज्ञानी हो तो न जाने कितने विकल्प प्रस्तुत कर सकता है।

दशवैकालिक के पहले अध्ययन में पांच श्लोक हैं। इसमें अनेक मंत्र खोजे जा सकते हैं और अनेक अर्थ किए जा सकते हैं। जैसे भंवरा फूल पर मंडराता है, रस

साधना और सिद्धि ————— ● १०१ ●

चूसता है पर उसे क्लान्त नहीं करता। वैसे ही मुनि भी गोचरी करता है तो किसी को भी क्लान्त नहीं करता—यह मुनि के लिए विधान है। हम गृहस्थ के लिए सोचें। गृहस्थ अपनी आजीविका कैसे चलाए? व्यापार कैसे करे? इस अध्ययन में व्यापार का एक बहुत बड़ा सूत्र है। व्यक्ति भी किसी को क्लान्त करके व्यापार न करें। दूसरों को पीड़ा पहुंचाकर, दूसरे को हानि पहुंचाकर, दूसरे का अनिष्ट कर, दूसरे का गला काट कर अपना व्यापार न करें। जैसे भंवरा रस लेता है पर फूलों को क्लान्त नहीं करता। वैसे ही बाजार में व्यापारी किसी ग्राहक को या सम्बन्धित आदमी को कष्ट पहुंचा कर, धोखा देकर धन न कमाए। भंवरा जैसे फूल से रस लेता है, फूल को क्लान्त नहीं करता वैसे ही व्यापार करने वाला इतना ज्यादा मुनाफा न करे, जिससे सामने वाले का शोषण हो। शोषण की वृत्ति न पनपे।

ब्याज एक आवश्यकता मानी जाती है। आज उसका व्यवस्थित क्रम बन गया। बैंक उधार देते हैं और ब्याज लेते हैं। किन्तु ब्याज की दर इतनी बढ़ा दी गयी कि आज वह शोषण का प्रतीक बन गया। पूज्य गुरुदेव जब दक्षिण पधारे तब गिरवी के धन्धे के बारे में टिप्पणी की। कुछ जैन भाई भी विरोध में हो गए। गुरुदेव से प्रार्थना की—‘महाराज! आप यहां पधारे हैं बहुत अच्छी बात है। यहां प्रवचन करें यह भी बहुत अच्छी बात है, किन्तु गिरवी के धन्धे के बारे में कुछ कहेंगे तो हम आपका विरोध करेंगे।’ भंवरा फूल का पूरा रस ले ले तो फूल का शोषण होगा, पोषण नहीं। थोड़ा रस ले तो फूल भी सुरक्षित रहता है और भंवरे का भी काम चल जाता है। यह व्यावसायिक वृत्ति बन जाए तो व्यापारिक जगत् की बहुत सारी समस्याएं सुलझ सकती हैं। इससे हिंसा को प्रोत्साहन मिलना बंद हो जाएगा।

अनुष्ठान के समय आगम का स्वाध्याय चलता है। आगम की गाथाओं के सूत्रों का जप और आगम की गाथाओं का ध्यान—सब आगममय वातावरण बन गया है। वास्तव में महावीर वाणी में, आगम में, महावीर की शक्ति है और उस शक्ति का उपयोग जप के साथ किया जा सकता है, उसका उपयोग ध्यान के रूप में भी किया जा सकता है। आज अपेक्षा है कि हम उसको ग्रहण करें। जीवन में करुणा का विकास करें, क्रूरता न लाएं। क्रूरता प्रतिक्रिया को जन्म देती है। एक बार एक करोड़पति की मृत्यु हो गई, हजारों मजदूर इकट्ठे हो गये। संवाद मिला कि मिल मालिक का हार्ट फेल हो गया। मजदूर देख रहे थे। एक मजदूर बोला—‘मालिक का हार्ट फेल हो गया।’ तपाक से दूसरा बोला—‘मालिक के हार्ट था ही नहीं, फेल क्या हो गया?’ आज अधिक हिंसा प्रतिक्रियात्मक हो रही है। आगम की इस वाणी पर ध्यान दें, जीवन-निर्वाह के लिए आजीविका आवश्यक है। आजीविका के लिए दूसरों का शोषण न करें। दूसरे को कष्ट न हो, इस प्रकार के व्यवहार से हिंसा को अल्प किया जा सकता है, प्रतिक्रियात्मक हिंसा को रोका जा सकता है। पारस्परिक सरसता में वृद्धि हो सकती है।

साधना और सिद्धि—● १०२ ●

## शोषणमुक्त मधुकर

भारतीय साहित्य में काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यात्मक ग्रन्थ में भंवरा, कोयल, फूल, बौराया हुआ आम आदि का प्रासंगिक उल्लेख न हो तो वह काव्य अपूर्ण माना जाता है। चाहे कालिदास के द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अध्ययन करो, चाहे हेमचन्द्र की रचनाओं का अवलोकन करो या अन्य काव्यों का पारायण करो, भंवरा, फूल आदि का उनमें भी वर्णन मिल जाएगा। दशवैकालिक का प्रारम्भ भी काव्यात्मक रूप से हुआ है। इसके प्रथम अध्ययन में ही भंवरे का उल्लेख मिलता है—

**जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।**

**न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं॥**

एक विचार अनेक बार सामने आया—जैन धर्म को अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र के संदर्भ में प्रस्तुत करना चाहिए। वही धर्म व्यापक बन सकता है और मान्य हो सकता है जो समाज व्यवस्था को सम्यक् दिशा दे। समाज की सबसे बड़ी समस्या मानी जाती है—शोषण। अशोषण का उदाहरण है—माधुकरी वृत्ति। भंवरा कभी शोषण नहीं करता। उसे जीवन चलाने के लिए कुछ लेना पड़ता है।

दुनिया में जीने के लिए दूसरे का सहारा लेना पड़ेगा, एक-दूसरे से सहयोग लेना पड़ेगा। साधु-साध्वियां भी सेवा लेते हैं। दो, तीन अथवा चार सहभागी हैं, परस्पर सेवा लेते हैं किन्तु उन्हें माधुकरी वृत्ति से सेवा लेना है। भंवरा थोड़ा-थोड़ा पराग या पुष्प का रस लेता है, किन्तु उन्हें कष्ट नहीं पहुंचता। यह एक प्रसंग है केवल माधुकरी वृत्ति का, भिक्षाचरी का। संदर्भ कितना व्यापक है। अगर इस माधुकरी वृत्ति से सरकार कर (टेक्स) ले तो चोरी कम हो जाएगी।

चाणक्य तथा जो भारतीय राजनीतिकार हुए हैं, उन्होंने बार-बार कहा—ज्यादा कर लेने वाला राजा नष्ट हो जाता है। इसीलिए उन्होंने विधान किया था कि आय का छठा हिस्सा कर के रूप में ग्रहण करो। उससे ज्यादा कर मत लो। नौकर मालिक की सेवा करता है। मालिक उसका शोषण न करे। ज्यादा सेवा लेकर

पारिश्रमिक कम न दें, यह औचित्य है। भंवरा रस लेगा किन्तु पुष्प को क्लान्त नहीं करेगा। अशोषण का कितना सुन्दर रूपक है। सारा रस ले लिया और फूल को नीरस बना दिया। शोषण हो गया। रस लिया और फूल को नीरस नहीं बनाया तो कोई हानि नहीं हुई। फूल रसवान बना रहा, शोषण नहीं, अशोषण हो गया। हर क्षेत्र में इस नियम को लागू कर दो—किसी दूसरे को कष्ट नहीं देना है। इसका महत्वपूर्ण प्रयोग है माधुकरी वृत्ति। माधुकरी वृत्ति को केवल भिक्षा के साथ ही मत जोड़ो। प्रत्येक व्यवहार में माधुकरी वृत्ति होनी चाहिए।

चाहे हम किसी से काम लें, माधुकरी वृत्ति से काम लें, सामने वाले को कष्ट न पहुंचे। व्यापार में भी यही वृत्ति होनी चाहिए, व्यापार करें पर किसी का शोषण न करें। शोषण करते समय यह चिन्तन नहीं होता कि सामने वाले व्यक्ति को भी कष्ट मिलता होगा, उसकी भी कुछ कामना होगी, यह विचार नहीं होता। आज सबसे बड़ी समस्या है शोषण की।

प्रश्न उपस्थित होता है—शोषण की क्या परिभाषा है? अशोषण की क्या परिभाषा है? माधुकरी वृत्ति है अशोषण, गोचरी है अशोषण। गधाचरी है—शोषण। गया घास खाती है, बूटे को जड़ से नहीं उखाड़ती। गधा चरता है, बूटे को जड़ से उखाड़ता है। माधुकरी वृत्ति अशोषण का उदाहरण है। गधे की वृत्ति शोषण का उदाहरण है। जहां शोषण है वहां दूसरे को क्लामना होगी, उसका सारा रस खींच लिया जाएगा। थोड़ा-थोड़ा रस लेना जरूरी है। उसके बिना काम नहीं चलता। व्यापार में मुनाफा करना है, यह ठीक है। किन्तु श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक चाहिए, यह श्रम का मूल्यांकन है, शोषण से बचाव है।

## कामना का व्यूह

वयं च वित्तिं लब्धामो, न य कोऽ उवहम्मई ।

अहागडेसु रीयंति, पुप्फेसु भमरा जहा ॥

दशवैकालिक का प्रस्तुत श्लोक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर इस पद्य का समाज में आचरण होता तो उग्रवादी संगठन पैदा नहीं होते। भगवान महावीर ने एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण दिया था—दिग्व्रत का, दिशाओं में गमन का सीमाकरण। शायद इससे बड़ा और कोई दूसरा समाधान नहीं हो सकता। गांधीजी की भाषा में जो स्वदेशी व्रत है वह दिग्व्रत का आधुनिक रूप है। अपने देश की सीमा में रहो, जहां जन्मे हो वहां रहो, उसी स्थान पर व्यवसाय करो।

दो प्रकार को मनोवृत्तियां हैं—

१. साम्राज्यवादी मनोवृत्ति
२. स्वदेशी व्रत की मनोवृत्ति।

सिकन्दर आदि अनेक शासकों की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति थी। हिटलर भी इसी मनोवृत्ति का पोषक था। वह चाहता था सारी दुनिया पर मेरा प्रभुत्व हो जाए। इस साम्राज्यवादी मनोवृत्ति ने जनता को बहुत पीड़ित किया। इसी परम्परा में नादिरशाह हुए। उन्होंने न जाने कितने लोगों को त्रास दिया। कुछ व्यक्ति बहुत अधिक क्रूर होते हैं। वे अपना अधिकार स्थापित करने के सिवाय कोई चिन्ता नहीं करते। कुछ लोग उसके प्रतिपक्ष स्वभाव वाले, दिग्व्रत को महत्त्व देने वाले होते हैं। मैं दूसरे के स्वत्व पर अधिकार नहीं करूंगा। दिशा का नियमन करूंगा। आपने गांव से अथवा उसके परिपार्श्व से चार सौ, पांच सौ किलोमीटर की दूरी पर बनी हुई वस्तु आदि का उपयोग नहीं करूंगा। स्वदेशी व्रत का यह सिद्धान्त आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त है।

व्यक्ति जहां रहता है वह यदि वहीं से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है तो हिंसा अपने आप कम हो जाती है और पर्यावरण का प्रदूषण भी स्वतः ही कम हो जाता है। आज साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का रूप बदल गया। वह आर्थिक

साम्राज्यवाद के रूप में सामने आ गया। इसीलिए आजीविका के लिए आज कोई तमिलनाडु जा रहा है, कोई असम जा रहा है, कोई बंगाल जा रहा है, कोई पंजाब जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को यह सूत्र याद रखना चाहिए—‘मेरी आजीविका चले पर मैं दूसरे को हानि पहुंचा कर, दूसरे को कष्ट देकर अपनी आजीविका नहीं चलाऊंगा। मैं ऐसा व्यापार नहीं करूंगा, जिससे दूसरे को हानि हो। हमें अपनी आजीविका मिल जाए, दूसरे का घर न उजड़े।’ दूसरे के घर को उजाड़कर अपनी रोटी नहीं कमाएंगे। यह अहिंसा का एक महत्वपूर्ण सूत्र बनता है।

आजीविका का अर्थ के साथ संबंध जुड़ा हुआ है। हर आदमी को अपनी रोटी जुटाने का अधिकार है, दूसरे को मारकर रोटी जुटाने का अधिकार किसी को नहीं है। आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरे के स्वार्थों का हनन करता है। स्वयं कुछ पाने के लिए दूसरों की प्राप्ति को नष्ट कर देता है। ऐसा क्यों? इसका हेतु है कामना। जब कामना प्रबल होती है तब यह सारा घटित होता है। कामना का आधिक्य होने पर धर्म का मर्म समझ में नहीं आता। साधु बन गया, कामना को नहीं त्यागा, फिर साधु बनने का कोई अर्थ नहीं रहेगा। इस संदर्भ में आचार्य शय्यंभव ने एक प्रश्न उपस्थित कर दिया—

### कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।

अभी तुमने कामना को भी नहीं छोड़ा, श्रामण्य का पालन कैसे करोगे? आचार्य ने चुनौतीभरा प्रश्न उपस्थित कर दिया। इसलिए सबसे पहले परीक्षण करना है कि हमने कामना पर विजय पाई या नहीं? अगर हमने कामना पर विजय नहीं पाई तो श्रामण्य का पालन कैसे होगा? साधुत्व की सुरक्षा कैसे होगी? सबसे पहले काम पर नियंत्रण करना जरूरी है।

एक सामाजिक प्राणी के लिए चार पुरुषार्थ माने गए हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। एक साधु के लिए कितने पुरुषार्थ आवश्यक हैं? साधु ने काम और अर्थ दोनों का सर्वथा परित्याग कर दिया। उसे न काम में फंसना है और न ही अर्थ का अर्जन और संग्रह करना है। साधु के सामने दो पुरुषार्थ शेष हैं—धर्म और मोक्ष। साधु बन गया किन्तु कामना को नहीं छोड़ रहा है, उन पर नियंत्रण नहीं कर रहा है। इसका क्या परिणाम आएगा? काम भीतर का कांटा है। यह संकल्प से पैदा होता है। संकल्प से काम और काम से संकल्प का चक्र चलता रहता है। संकल्प उत्पन्न होने के साथ ही विषाद पैदा होता है। कांटा चुभने से पग में पीड़ा होती है। जैसे बबूल की शूल चुभ गई, निकालने का प्रयत्न करने पर न ही निकली, अब चलने से पीड़ा होती है वैसे ही संकल्प जब कामना का रूप लेता है तब पग-पग पर विषाद होता है प्रसन्नता नहीं रहती।

जहां अध्यात्म की स्थिरता होती है वह है प्रसाद। पज्जलि ने ठीक ही कहा है ‘निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः’। निर्विचार का अर्थ है निर्विकल्पता।

साधना और सिद्धि—● १०६ ●



विकल्पशून्यता से जो निर्मलता प्राप्त होती है वह आत्मा की प्रसन्नता का हेतु है। आचारांग सूत्र में भगवान् महावीर ने कहा है—**समय तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पस्सायाए**— पुरुष अपने जीवन में समता का आचरण कर आत्मा को प्रसन्न करें। प्रसाद है चित्त की निर्मलता और विषाद है चित्त का अवसाद। उदासी, चिन्ता, अवसाद (Depression) और कुण्ठा (Frustration) ये सब विषाद के अन्तर्गत आते हैं। आश्विन के महीने में जलाशय प्रसन्न हो जाते हैं। आकाश भी प्रसन्न रहता है, उसमें निर्मलता आती है। इसीलिए शरद पूर्णिमा का महत्त्व है। शरद ऋतु की पूर्णिमा में आकाश प्रसन्न रहता है। श्रावण और भाद्रपद के महीने में आकाश में घटाएँ उमड़ती हैं। आकाश निर्मल नहीं रहता। शरद ऋतु में जलाशय निर्मल हो जाते हैं। धूल और पंक नीचे जम जाते हैं। पौष के महीने में चारों तरफ धुआं ही धुआं दिखाई देता है। छत पर खड़े होकर गांव को देखने पर ऐसा लगेगा मानो धुएं का कोई परकोटा बना दिया हो। यह धूमकलिका विषाद पैदा करती है। विषाद पैदा होते ही निर्मलता समाप्त हो जाती है। उसमें आत्मा की प्रसन्नता नहीं रहती।

जो व्यक्ति आत्मा को जानने का प्रयत्न करता है उसे आत्मिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। जहां व्यक्ति की दृष्टि पुद्गल पर टिक जाती है वहां विषाद पैदा होता है। आत्मलीनता प्रसाद और पुद्गललीनता विषाद—इस रहस्य को समझ लेने पर कोई भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता। आत्मा को नहीं जाना, पदार्थों को जान लिया, ज्ञान निरर्थक हो जाएगा। विषाद के साथ कामना जुड़ी हुई है। पदार्थ के साथ, पुद्गल के साथ हमारा जितना संबंध रहता है उतना ही आसक्तिपूर्ण संबंध होता है।

आज के विश्व की सबसे बड़ी समस्या है मानसिक तनाव। मानसिक तनाव का कारण क्या है? वर्तमान में बहुत अधिक शामक औषधियां चल रही हैं फिर भी तनाव कम नहीं है, अनिद्रा की बीमारी भी कम नहीं हुई है। इसका हेतु स्पष्ट है। आधुनिक चिकित्सक मूल तथ्य को नहीं पकड़ रहे हैं। शामक दवा देकर मस्तिष्क के अमुक कोष्ठ को शांत करने की चेष्टा कर रहे हैं।

अध्यात्म के आचार्यों ने समस्या के मूल को पकड़ा। उन्होंने कहा—तुम पदार्थ से जितने अनासक्त रहोगे अपने आप विषाद कम होगा, तनाव कम होगा। पदार्थ के साथ होने वाला अनुबंध तनाव को जन्म देता है। बीमार आदमी ने नौकर से कहा—मेरे लिए दवा लाओ। वह दवा लाने गया किन्तु दवा मिली नहीं। बीमार व्यक्ति के तनाव हो गया। पदार्थ की अपेक्षा थी वह पूरी नहीं हुई, तनावग्रस्त हो गया। आज गरीब आदमी बहुत तनाव में जी रहा है। उसकी अपेक्षाएं पूरी नहीं हो रही हैं संपन्न व्यक्ति की सारी अपेक्षाएं पूरी हो रही हैं इसलिए उसमें अभावात्मक तनाव नहीं है। अमीर में स्पर्धात्मक तनाव होगा। गरीब आदमी में अभावात्मक तनाव है। अमीर आदमी किसी वस्तु की पूर्ति नहीं हो रही है उससे तनावग्रस्त नहीं है। अमुक व्यक्ति मुझसे ज्यादा आगे बढ़ रहा है, इससे वह तनावग्रस्त हो रहा है। स्पर्धा का भाव तनाव उत्पन्न कर रहा है।

साधना और सिद्धि ————— ● १०७ ●

विषाद, मानसिक संघर्ष और तनाव पदार्थ के कारण होता है। इसलिए अध्यात्म के आचार्यों ने सचाई की गहराई में जाकर अध्यात्म की अनुभूतियों के साथ कहा था—

**पुद्गलैः पुद्गलास्तृप्तिं यान्त्यात्मा पुनरात्मना ।  
परतृप्तिसमारोपो ज्ञानिनस्तन्न युज्यते ॥**

पुद्गल से पुद्गल तृप्त होता है। आत्मा से आत्मा तृप्त होती है। दो रास्ते हैं, दोनों स्पष्ट हैं। एक पौद्गलिक तृप्ति का और एक आत्मिक तृप्ति का। व्यक्ति पुद्गलों का भोग कर रहा है और आत्मा को तृप्त करना चाहता है। यह अंतर्द्वंद्व है। यह पर तृप्ति समारोप है। तृप्ति दूसरे की और समारोप कर लिया किसी दूसरे का। ज्ञानी के लिए यह उचित नहीं है। उसे सत्य को समझना चाहिए और समझकर कामना को कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। मोह के परमाणु एक आसन पर जमे हुए हैं। उनको उखाड़ना, साफ करना बहुत अधिक कठिन है।

प्राकृतिक चिकित्सा वाले शरीर की सफाई करते हैं। कोई दवा नहीं देते। खाना कम करते हैं, बंद कर देते हैं अथवा बहुत साधारण खाना देते हैं। पांच-दस दिन बाद सफाई शुरू होती है और महीनों तक मल निकलता रहता है। स्वयं व्यक्ति आश्चर्यचकित हो जाता है कि यह आता कहां से है? इतना सूक्ष्म होकर सारा मल चिपक जाता है, कितनी सफाई करनी पड़ती है। स्थूल सफाई में इतनी कठिनाई होती है तो सूक्ष्म संस्कारों के रज-मल की सफाई में कितनी अधिक साधना की आवश्यकता है।

## संगठित समाज

समाज या संगठन को संगठित बनाने के लिए समन यानी पवित्र मन वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है। समाज में पवित्र मन वाले, कल्याणकारी मन वाले लोग जितने ज्यादा होते हैं वह समाज उतना ही अधिक स्वस्थ होता है। समन का सामान्य अर्थ है मन सहित होना। अनुयोगद्वारा सूत्र के व्याख्या साहित्य में समन उसको कहा है जिसका मन पापरहित होता है। समन शब्द के कई रूप बनते हैं—समण, सुमन आदि। जिस समाज में समण होते हैं वह समाज स्वस्थ रहता है।

समाज को संगठित बनाने के लिए दूसरी आवश्यकता है मुक्त व्यक्ति की, अप्रतिबद्ध व्यक्ति की। जिस समाज में मुक्त व्यक्ति अथवा अप्रतिबद्ध व्यक्ति होते हैं वह समाज स्वस्थ रहता है। जो अमुक्त होते हैं, राग-द्वेष या पक्षपात से मुक्त नहीं होते, प्रतिबद्ध होते हैं, वे समाज के लिए कल्याणकारी नहीं होते। भंवरे की तरह अप्रतिबद्ध या मुक्त व्यक्ति ही समाज के विकास में अपना सहयोग दे सकता है। यहां मुक्त का अर्थ बंधनमुक्त नहीं किन्तु अप्रतिबद्ध है। अप्रतिबद्ध व्यक्ति समाज के लिए बहुत आवश्यक होते हैं।

मनोविज्ञान की भाषा में प्रतिबद्ध मस्तिष्क (Conditioned Mind) वाले व्यक्ति के पूर्ण धारणा बनी रहती है। वह कभी बदल नहीं सकता, नए सत्यों का समावेश नहीं कर सकता, नई धारणाओं को विकसित नहीं कर सकता, नए व्यवहारों और नई प्रवृत्तियों को स्थान नहीं दे सकता। जो प्रतिबद्ध मस्तिष्क (Conditioned Mind) वाला नहीं है, अप्रतिबद्ध मस्तिष्क वाला है वह केवल पुरानी धारणाओं पर नहीं चलता किन्तु नई-नई धारणाएं बना सकता है और उनका उपयोग भी कर सकता है।

समाज को संगठित बनाने के लिए तीसरी आवश्यकता है शान्ति की। जिस समाज में शान्ति साधक ज्यादा होते हैं वहां विकास की संभावनाएं जन्म लेती हैं। झगड़ा करने वाले, कलह करने वाले, एक-दूसरे को भड़काने वाले लोग अधिक संख्या में हैं। शान्ति की साधना करने वाले और उसका वातावरण बनाने वाले बहुत कम होते हैं। आगम साहित्य में अनेक बार कहा गया—उपशान्त कलह की उदीरणा

साधना और सिद्धि ————— ● १०९ ●

मत करो। कलह का प्रसंग आने पर भी उसकी उदारणा मत करो। उपशान्त कलह की उदीरणा करने से कलह बढ़ता है।

वर्तमान युग प्रतिशोध और प्रतिक्रिया का युग है। किसी घटना के कारण कोई प्रतिक्रिया हुई, कुछ क्षण के लिए उसका असर रहा फिर प्रतिक्रिया समाप्त हो गई, यह उचित है। किन्तु जहां प्रतिक्रिया का अंत नहीं होता वहां प्रतिक्रिया अनंतानुबंधी हो जाती है। प्रतिक्रिया प्रतिशोध को जन्म देती है, वह शान्ति का बाधक तत्त्व है।

१. समाज में पहली अपेक्षा है कलह न हो।
२. दूसरी अपेक्षा है कलह हो तो उसको उपशान्त कर दिया जाए।
३. तीसरी अपेक्षा है उपशान्त कलह ही उदीरणा न की जाए।

समाज को शान्ति साधकों की जरूरत है। दशवैकालिक सूत्र में शान्ति साधक का उल्लेख मिलता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने कुछ वर्षों पूर्व शान्ति सेना का निर्माण किया था। समाज में ऐसे व्यक्तियों की निरन्तर आवश्यकता रहती है जो शान्ति के इच्छुक हैं, शान्ति की साधना करते हैं, दूसरों के लिए शान्ति का प्रचार करते हैं और शान्ति का प्रशिक्षण देते हैं।

समाज में तीन प्रकार के व्यक्तियों की अपेक्षा है—

१. समन
२. मुक्त या अप्रतिबद्ध
३. शान्ति साधक

छोटी-छोटी बातों में उलझने वाला व्यक्ति जीवन में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। जो बड़ा काम करना चाहते हैं उन्हें अनुकूल-प्रतिकूल सब प्रकार की स्थितियों से ऊपर उठना होगा। इधर-इधर की बातों में रहने वाला व्यक्ति साहित्य लेखन, शोध, वक्तृत्व, संपादन आदि कोई भी कार्य करने में सफल नहीं होता। प्रतिशोध की भावना के कारण दूसरे का हित नहीं साध सकता। अपनी चेतना का ऊर्ध्वारोहण नहीं कर सकता।

चेतना के ऊर्ध्वारोहण के लिए सुमन, मुक्त और शान्ति साधक का होना अनिवार्य है। इन सबके होने पर व्यक्ति ऊर्ध्वमुखी बन सकता है, विहंगम बन सकता है। जर्मनी में एक भारतीय योग साधक रहता है। एक बार वे गुरुदेव के दर्शनार्थ आए और बोले—मैं कहां हूँ? मेरी चेतना कहां है?

हर व्यक्ति को यह देखना आवश्यक है मैं कौन हूँ? कहां हूँ? मेरी चेतना कहां काम कर रही है?

यदि चेतना नाभि के आस-पास काम कर रही है तो पदार्थ के प्रति आकर्षण बढ़ेगा, आसक्ति बढ़ेगी।

साधना और सिद्धि—● ११० ●

यदि चेतना आनंदकेन्द्र के आस-पास काम कर रही है तो आन्तरिक आनन्द (आत्मानन्द) के प्रति आकर्षण बढ़ेगा, आसक्ति कम होगी।

यदि चेतना विशुद्धिकेन्द्र के आस-पास काम कर रही है तो वृत्तियों का परिष्कार होगा।

यदि चेतना दर्शनकेन्द्र के आस-पास काम कर रही है तो चेतना विहंगम हो गई, उस ऊर्ध्वारोहण हो गया।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी चेतना को विहंगम बनाना चाहिए, आकाशगामी बनाना चाहिए।

व्यक्ति जितना पृथ्वी के पास रहेगा उतना ही पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसे प्रभावित करेगा। जैसे-जैसे हम गुरुत्वाकर्षण से ऊपर उठेंगे, हमारी स्वतंत्रता विकसित होगी। इसलिए साधक गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं। क्रोध, अहंकार और प्रतिबद्धता का जो गुरुत्वाकर्षण है उससे ऊपर उठें और अपनी चेतना को विहंगम बना दें। ऐसे लोगों को दान लेने का अधिकार है, वे दूसरों द्वारा प्रदत्त भोजन ले सकते हैं। सामान्यतः दान लेने का अधिकार किसी को नहीं होता। दान लेने की भी अपनी अर्हता होती है। प्राचीन काल में विद्वान लोग दान लेते थे। वह पवित्र कार्य समझा जाता था। देने वाला भी धन्यता का अनुभव करता था। ऋषि दान लेते थे। राजा दान देते थे।

ऋषियों में दान लेने की अर्हता है। वे समाज के लिए बहुत कर रहे हैं। उनका जीवन चलाना समाज का काम है। एक सुंदर अर्हता का विश्लेषण किया गया है। चेतना को ऊपर उठने के बाद की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए ऊर्ध्वचेता व्यक्तियों की अपेक्षा होती है। उन ऊर्ध्व प्रचेता व्यक्तियों का वर्णन इस पद्य में बहुत सुन्दर मिलता है—

**एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।**

**विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥**

इस आधार पर हम प्रयत्न करें सुमन बनने का, मुक्त बनने का और शान्ति साधक बनने का और अपनी चेतना को विहंगम करने का।

## त्याग की चेतना

धर्म ने सबसे ज्यादा बल इस बात पर दिया कि चेतना को ऐसा बनाओ कि वह स्वतंत्रता से काम करे। अपने छंद से, अपनी इच्छा से काम करे। स्वच्छन्द का अर्थ बुरा नहीं है। दूसरे अर्थ में भी स्वच्छंद शब्द का प्रयोग होता है। अपनी इच्छा से, अपनी समग्र चेतना से जो पदार्थ के भोग को छोड़ता है, वह त्यागी है।

प्रश्न उपस्थित होता है त्याज्य क्या है? छोड़ने योग्य क्या है? दसवैकालिक सूत्र में त्याज्य वस्तुओं की सूची प्रस्तुत की है—

### वत्थगंधमलंकारो, इत्थीओ सयणाणि य ।

वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि सब त्याज्य वस्तुएं हैं।

प्रस्तुत गाथा में सबसे पहले त्याज्य बताया है वस्त्र को। किन्तु उससे पहले त्याज्य है शरीर। शरीर के बाद दूसरा स्थान है वस्त्र का। वस्त्र शरीर से हमेशा चिपका रहता है। इतनी निकटता से शरीर के पास कोई नहीं रहता। सोने के समय गहनों को उतार कर रख देता है, चश्में को भी उतार देता है, अन्य उपकरणों को भी अपने से अलग कर देता है। किन्तु कपड़ा तो चौबीस घण्टों का साथी है, वह कभी अलग नहीं होता, हर समय साथ रहता है। अनुभव करें—मैं अलग हूँ, कपड़ा अलग है। गीता में उदाहरण दिया गया है—जैसे पुराने कपड़े को छोड़कर आदमी नया कपड़ा पहनता है वैसे ही पुराने शरीर को छोड़कर आत्मा नया शरीर धारण कर लेती है। वस्त्र पदार्थ है और मैं चेतन हूँ—यह अनुभूति बनी रहे। सूत्रकार ने सर्वप्रथम वस्त्र का उल्लेख कर एक नया प्रस्थान किया है।

शरीर और वस्त्र के बाद त्याज्य है गंध। यह भी उद्दीपक होता है। योग के गूढ़ रहस्यों की व्याख्या में गंध को बहुत उद्दीपक बतलाया गया है। कामुक सामग्री में गंध का बहुत बड़ा स्थान है। पौषध की आराधना में गंध और अलंकार का प्रत्याख्यान किया जाता है।

साधना और सिद्धि—● ११२ ●

पुष्प की गंध हमारे शरीर तंत्र को प्रभावित करती है। इसी आधार पर चिकित्सा भी चलती है। फौजी के हाथ में पिस्तौल थी। उसको पूछा—पिस्तौल क्यों रखते हो? उसने कहा—किसी को मारने के लिए नहीं, सुरक्षा के लिए रखता हूँ। इसको चलाने से बारूद की गैसे निकलती है। वह तीस-चालीस कदम तक फैलती है। इससे प्रभावित होकर कोई भी व्यक्ति आक्रमण नहीं कर सकता अपितु मूर्च्छित होकर गिर जाता है। दस-बीस मिनट अथवा आधा घण्टा मूर्च्छित रहता है, होश आने पर उठ जाता है। चूर्ण साहित्य में भी ऐसा प्रसंग आता है। धूप किया। उसमें विषैला पदार्थ मिला दिया। कमरे में जितने लोग बैठे हैं वे सब धूप जलने की गंध के साथ मूर्च्छित हो गए। जैसे सूक्ष्म प्रकम्पन व्यक्ति को प्रभावित करते हैं वैसे ही गंध के प्रकम्पन भी उसको बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। वे प्रकम्पन बीमारी को बढ़ा भी सकते हैं और घटा भी सकते हैं।

अगरबत्ती से वातावरण सुगंधमय बन जाता है। इसलिए मंदिरों में भी उसका उपयोग किया जाता है। बहुत बार हमारे सामने प्रश्न आता है—देवता मनुष्य लोक में क्यों नहीं आते? देवताओं को पांच सौ योजन पहले ही मनुष्य लोक की दुर्गन्ध आने लगती है, उनका मन घुटने लग जाता है। इसलिए एक उपाय खोजा गया—देवताओं को बुलाना है तो वातावरण को सुगंधित करें जिससे देवों को यहां आने में कोई कठिनाईयां न हो। सुगंधित वातावरण का प्रभाव उन पर भी पड़ता है।

गंध से मनुष्य के मस्तिष्क की प्राचीनतम परत एनीमल ब्रेन (Animal brain) प्रभावित होती है। इसलिए साधना करने वाले व्यक्ति उसको काम उद्दीपन का एक अङ्ग मानते हैं।

अलंकार त्याज्य है। अलंकार, आभूषण पहनने की प्राचीन प्रथा रही है। आज भी हीरे, पत्थर आदि जवाहरात का आकर्षण कम नहीं है।

शय्या का भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कोमल शय्या भी काम को उद्दीपन देने वाली है। इसलिए साधक के लिए शय्या भी त्याज्य है।

स्त्री पुरुष का प्रतिपक्ष है। काम की उत्तेजना में वह निमित्त बनती है। इसलिए उसे त्याज्य कहा है। उसके प्रति भी साधक का एक परिष्कृत दृष्टिकोण होता है। उसे वासनापूर्ति का साधन न माना जाए। उसमें दिव्य-शक्ति का अनुभव करना बहुत उपयोगी होगा।

सूत्रकार ने पांच वस्तुओं का उल्लेख किया है। ये पांच वस्तुएं प्रतीक हैं। इनमें शेष सबका समावेश हो जाता है।

आचार्य पूज्यपाद ने त्याग की चेतना को जगाने के लिए एक आलम्बन दिया—गहरे में उतर कर पदार्थ की प्रकृति को देखो। किसी से संबंध स्थापित करो तो पहले स्वभाव को देखो। कोरा रंग-रूप देखा, स्वभाव नहीं देखा तो समस्याओं से

साधना और सिद्धि ————— ● ११३ ●



घिर जाओगे। पदार्थ की प्रकृति का विश्लेषण करते हुए आचार्य पूज्यपाद ने ठीक कहा है—

**आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान् ।**

**अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥**

पदार्थ की प्रकृति का पहला परिणाम है ताप। व्यक्ति किसी चीज की प्राप्ति के लिए कल्पना करता है। वह यदि नहीं मिलती है तो मन में संताप होता है, तनाव पैदा होता है। कल्पित वस्तु के मिल जाने पर उपभोग की अतृप्ति बढ़ जाती है। जब तक किसी खाद्य वस्तु का उपभोग नहीं किया जाता तब तक विचार रहता है कि वह चीज नहीं खाई। खाने से अतृप्ति होती है। खाने की भावना दूसरे और तीसरे दिन भी बनी रहती है। एक व्यक्ति आम खाने के बारे में सोचता है, उससे अतृप्ति बढ़ती है और अंत में उसको छोड़ना भी कठिन हो जाता है। तीनों बातों पर ध्यान देना जरूरी है—प्रारंभ में ताप या मानसिक तनाव, फिर अतृप्ति और अंत में छोड़ना दुष्कर हो जाता है। जिस पदार्थ का कभी भोग नहीं किया उसे छोड़ना सहज है। एक बार उपभोग कर लेने के बाद उसका परित्याग करना कठिन होता है।

दोनों बातें हमारे सामने रहें—

१. चेतना को स्वतंत्र बनाना है, उसके लिए आलम्बन की आवश्यकता है।

२. निमित्तों ने चेतना को प्रभावित किया है। निमित्तों को त्याग कर ही उनको अप्रभावित किया जा सकता है।

आचार्य यशोविजयजी ने बहुत सुंदर कहा है—असद् विकल्प सद् विकल्प के द्वारा क्षीण किया जा सकता है। इस प्रकार हम अपनी चेतना को स्वतंत्र बनाने के लिए आलम्बन का प्रयोग करें। अनुष्ठान का एक ही लक्ष्य है कि हम पदार्थ से थोड़े-थोड़े दूर होकर चेतना की सन्निधि में जाने का यत्न करें।

## आवश्यक है चेतना का रूपान्तरण

स्वतन्त्रता और परतन्त्रता—इन दोनों का अपने-अपने स्थान पर मूल्य है। भौगोलिकता और राष्ट्रीयता की दृष्टि से कहा जाता है कि अमुक देश स्वतंत्र है, अमुक देश परतंत्र है। अध्यात्म और नीति के आचार्यों ने भी स्वतंत्र रहने की बात पर बल दिया है। मनुस्मृति में स्वतंत्रता और परतंत्रता के आधार पर सुख और दुःख की परिभाषा की गई है—

**सर्व परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम्।**

इस संदर्भ में आचार्य शय्यंभव द्वारा रचित दशवैकालिक का पद्य भी मननीय है—

**अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ।**

जो अच्छंद हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं, पदार्थ का भोग नहीं कर रहे हैं, कारावास में बंदी हैं, उन्हें कुछ नहीं मिल रहा है। क्या उसे हम त्यागी कहेंगे? पदार्थ के आधार पर त्याग की व्याख्या नहीं हो सकती। त्यागी की व्याख्या चेतना के आधार पर होती है। बहुत बार चेतना और पदार्थ को लेकर विवाद हो जाता है। मुख्य को गौण और गौण को मुख्य कर देते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से पराधीनता का मूल्य नहीं है, स्वाधीनता का मूल्य सर्वोच्च है। स्वाधीनता से पदार्थ को छोड़ना चेतना का रूपान्तरण है। विवशता से पदार्थ का त्याग करना चेतना का परिवर्तन नहीं है। जयनारायण गौड़ जब कमिश्नर थे तब आदिवासी क्षेत्रों की यात्रा की। उस समय वे एक विद्यालय में गए। एक बच्चे से पूछा—‘आज तुम उदास कैसे लग रहे हो?’ बच्चे ने कहा—‘आज मेरा बारा (turn) नहीं है। हम दो भाई हैं, गरीबी बहुत है। एक दिन उसको नाश्ता मिलता है, एक दिन मुझे। आज मेरा बारा नहीं है।’ छोटे बच्चे और रोज नाश्ता न मिले, कितना कठिन कार्य है। क्या इसको हम त्याग कहेंगे? यह त्याग की चेतना नहीं है। चेतना का रूपान्तरण नहीं है।

साधना और सिद्धि

● ११५ ●

धार्मिक दृष्टि से त्याग उसको कहते हैं जिसमें चेतना बदल जाए। बहुत लोग एक दिन, दो दिन, तीस दिन और साठ दिन कुछ भी नहीं खाते। यह कैसे हो सकता है? चेतना का रूपान्तरण होने से यह सब संभव हो सकता है। चेतना का परिवर्तन होने पर न खाना भी व्यक्ति को हितकारी लगता है। डॉक्टर सलाह नहीं देंगे कि दो दिन मत खाओ। उनके अनुसार न खाने से शरीर की बहुत अधिक हानि होती है। डॉक्टर कभी भी नहीं सोच सकता कि चालीस दिन तक आदमी खाए बिना रह सकता है। उनके सिद्धांत में यह बात मान्य नहीं हो सकती। एक बहन भी साधनाश्री, रामलालजी गोलछा की पुत्री और हुलास गोलछा की बहन। वह बहिन लगभग पांच वर्ष से केवल छत्रे के पानी पर जीवित रही। डॉक्टर ने कहा—हमारे मेडिकल साइंस के अनुसार तो ऐसा नहीं हो सकता। जिसको भोजन में पूरे तत्त्व नहीं मिले, केवल छत्रे का पानी मिले, वह लम्बे समय तक जीवित रहे, संभव नहीं लगता। साधनाश्री अपने घर के कमरे में अकेली रही। दूसरों की सेवा नहीं ली। यह मनोबल कैसे बढ़ा? इतना संयम कैसे हुआ? यह मनोबल चेतना के रूपान्तरण से उपजा। चेतना में इतनी शक्ति है कि वह रूपान्तरण कर सकती है।

हमारी चेतना में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत आनन्द है। आत्मा में अनंत शक्ति की विद्यमानता के कारण आत्मा से, चेतना से शक्ति उपजती है। मनोबल के कारण भीतर से ऊर्जा आ रही है, शक्ति आ रही है। बहुत अधिक पदार्थ उपलब्ध हो रहे हैं किन्तु चेतना में परिवर्तन हो जाने पर त्याग की बात सहज हो जाती है। सब कुछ सुलभ होने पर भी न खाना, न पीना, न ओढ़ना और संयम की चेतना का विकास आश्चर्य का विषय नहीं होगा।

हमने बहुत सम्पन्न लोगों को देखा है जो संयम और सादगी का जीवन जीते हैं। श्रीचन्दजी रामपुरिया को कोई देखे तो ऐसा लगेगा—कोई सामान्य आदमी है। साधारण कपड़े पहनते हैं। क्यों? क्या वे सम्पन्न नहीं हैं? सम्पन्न होने पर भी साधारण वेशभूषा में रहना चेतना के रूपान्तरण का प्रतीक है। जब चेतना का परिवर्तन होता है तो पदार्थ का भार कम होता चला जाता है। वह आदमी पदार्थ के प्रति ज्यादा जागरूक रहता है। जब तक चेतना का रूपान्तरण नहीं होता तब तक व्यक्ति पदार्थ के माध्यम से अपने आपको सुन्दर दिखाना चाहता है। जो शरीर को पुष्ट करना चाहता है उसका पदार्थ से मोह नहीं छूटता।

हमारी चेतना के दो रूप बन गए—

१. आत्म प्रतिष्ठित चेतना
२. पदार्थ प्रतिष्ठित चेतना

मनोविज्ञान की भाषा में जो सब्जेक्ट पर आ गया, वह अपने आप पर केन्द्रित हो गया। यदि हम धर्म के द्वारा चेतना का रूपान्तरण न कर सकें, चेतना को

साधना और सिद्धि—● ११६ ●

बदल न सकें तो धर्म की साधना का अर्थ कम हो जाता है। धर्म की चेतना पदार्थनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ न रहे, वह स्वनिष्ठ रहे। यह बहुत कठिन कार्य है।

नाथ सम्प्रदाय के दो प्रसिद्ध साधक हुए हैं—मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ। मत्स्येन्द्रनाथ गुरु थे और गोरखनाथ शिष्य। एक दिन दोनों कहीं जा रहे थे। रास्ते में जंगल आ गया। मत्स्येन्द्रनाथ के पास एक झोला था। वे बार-बार उसको देखते थे। गोरखनाथ ने सोचा—क्या बात है, गुरुजी का ध्यान बार-बार झोले पर क्यों जा रहा है? मत्स्येन्द्रनाथ खाते-पीते, आते-जाते, उठते-बैठते झोले को ही संभालते रहते।

एक दिन गुरु और शिष्य जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठे थे। मत्स्येन्द्रनाथ प्रयोजनवश बाहर गए। गोरखनाथ को मौका मिल गया। झोले को खोलकर देखा। उसमें सोने की ईंट थी। उसने सोचा—गुरुजी का ध्यान तो इस सोने में अटका हुआ है। उसने सोने की अन्त्येष्टि कर दी।

गुरुजी बाहर से लौटे। झोले को उठाया। झोला तो एकदम हल्का हो गया। गोरखनाथ ने कहा—‘गुरुदेव! क्यों देख रहे हैं? इसमें जो भय था वह मैंने समाप्त कर दिया। इसमें जो सोने की ईंट थी मैंने कुएं में डाल दी।’ यह सुनते ही गुरु को गुस्सा आ गया। उसने गोरखनाथ को पीटना शुरू किया। शरीर में पसीना आ गया। उसे शिला पर पछाड़ा, पसीने की बूंदें टपकने लगीं, वे सारी बूंदें सोने की बन गईं, सोने की एक शिला निर्मित हो गई।

गोरखनाथ बोले—‘गुरुदेव! हमारे पसीने का सोना बनता है फिर आपको सोने का इतना आकर्षण?’ एक झटके में ही चेतना बदल गई। फिर बोले—अब यह कभी नहीं होगा। चेतना का रूपान्तरण हुए बिना योगी होने पर भी सोने का आकर्षण किसी कोने में रह जाता है। हमारी चेतना में चिरकाल से इतने संस्कार जमे हुए हैं कि वह पदार्थ को छोड़ना नहीं चाहती। साधना के द्वारा, धर्म के द्वारा चेतना का रूपान्तरण हो सकता है।

दशवैकालिक सूत्र में ठीक कहा गया है—

**जे य कंते पिए भोए, लब्धे विपिट्टिकुव्वई ।**

**साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥**

कान्त और प्रिय ये दो शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं। कान्त और प्रिय कमनीय हैं, वांछा करने योग्य हैं। कमनीय का अर्थ है जिसके देखते ही मन में इच्छा पैदा होती है। पहले इच्छा पैदा होती है फिर प्रीति पैदा होती है। जागरूक साधक कांत और प्रिय भोगों को भी स्थूलभद्र की तरह पीठ दिखा देता है। जो स्वाधीन होकर भोगों का त्याग करता है, वह त्याग कहलाता है।

त्याग की परम्परा अध्यात्म की परंपरा है। अध्यात्म के क्षेत्र में छोड़ने की बात पर बल दिया जाता है। आजकल जिन लोगों ने समाज का गहराई से अध्ययन

किया है वे अनुभव करते हैं कि ज्यादा संग्रह करना समस्याओं को निमन्त्रण देना है। अमेरिका में एक संस्कृति का जन्म हुआ है—वस्तु को काम में लो और फेंक दो (Use and throw away)। घर में जो भी आया उसको काम में लिया, उपयोगिता समाप्त हुई और उसे फेंक दो। आज से दो दशक पूर्व इंजेक्शन लगाते थे। लगाने से पूर्व उसको उबालते थे। आज उसे उबालने की जरूरत नहीं है। आज डिस्पोजल इंजेक्शन आ गए। इंजेक्शन लगाया और फेंक दिया। यह विचार सामाजिक सुविधा की दृष्टि से पनप रहा है। चेतना के रूपान्तरण का भी यह एक प्रयोग हो सकता है।

हम चेतना का जितना रूपान्तरण करेंगे, चेतना को जितनी स्वनिष्ठ बनाएंगे, हमारी वस्तुनिष्ठता दूर होगी। चेतना में नया उन्मेष आएगा। इसलिए बहुत सुन्दर लिखा है—स्वाधीनता से भोगों को वही छोड़ सकता है जिसकी चेतना बदल जाती है। अनुष्ठान का यही प्रयोजन है कि हमारी चेतना का रूपान्तरण हो, चेतना बदले। चेतना वस्तु से चिपकी हुई न रहे, वह स्वनिष्ठ बन जाए।

## व्यक्तित्व निर्माण का प्रयोग : मंगल भावना

वर्ष के तीन सौ साठ या तीन सौ पैंसठ दिनों में कुछ दिन विकिरणों (radiations) की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। उनमें साधना के विशेष प्रयोग किए जाते हैं। आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने के लिए कुछ प्रयोग बड़े लाभदायी होते हैं। मंगल भावना का प्रयोग व्यक्तित्व निर्माण के लिए आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है—**श्री सम्पन्नोऽहं स्याम्**, मैं भी सम्पन्न बनूँ। श्री का अर्थ लक्ष्मी है जिसकी हर सामाजिक प्राणी को अपेक्षा रहती है। श्री का दूसरा अर्थ शोभा है, सम्मान और प्रतिष्ठा है। इसकी भी हर सामाजिक प्राणी को अपेक्षा रहती है। श्री का तीसरा अर्थ आभा है। इसकी अपेक्षा साधु-संतों को भी रहती है। प्रत्येक साधु चाहता है कि मेरा आभामंडल पवित्र बने, शक्तिशाली बने। जिसका आभामण्डल पवित्र होता है उसके पास जाने से शान्ति की अनुभूति होती है, सहज आकर्षण होता है। हमारी पहली मंगल भावना है श्री सम्पन्नोऽहं स्याम्। हम जैसे संकल्प करते हैं उसी अनुरूप बन जाते हैं। संकल्पजा सिद्धि—संकल्प से सिद्धि होती है। आध्यात्मिक विकास के लिए संकल्प करें—मैं श्री सम्पन्न बनूँ और फिर उसी अनुरूप परिणति हो जाएगी।

दूसरा संकल्प करें—**ही सम्पन्नोऽहं स्याम्**—ही सम्पन्न बनूँ। श्री की तरह ही भी बीज मंत्र है। मंत्र शास्त्र में ही शक्ति का बीज है। प्रायः सभी मंत्रों में ही का प्रयोग किया जाता है। यह महाशक्ति है, शक्ति का बीज है। ही का एक अर्थ है लज्जा। लज्जा बहुत आवश्यक तत्त्व है। दो शब्द बहुत प्रचलित हैं—लज्जा और निर्लज्ज। कोई अनैतिक काम करता है तब कहते हैं वह तो निर्लज्ज हो गया। निर्लज्ज होने के बाद तो सब कुछ छूट है जो चाहे सो करो। लज्जा का दूसरा अर्थ है—आत्मानुशासन। जिस व्यक्ति के पास आत्मानुशासन की क्षमता है वह आत्मनियंत्रण कर सकता है, अपने विचारों पर, भावों पर कंट्रोल कर सकता है।

तीसरा संकल्प—**धी सम्पन्नोऽहं स्याम्**—मैं बुद्धि सम्पन्न बनूँ। आज बुद्धि का विकास बहुत जरूरी है और वह पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। श्री, ही और धी पर शिक्षा की दृष्टि से विचार करें। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में 'श्री' से तात्पर्य है धनार्जन करना। उसके लिए आज का व्यक्ति बहुत सचेष्ट है। वह उसी दिशा में आगे बढ़ने

साधना और सिद्धि ————— ● ११९ ●

का प्रयत्न करता है जहां से अधिक धन अर्जित कर सके। सामाजिक प्राणी के लिए यह कोई बुरी बात नहीं है। शैक्षणिक दृष्टि से धी का विकास, बुद्धि का विकास भी हो रहा है। श्री और धी के मध्य है ही। ही—आत्मानुशासन का विकास नहीं हो रहा है। व्यक्ति अपने भावों और विचारों पर नियंत्रण नहीं कर रहा है। इसलिए शिक्षा भी गड़बड़ा गई है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में श्री और धी के मध्य ही का विकास होना बहुत जरूरी है। ये तीनों तत्त्व एक साथ हो तो शिक्षा बहुत अच्छी बन सकती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने ही को छोड़ दिया इसलिए आगे सामने प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। यदि आत्मानुशासन की चेतना को जागृत करने का लक्ष्य बनाए तो निश्चित रूप से परिवर्तन घटित होगा।

चौथा संकल्प—‘धृति सम्पन्नोऽहं स्याम्’—मैं धृति सम्पन्न बनूँ। वर्तमान की परिस्थितियों में व्यक्ति अधीर बन गया। धैर्य की चेतना लुप्त-सी हो रही है। आज का व्यक्ति प्रतीक्षा नहीं कर सकता। तत्काल समस्या का समाधान चाहता है। तत्काल बीमारी का इलाज चाहता है। बुखार हो गई। तुरंत डॉक्टर को बुलाओ। आज से छह दशक पूर्व पूज्य कालूगणी कहा करते थे, ज्वर सामान्य है तो लंघन करो, तीन दिन के बाद स्वतः समाप्त हो जाएगा। ‘ज्वरादौ लंघनं श्रेयः’ ज्वर आदि में लंघन श्रेय है। आयुर्वेद का भी यही सूत्र है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार डॉक्टर बुलाओ, एण्टीबायोटिक लो, बुखार उतारो। आयुर्वेदीय पद्धति से ज्वर समाप्त करने की धृति नहीं है। धृति के बिना सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। चरक संहिता में धृति का अर्थ है ‘मनोनियामिका धृतिः’ मन का नियमन करने वाली शक्ति है—धृति।

टॉलस्टाय से युवक ने पूछा—‘सफलता का रहस्य क्या है?’

टॉलस्टाय—‘धैर्य।’

युवक—‘कब तक रखूँ? क्या धैर्य रखने से चलनी में पानी टिक जाएगा?’

टॉलस्टाय—‘पानी बर्फ न बन जाए तब तक धैर्य रखो। पानी चलनी में टिक जाएगा।’

धैर्य बहुत सारी समस्याओं का समाधान करता है। तात्कालिकता, आकस्मिकता और उतावलेपन में कई बातें बिगड़ जाती हैं। जर्मनी में मौत आदि के जितने भी केस आते हैं उन्हें तत्काल नहीं लिया जाता। दो-तीन घंटे तक बैठे रहो बाद में केस के लिए अर्जी प्रस्तुत करो। कुछ घण्टों के बाद दिमाग ठंडा हो जाता है। १०० में से ७५ आदमी बिना केस किए ही चले जाते हैं। गुरजिएफ रूस के बहुत बड़े साधक हुए हैं। उनके पिता अन्तिम सांस गिन रहे थे। गुरजिएफ ने पिता से अंतिम शिक्षा देने के लिए कहा। पिता ने कहा—मेरी यही शिक्षा है कि गुस्सा आए तो २४ घण्टे तक गुस्सा मत करो। क्या २४ घण्टे के बाद गुस्सा करेगा? २४ घण्टा

साधना और सिद्धि—● १२० ●



शान्त रह जाए फिर गुस्सा नहीं कर पाएगा। सोचो, समझो, मनन करो। कम से कम २४ घण्टा प्रतीक्षा करो। बाद में करना हो तो कुछ मत सोचो।

पांचवां संकल्प—**शक्ति सम्पन्नोऽहं स्याम्**— मैं शक्ति सम्पन्न बनूँ। शक्ति का विकास बहुत आवश्यक है। कोई आदमी कायर बने, कमजोर बने, अच्छा नहीं है। कुछ लोग कहते हैं अहिंसा व्यक्ति को कायर बनाती है। अगर अहिंसा कायर बनाएगी तो शूरवीर बनाने वाली दुनिया में कोई ताकत नहीं रहेगी। अहिंसा का अर्थ है अभय। जहां भय नहीं है वहां कायरता कहां से आएगी? हम शक्तिशाली बनें। अपनी शक्ति का विकास करें। पूज्य गुरुदेव जयपुर चतुर्मास कर रहे थे। दीक्षा को लेकर बहुत विरोध हुआ। पूरा नगर जैसे विरोध में खड़ा हो गया। उस समय हीरालाल शास्त्री की सरकार थी, वह भी विरोध में हो गई। उसका मुख्य पत्र था लोकवाणी। वह भी विरोध में निकलता था। उस प्रसंग में बहुत से पण्डितों को बाहर से बुलाया गया। पण्डित सुखलालजी जैनदर्शन के प्रसिद्ध विद्वान थे। अहमदाबाद से आए। उन्होंने एक लेख लिखा। उसमें काफी कटाक्षपूर्ण बातें थीं। गुरुदेव ने वह लेख पढ़ा। मुझे बुलाया और कहा—‘हमें क्या करना है। इस पर एक लेख लिखना चाहिए।’ मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की—‘आपकी आज्ञा हो तो लेख लिख दूंगा। पर मुझे लगता है अभी हमें अपनी शक्ति का विकास करना चाहिए। अपनी शक्ति का विकास होगा तो सारी स्थितियां बदल जाएगी।’ गुरुदेव मेरे निवेदन पर सहमत हो गए। हमने शक्ति-विकास की ओर ध्यान केन्द्रित किया। परिणाम यह हुआ कि जो घोर विरोधी थे वे प्रशंसक बन गए। पण्डित सुखलालजी ने कहा—‘जैन समाज में कोई काम करने वाता है तो आचार्य तुलसी है। इस प्रशंसा को पाने के लिए हमने कभी भी किसी को खुश करने का प्रयत्न नहीं किया। हमने एक ही सूत्र बनाया—अपनी शक्ति का संवर्धन करो, सब कुछ सही होगा। इस विधेयात्मक सोच ने हमारी शक्ति को बढ़ाया और हम आकर्षण के केन्द्र बन गए।’

छठा संकल्प—**‘शान्ति संपन्नोऽहं स्याम्’** मैं शान्ति से सम्पन्न बनूँ, शान्ति का विकास करूँ। शक्ति और शान्ति का प्रदर्शन मत करो। मन की शान्ति, भावों की शान्ति बनाए रखने का प्रयत्न करो। शान्तिमय वातावरण का निर्माण करो, दिमाग को शान्त रखो। जिसका दिमाग शान्त रहता है उसका मन भी शान्त रहता है। उस व्यक्ति का जीना वास्तव में जीना है। हमने बहुत पैसे वाले लोगों को देखा जो दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। क्या शान्ति धन से आती है? क्या शान्ति सत्ता से आती है? क्या शान्ति आकाश से उतरती है या पाताल से आती है? शान्ति हमारे मन की उपज है। मन संतुलित होता है तो परिस्थिति को हंसते-हंसते झेल लेते हैं और मन संतुलित नहीं है, अशान्ति दिमाग में उत्पन्न होती रहती है, उसकी फसल कभी काटी नहीं जाती। इसलिए शान्ति का विकास हमारे लिए बहुत जरूरी है।

पुराने जमाने की बात है। गुजरात में मुस्लिम शासक थे मोहम्मद बेगड़ा। वे समन्वयवादी थे। हिन्दुस्तान में विद्वानों का सम्मान होता था। एक विद्वान थे लघु

व्यास। वे प्रतिभासम्पन्न थे इसलिए उनका सम्मान अधिक था। लोगों के मन में उसके प्रति ईर्ष्या हो गई। उन्होंने बादशाह को भड़काया। बादशाह ने व्यासजी को बुलाया और कहा—‘मैं आपका बहुत सम्मान करता हूँ पर अभी आपका बहुत विरोध हो रहा है। एक बार आप अपने स्थान पर चले जाएं।’ बादशाह के आदेशानुसार विद्वान ने प्रस्थान कर दिया किन्तु उनके बिना बादशाह का मन नहीं लग रहा था। बादशाह ने एक दिन सभा में कहा—‘मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। सबका बीज क्या है? सबका रस क्या है? कृतज्ञ कौन है?’ सारी सभा में चुप्पी छा गई। कोई उत्तर नहीं दे सका। बादशाह ने पूछा—‘उत्तर पाने के लिए सभा में किसको बुलाऊं?’ चारों ओर से एक ही स्वर आया—लघुव्यास को। व्यासजी को बुलाया गया। उन्होंने कहा—‘उत्तर आज नहीं कल दूंगा।’ सैकड़ों लोग उत्तर सुनने के लिए एकत्रित हो गए। बादशाह के सामने पानी की ग्लास थी, उसे उंडेलते हुए कहा—‘सबका बीज है पानी। पानी है तो सब कुछ है, पानी नहीं तो कुछ भी नहीं।’ बादशाह ने कहा—‘बहुत अच्छा उत्तर है।’ दूसरे प्रश्न के उत्तर में व्यासजी ने एक नमक की डिबिया निकाली और कहा—‘नमक सबका रस है। नमक है तो भोजन सरस है और नहीं तो फीका है।’ उत्तर सुनकर सारी सभा प्रसन्न हो गई। व्यासजी अपने साथ कुत्ता लाए थे। उसे सबके सामने खड़ा कर दिया। तीसरे प्रश्न के उत्तर में व्यासजी ने कहा—‘कुत्ते से बड़ा दुनिया में कोई कृतज्ञ नहीं होता। कुत्ता सबसे अधिक स्वामीभक्त होता है।’ व्यासजी अपने साथ एक आदमी लाए थे और उसे दिखाते हुए कहा—‘आदमी सबसे अधिक कृतघ्न होता है। यह कृतघ्नता अशान्त मस्तिष्क की उपज है। शान्त और सन्तुलित दिमाग वाला व्यक्ति कभी ऐसा नहीं कर सकता है।’

सातवां संकल्प—‘**नंदी सम्पन्नोऽहं स्याम्**’ मैं आनन्द सम्पन्न बनूँ। प्रत्येक व्यक्ति आनन्द का जीवन जीए। मनुष्य का इतना दुर्लभ जीवन मिला है। क्या वह दुःखी होकर जीने के लिए मिला है? जीवन में समस्याएं आती रहेंगी। किन्तु हम समस्या को दुःख नहीं बनाएं।

आठवां संकल्प—‘**तेजः सम्पन्नोऽहं स्याम्**’ मैं तेजस्वी बनूँ। जीवन के प्रत्येक क्षण में ज्योतिर्मय बनने का प्रयत्न करें।

नौवां संकल्प—‘**शुक्लः सम्पन्नोऽहं स्याम्**’ मैं निर्मल बनूँ। मन की पवित्रता उत्तरोत्तर बढ़े। चेहरे पर मलिनता न आए। हमारी धवलिमा बनी रहे। दुर्गा के उपासक दुर्गा के नौ मंत्रों का अनुष्ठान करते हैं। अर्हत् के उपासक अर्हत्की इन नौ शक्तियों की आराधना करते हैं।

अनुष्ठान के नौ दिनों में हम इन शक्तियों का विकास करें। हम शक्तिशाली जीवन जीएं। हमारी शक्ति का विकास हो पर वह विकास दूसरों का अनिष्ट करने वाला न हो। हमारी शक्ति का विकास दूसरों की भलाई के लिए और अपनी भलाई के लिए हो।

साधना और सिद्धि—● १२२ ●

## व्यक्तित्व विकास के सूत्र

आपने प्रार्थना की, सिद्ध! मुझे सिद्धि दें। इसका मतलब है कि आप सिद्धि चाहते हैं। हर कोई व्यक्ति सिद्धि चाहता है। और तो क्या? रसोई बनाने वाली महिला भी जब गैस या चूल्हे के पास बैठती है, तो सिद्धि की प्रार्थना करती है कि सिद्धि मिले। चावल सीझ जाए, खिचड़ी सीझ जाए। इसका मतलब क्या है? चावल कच्चा न रहे। काम सिद्ध हो जाए, सब कुछ सिद्ध हो जाए।

संस्कृत में साधना के लिए और रसोई के लिए कौनसी धातु है? राधं साधं च संसिद्धौ। राध्यति और सिद्धयति—रांधना और सीझना। अमुक वस्तु रांध ली अथवा सीझ गई। हमें न चावल सिझाना है, न खिचड़ी पकानी है। हमें किसकी सिद्धि चाहिए? हमारी सिद्धि की कामना क्या है? हम क्या बनना चाहते हैं?

हमारा विषय है—व्यक्तित्व निर्माण। व्यक्तित्व निर्माण के लिए हमने जिस मंत्र का जप किया, उससे बढ़िया सूत्र कहा मिलेंगे।

**चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।**

**सागरवर गंधीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।**

सबसे पहली कामना है—निर्मलता सिद्ध हो, चित्त की पवित्रता बनी रहे, कलुषता और मलिनता न हो। पानी भी कलुष और गन्दा होता है। उसे कितना फिल्टर किया जाता है, कितने प्रकार से किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है शुद्ध पानी मिले, जिससे बीमारियां न बढ़ें। जिस व्यक्ति को चित्त की निर्मलता प्राप्त है उसे बीमारियां नहीं सताती। गन्दे पानी से बीमारियां बढ़ती हैं। गंदे पानी के कारण लोग बहुत बीमारियां भोगते हैं। हमने वैसा गंदा पानी देखा है। जब साधु गोचरी में पानी लाते तब फिटकरी से साफ करते। नीचे इतना कचरा जम जाता कि जिसका अनुमान ही नहीं होता। सिद्धि की कामना का एक लक्ष्य है कि हमारा चित्त निर्मल बने। इस बिन्दु पर हमारी निर्मलता पहुंच जाए कि हम सिद्ध बन जाएं। कैसी निर्मलता? चांद से भी अधिक निर्मलता। यह एक बहुत सुन्दर प्रयोग आचार्यों ने किया है या सहज हुआ है। निर्मलता में चन्द्रमा का स्थान प्रमुख है।

साधना और सिद्धि ————— ● १२३ ●

चन्द्रमा और मन का गहरा सम्बन्ध है। ज्योतिर्विद जातक की जन्म कुण्डली देखता है। उसके मन की स्थिति कैसी रहेगी? सबसे पहले चन्द्रमा देखते हैं। चन्द्रमा का स्थान क्या है? मन की निर्मलता और उच्चता कैसी रहेगी? चन्द्रमा उच्च का है तो सब ठीक है। यदि वह नीच का है तो कलुषता रहेगी? दूसरा भी कारण है कि पश्चिम रात्रि के चन्द्रमा की रश्मियों में कुछ विशेषता होती है। एक विशेष प्रकार का स्राव होता है। इधर चन्द्रमा की रश्मियों का स्राव उधर हमारे शरीर में भी मेलाटोनिन नामक रसायन का स्राव। वह मेलाटोनिन शान्ति के लिए उत्तरदायी है। नोंद अच्छी आती है तो समझ लो कि मेलाटोनिन का स्राव संतुलित नहीं हो रहा है। नोंद अच्छी नहीं आती तो समझ लो कि मेलाटोनिन का स्राव संतुलित हो रहा है। मेलाटोनिन के स्रावित होने पर चिड़चिड़ापन नहीं रहता। मन शान्त रहता है। कुछ दिनों पहले 'नूतन सवेरा' में एक लेख आया था मेलाटोनिन पर। मेलाटोनिन का हमारी मानसिक शान्ति, निर्मलता आदि-आदि में बहुत बड़ा योग है। उसका स्राव बहामुहूर्त में चार बजे से लेकर सूर्योदय से पहले-पहले होता है। उस समय चन्द्रमा की रश्मियां बहुत बढ़िया होती हैं। सरस्वती की स्तुति में कहा गया कि वह कैसी है? प्रभात के चन्द्रमा की रश्मियों जैसी। उस समय चन्द्रमा की रश्मियों का स्राव विशिष्ट प्रकार का होता है। बाल सूर्य की रश्मियां पुष्ट होती हैं। ताकत देती हैं। चन्द्रमा की रश्मियां निर्मलता देती हैं।

व्यक्तित्व विकास के लिए पहली कामना है निर्मलता। चन्द्रमा से अधिक मेरी निर्मलता सिद्ध हो। पहली प्रार्थना है मैं निर्मल बनूं। जैन दर्शन में प्रार्थना मान्य नहीं है। किन्तु ऐसी प्रार्थना मान्य है। प्रार्थना का अर्थ है मांगना। भौतिक या पौद्गलिक सुख-सुविधा की याचना करना वर्जित है। जैन शासन में उदात्त प्रार्थना विहित है। एक साधक सिद्ध से प्रार्थना करता है—प्रभो! मुझे निर्मलता मिले और चांद से ज्यादा निर्मलता मिले। यह निर्मलता हमें भावना से ही प्राप्त होती है।

निर्मलता का विकास करने के लिए ज्योति केन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान करें। फिर पूरे ललाट पर उसका अनुभव करें। धीरे-धीरे आपको महसूस होगा कि निर्मलता बढ़ रही है।

व्यक्तित्व विकास के लिए दूसरी कामना है तेजस्विता। तेजस्विता भी आवश्यक है। बुझी हुई आग पर हर कोई पैर रखकर चल सकता है। यदि राख प्रज्वलित है तो कोई भी उस पर पैर नहीं रखता।

दूसरी प्रार्थना है मैं तेजस्वी बनूं। वह तेजस्विता कैसे मिले? सूर्य से भी ज्यादा तेजस्विता मिले। प्रकाश भी मिले और तेजस्विता भी। न्यायशास्त्र में जहां प्रमाण का प्रसंग आता है वहां जैन आचार्यों ने विशेष प्रयोग किया है। ज्ञान सूर्य की तरह स्व पर प्रकाशक होता है। सूर्य स्व पर प्रकाशक होता है। वह स्वयं प्रकाशक है

साधना और सिद्धि—● १२४ ●

और पर प्रकाशक भी है। इस आधार पर न्याय का एक सूत्र भी बन गया कि जो स्व प्रकाशी नहीं है वह पर प्रकाशी नहीं हो सकता। यह एक मुनि पर भी लागू होता है कि जो भिक्षु, साधु स्वयं प्रकाशी नहीं है, वह पर प्रकाशी नहीं हो सकता, दूसरों का कल्याण नहीं कर सकता। जो अपना कल्याण करना नहीं जानता, वह दूसरों का कल्याण करे तो विडम्बना हो जायेगी। स्व पर प्रकाशी होना कितना महत्त्वपूर्ण तथ्य है। पर को प्रकाशी करने की भावना बहुत अच्छी है पर उससे पहले स्व प्रकाशी बनना जरूरी है।

दुनिया में जितने तेजस्वी पदार्थ हैं वे स्व प्रकाशी और पर प्रकाशी दोनों हैं। बिजली, मणि, रत्न आदि सभी स्वयं प्रकाशित हैं, दूसरे को भी प्रकाशित करते हैं। दूसरे को प्रकाशित करे और स्वयं अंधेरे में रहे, इसका महत्त्व नहीं है। महत्त्व है स्व प्रकाशकत्व का, स्वयं की तेजस्विता का। दर्शनकेन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान करने से तेजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

व्यक्तित्व विकास के लिए तीसरी कामना है गंभीरता। तीसरी प्रार्थना है मैं सागर से भी अधिक गंभीर बनूं। सागर को बहुत गंभीर माना गया है। वह वास्तव में गंभीर ही है इसीलिए उस पर जलपोत चलते हैं, बड़े-बड़े जहाज चलते हैं। गंभीर न हो तो यह कभी संभव नहीं हो सकता। समुद्र का पानी गहरा होता है इसलिए जलपोत आते हैं और चले जाते हैं। गंभीरता नहीं होती तो कोई जलपोत नहीं आ सकता। गंभीरता के बिना जीवन के सागर में भी सफलता का जलपोत नहीं चल सकता।

एक शिक्षक ने विद्यार्थी से पूछा—‘नदी के पानी और थाली के पानी में क्या फर्क है।’ विद्यार्थी ने उत्तर दिया—‘थाली के पानी पर चिड़िया बैठ सकती है। किन्तु नौका नहीं।’ नौका के लिए गहरा पानी चाहिए। जहां गहराई नहीं है, वहां सामुदायिक जीवन बड़ा जटिल बन जाता है। व्यक्तिगत जीवन में भी असफलता मिलती है। गहराई का एक और अर्थ है अपनी बात को पचाना सीखो। सब बातों को कहने के लिए सूचना केन्द्र मत बनो। इतना ही नहीं, गंभीरता का तात्पर्य है कि कोई घटना, स्थिति आए उसमें संतुलन को बनाए रखो। अपना आपा मत खोओ। ऐसी शान्त मुद्रा रखो कि पता ही नहीं चले कुछ हुआ है।

पूज्य डालगणी ने मंत्री मुनि को कड़ा उपालंभ दिया। उन्होंने शान्तभाव से स्वीकार कर लिया। तहत् (तथेति) के सिवाय नहीं बोले। कारण स्पष्ट था। वे बड़े गंभीर थे। गंभीर नहीं होते तो तत्काल कह देते कि मैंने तो कोई गलती नहीं की। आप मुझे व्यर्थ ही उपालंभ दे रहे हैं। गंभीर व्यक्ति हर घटना को पीना जानता है। बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं, वह उन्हें कभी उगलता नहीं है। जहर को भी पीना जानता है। यह गंभीरता है।

साधना और सिद्धि ————— ● १२५ ●

जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है गंभीरता का विकास। समुद्र से भी अधिक गंभीर। गंभीरता का विकास करने के लिए हमारे शरीर में कंठ का स्थान है। यह गंभीरता के विकास का स्थान है। 'णमो आयरियाणं' के बैंगनी रंग और पीले रंग का कंठ पर ध्यान करने से गंभीरता का विकास होता है।

व्यक्तित्व विकास के लिए चौथी कामना है आरोग्य। आरोग्य का होना बहुत महत्वपूर्ण है। इसको हम गौण नहीं कर सकते। चौथी प्रार्थना है आरोग्य। मन का, शरीर का, भाव का शुद्ध रहना आरोग्य है। अकारण बुरे विचार आते रहते हैं। यह आरोग्य नहीं है। यह रोग का लक्षण है। भीतर कोई रोग है इसलिए बुरे विचार, बुरी कल्पना आती है। मन अशान्त रहता है वह आरोग्य नहीं है। शरीर की गड़बड़ है, वह भी आरोग्य नहीं है। शरीर, मन और भाव की प्रसन्नता का नाम है—आरोग्य। आरोग्य की कामना की गई है। सिद्ध आरोग्य नहीं देते। उनको हम आरोग्य का निमित्त बनाते हैं, आरोग्य उपलब्ध हो जाता है। आसीन्द से एक भाई आया। उसने बताया—'साध्वीजी ने मुम्बई में रहने वाले कैंसर पीड़ित अमुक व्यक्ति को जप बताया था। उससे वह ठीक हो गया।' वह मंत्र था—'आरोग्य बोहिलाभं समाहिवर मुत्तमं दिंतु।' यह मंत्र शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक बीमारियों के लिए अचूक औषधि है। आचार्य हेमचन्द्र ने योग शास्त्र में एक श्लोक उद्धृत किया है—

**जपाजयेत् क्षयमरोचकमग्रिमांघ्रं  
कुष्ठोदरामकसनश्वसनादि रोगान्।  
प्राप्नोति चाप्रतिमवाग्महतीं महद्भ्यः  
पूजां परत्र च गतिं पुरुषोत्तमापताम्॥**

जप से क्षय, अरुचि, अग्रिमांघ्र, कुष्ठ, पेट, श्वास संबंधी बीमारियां नष्ट होती हैं। जप करने वाला अप्रतिम वाक्शक्ति को प्राप्त होता है। पूजनीयता और अनुत्तर पारलौकिक गति को प्राप्त होता है।

व्यक्तित्व विकास के लिए पांचवीं कामना है बोधि। मुझे बोधि मिले। बोधि से तात्पर्य ज्ञान (Knowledge) नहीं है, समझ (Understanding) है। व्यक्ति बहुत पढ़ा-लिखा नहीं है। फिर भी बहुत अनुभव की बात करता है। अन्तर्दृष्टि या समझ के कारण कुछ अनपढ़ लोग भी अच्छी बात करते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो पढ़े-लिखे हैं फिर भी उनमें समझ नहीं होती। बोधि का अपना एक अलग संस्थान है। इसलिए बार-बार कहा गया है 'बोधि जत्थ सुदुल्लहा'। बोधि दुर्लभ है। स्थानांग सूत्र में बोधि के तीन प्रकार बतलाए गए हैं—ज्ञान बोधि, दर्शन बोधि, चारित्र बोधि। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की चेतना का समाहार करने वाली शक्ति है—बोधि।

व्यक्तित्व विकास के लिए छठी कामना है—समाधि। जहां सारी उपाधियां समाप्त होने पर समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। इसको हम एक कार्यकारण माला के रूप में लें। समाधि की निष्पत्ति कब होती है? जीवन में निर्मलता है, तेजस्विता

साधना और सिद्धि—● १२६ ●

है, गंभीरता है, आरोग्य है और बोधि है तो समाधि स्वयं प्राप्त हो जाती है। निर्मलता, तेजस्विता आदि गुण नहीं हैं और समाधि चाहते हैं तो कभी भी सफलता नहीं मिलेगी।

जीवन में सबसे बड़ी उपलब्धि कोई है तो वह है समाधि। जो व्यक्ति समाधि में रहता है चाहे उसके पास कुछ भी नहीं है फिर भी दुनिया का सबसे ज्यादा सुखी आदमी है। जैसे गणना होती है सबसे बड़ा धनी कौन? जिनसे पास सबसे अधिक डॉलर का धन है वह दुनिया का सबसे बड़ा धनी आदमी है। देवताओं में सबसे बड़ा कौन? सर्वार्थसिद्धि के देवता सबसे ज्यादा सुखी होते हैं। सबसे ज्यादा सुखी मनुष्य कौन? जिसके पास समाधि है। जिसके पास समाधि नहीं है, वह सुखी नहीं है।

मैं अपने जीवन में निर्मलता का विकास करना चाहता हूँ। मैं अपने जीवन में तेजस्विता का विकास करना चाहता हूँ। मैं अपने जीवन में गंभीरता का विकास करना चाहता हूँ। मैं अपने जीवन में आरोग्य, बोधि और समाधि का विकास करना चाहता हूँ। इस कल्पना के साथ, भावना के साथ, समापत्ति, तादात्म्य और एकाग्रता हो तो निश्चित ही उसकी परिणति शुरू हो जायेगी और उसी अनुरूप व्यक्तित्व का निर्माण होगा।



## विकास अनंत चतुष्टयी का

हमारा लक्ष्य है आध्यात्मिक चेतना का जागरण। हमारे भीतर अनंत चतुष्टयी है—अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत शक्ति। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होने पर ज्ञान अनंत हो जाता है। दर्शन के आवरण का क्षय होने पर दर्शन अनंत हो जाता है। मोहनीय कर्म का क्षय होने पर आनंद अनंत हो जाता है। संसारी जीव मोह कर्म से बंधा हुआ है और उसका सुख अव्याबाध नहीं होता। बाधाएं आती रहती हैं। अभी सुख है और थोड़ी देर में दुःख हो जाता है। फिर सुख और थोड़ी देर बाद दुःख एक आदमी के जीवन में ऐसी स्थितियां अनेक बार आती हैं। कभी सुख और कभी दुःख। इसका कारण है बाधा की विद्यमानता। अंतराय का क्षय होने पर शक्ति अनंत हो जाती है।

हम व्यवहार में भी देखते हैं। कभी कोई सुखी हो जाता है और कभी दुःख हो जाता है। एक आदमी से पूछा—‘क्या तुमने कभी दुःख और सुख का एक साथ अनुभव किया है?’ ‘हां! मैंने अनुभव किया है।’ ‘कैसे किया?’ ‘घर में पाहुना आ गया। मुझे लगा कि आज तो इसको भोजन कराना पड़ेगा। कंजूस आदमी था, दुःखी हो गया। कहा—आइये, भोजन करिये। उसने कहा—मैं भोजन करके आया हूं। इतना सुनते ही उसे सुख हो गया।’ दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख, जीवन का एक क्रम है। इसको टाला नहीं जा सकता। अगर आदमी ध्यान दे तो न जाने कितनी बार ऐसा घटित होता है। एक संवाद मिलता है, सुखी बन जाता है। दूसरी घटना घटती है, दुःखी बन जाता है। यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। क्योंकि हमारा सुख अव्याबाध नहीं है। अव्याबाध में कभी बाधा नहीं आती। कोई भी परिस्थिति, कोई भी घटना, कोई भी संवाद, कोई भी समाचार आ जाए, कभी कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती। यह है अव्याबाध सुख। आत्मा के भीतर आनन्द है और वह अव्याबाध है। हमारे भीतर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द है, पर उसे प्रकट किए बिना काम नहीं हो सकता। कौन व्यक्ति कितना उसको प्रकट कर पाता है? कितने ज्ञान को प्रकट कर पाता है? कितने दर्शन को प्रकट कर पाता है? कितनी शक्ति को प्रकट कर पाता है? कितने आनन्द का आस्वादन कर सकता है? उस पर ही सारा निर्भर है। होना एक बात है और

साधना और सिद्धि—● १२८ ●

अभिव्यक्त होना दूसरी बात है। यह ट्यूब-लाइट लगी हुई है, कहीं बल्ब भी लगे हुए हैं। प्रकाश होता है, प्रकाश का माध्यम है करंट। किन्तु जब तक आपने स्विच ऑन नहीं किया, बटन नहीं दबाया, प्रकाश सामने नहीं आएगा। स्विच ऑन कर दिया तो पंखा चल रहा है। स्विच ऑफ कर दें, बंद हो जाएगा। सारी आराधना का, अनुष्ठान का यही तात्पर्य है कि हमारे साथ में वह ताकत आ जाए जिससे हम जब चाहें स्विच ऑन कर दें। यह प्रकट करने की शक्ति हमारे भीतर आ जाए।

मैंने कालूगणी को देखा, समय आने पर अपनी शक्ति को प्रकट कर देते। सुजानगढ़ चातुर्मास था वि. सं. १९९०। हजारीमलजी रामपुरिया के भवन में चातुर्मास। पता चला कि महाराज गंगासिंहजी दर्शन करने आ रहे हैं। कार में बैठे-बैठे दर्शन करेंगे, नीचे नहीं उतरेंगे। कालूगणी जहां विराजे थे, पास में खिड़की थी। शाम के वक्त आए। उन्होंने हाथ जोड़ कर वंदना की। कालूगणी को उसका पता नहीं चला। वे अपने ध्यान में लीन थे। बड़े-बड़े श्रावक साथ थे। उनको महसूस हुआ कि महाराज ने तो दर्शन किया और कालूगणी ने उनके अभिवादन को स्वीकार नहीं किया। महाराज यदि असंतुष्ट हो गए तो क्या होगा? उस समय महाराजाओं का प्रभाव था। बड़े-बड़े श्रावक घबरा गये। अब क्या करें? विचार-विमर्श के लिए मंत्री मुनि के पास गए। प्रहर रात आ गई फिर भी बात करते रहे। कालूगणी की प्रकृति थी कि जैसे ही प्रहर रात का समय होता, एक मिनट में आप शयन मुद्रा में हो जाते। यह उनके जीवन का नियमित क्रम था। कालूगणी लेट गए। बड़े-बड़े श्रावक चिन्तित हैं कि अब क्या होगा? दो-चार घंटे विमर्श चलता रहा। कालूगणी पास में ही थोड़ी दूर लेटे हुए थे। कालूगणी ने तत्काल कहा—‘मगललालजी स्वामी! क्या करते हो? क्या होगा? कोई चिन्ता मत करो। सो जाओ।’ ऐसा आत्मबल मैंने पहली बार देखा। ‘क्यों फालतू चिन्ता करते हो? राजा हैं तो अपने स्थान पर हैं, हम साधु हैं, राजा हमारा क्या करेंगे?’ उनका आत्मबल और मनोबल अभिव्यक्त हो रहा था।

मैंने गुरुदेव के जीवन में भी बहुत घटनाएं देखी हैं। किस प्रकार साहस और मनोबल से काम लेते थे। उनका मनोबल और आत्मबल विचित्र था। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों और समस्याओं के सामने कभी उन्होंने घुटने नहीं टेके। गुरुदेव और आचार्य भिक्षु के जीवन में जितने संघर्ष, जितनी समस्याएं, जितनी कठिनाइयां आईं, उतनी अन्य आचार्यों के सामने नहीं आईं। जो क्रान्तिकारी होता है, परिवर्तन करता है, वह समस्याओं को निमन्त्रण देता है। समस्याएं आईं पर कभी भी मनोबल कमजोर नहीं हुआ। यह आत्मशक्ति कहां से आई? यह शक्ति हमारे भीतर है। हम शक्ति का कितना उपयोग करना जानते हैं, कितना शक्ति को प्रकट करना जानते हैं। शक्ति को, ज्ञान को प्रकट करने का साधन है आराधना, अनुष्ठान। अनुष्ठान के द्वारा अपनी शक्ति का विकास कर सकते हैं। आचार्य हमेचन्द्र, आचार्य मलयगिरि और आचार्य अभयदेव—इन्होंने सरस्वती की आराधना की।

साधना और सिद्धि ————— ● १२९ ●

चौदह पूर्वों का ज्ञान ग्यारह अंगों से विशिष्ट है। चौदह पूर्वों के धारक मुनि चतुर्दशपूर्वी कहलाते थे। भगवान महावीर का निर्वाण हो गया। उसके बाद आचार्य बने सुधर्मा। उनके शिष्य थे जम्बू स्वामी। वे केवलज्ञानी थे। उनके बाद कोई केवली नहीं बना। शय्यंभव, यशोभद्र, प्रभव, संभूतविजय, भद्रबाहु और स्थूलभद्र—ये छः श्रुतकेवली हैं। श्रुतकेवली का अर्थ केवलज्ञानी नहीं है। चौदह पूर्वों को जानने वाला श्रुतकेवली होता है। चौदह पूर्वों में एक पूर्व है विद्याप्रवाद। इन सारे पूर्वों में मंत्रों की शिक्षा दी गई है और हमारे आचार्यों ने इनकी आराधना की। आगमों में आचार्य को विशेषज्ञ आज्ञा दी गई है कि वे मंत्र आराधना के लिए अकेले रह सकते हैं। इन तीनों आचार्यों ने मंत्र की साधना की और सरस्वती प्रगट हो गई। आचार्य मलयगिरि ने कहा—‘मैं आगमों की टीका लिखना चाहता हूँ। उसमें आपका सहयोग रहे।’ तथास्तु हो गया। आगमों की जितनी टीकाएं हुई हैं उनमें मलयगिरि की टीका बहुत ज्यादा चर्चित हुई है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा—‘मैं राजाओं को प्रतिबोध देना चाहता हूँ।’ उनके लिए भी तथास्तु हो गया। आचार्य अभयदेव को भी देवी ने टीका लिखने का वरदान दिया। तीनों के मनोवांछित कार्य सिद्ध हो गए।

आचार्य भिक्षु में शक्ति थी, तपस्या थी, आगम का स्वाध्याय था, ध्यान का बल था, आराधना का भी बल था। आराधना किए बिना शक्ति का विस्फोट नहीं होता, साधना की शक्ति का विकास नहीं होता। उनकी परम्परा के चतुर्थ आचार्य जयाचार्य थे। उनकी आराधना भी शक्तिशाली थी। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे प्रशासन से मुक्त रहे। व्यवस्था का काम अपने उत्तराधिकारी को सौंप दिया। अधिकांश समय साधना में व्यतीत करते। जयाचार्य के पास दो कर्णपिधान थे। कोलाहल के समय कानों में डाल लेते। इसीलिए आज तेरापंथ समाज में आचार्य भिक्षु के बाद जयाचार्य का ही नाम आता है। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ का प्रवर्तन किया और जयाचार्य ने व्यवस्था और अनुशासन का परिष्कार कर दिया। जब अष्टमाचार्य कालूगणी का स्वर्गवास हुआ तब उनके पुट्टे को देखा। उस में सरस्वती के मंत्रों के पत्रे कालूगणी के हाथ के लिखे हुये थे। संभव है कि उन्होंने सरस्वती मंत्रों की काफी साधना की थी। इसीलिए एक नहीं शायद दसों-बीसों मंत्र उनके हाथ के लिखे हुए उनके पुट्टे में थे। कालूगणी उस समय यदि ध्यान केन्द्रित नहीं करते, बीजों का वपन नहीं करते तो आज तेरापंथ में ज्ञान का विकास नहीं होता। कालूगणी ने ध्यान दिया—आने वाले युग में हमारा संघ कहाँ जाएगा ? विद्या का कितना विकास होगा ? गुरुदेव बहुत बात कहते—कालूगणी की सूझ अनूठी थी। उन्होंने उन ग्रंथों का चयन किया जिन ग्रंथों को स्वयं नहीं पढ़ा और चयन करके कह दिया—अमुक पढ़ना है, अमुक पढ़ना है। गुरुदेव को बहुत अधिक ग्रंथ कंठस्थ कराए। लगभग तीस हजार श्लोक कंठस्थ किये। हमारे धर्मसंघ में उन ग्रंथों को कंठस्थ करने वाले गुरुदेव तुलसी प्रथम मुनि थे। गुरुदेव ने कुछ ग्रंथ मुझे भी उपलब्ध करा दिये।

साधना और सिद्धि—● १३० ●

आज हमारा आगम का काम चल रहा है, गहराई से काम करते हैं, शोध करते हैं। यह किसका प्रभाव है? साधना का प्रभाव है। हमारा निश्चित विश्वास है आराधना, साधना और अनुष्ठान—ये हमारी शक्ति जागरण के बहुत बड़े माध्यम बनते हैं। आनंद, शक्ति, ज्ञान प्रकट करने के लिए साधना जरूरी है। घर में बहुत सारा सामान है। गहना, खाने-पीने की वस्तुएं, कपड़े हैं, पर दरवाजा बंद है, ताला लगा हुआ है। जब तक आपके हाथ में चाबी नहीं आएगी, भीतर का सामान भीतर ही पड़ा रहेगा, काम नहीं आएगा। ठीक वही स्थिति हमारी है। हमारे भीतर बहुत-कुछ है किन्तु चाबी हाथ में नहीं है, यह अनुष्ठान एक चाबी है।

जैन परम्परा का इतिहास संघर्षों का इतिहास रहा है। पांचवें श्रुतकेवली के समय से संघर्ष शुरू हो गया। भद्रबाहु स्वामी का भाई था वराहमिहिर। वह जैन मुनि बना। बाद में कुछ मतभेद हो गया, अलग हो गये। उनके मन में द्वेष पैदा हो गया, पूरे संघ को पीड़ित करना शुरू कर दिया क्योंकि वराहमिहिर भी शक्तिशाली थे। संघ भद्रबाहु स्वामी के पास आया। निवेदन किया—‘प्रभो! चारों तरफ से हमारे संघ पर संकट के बादल घिर रहे हैं। समस्याएं आ रही हैं, उलझने आ रही हैं, आप हमें शरण दें।’ उस समय भद्रबाहु ने उपसर्गहर स्तोत्र बनाया और कहा—‘जाओ इसका पाठ करो, तुम्हारा संकट टल जाएगा।’ सबने अभ्यास किया और संघ का संकट समाप्त हो गया। हम जैन सिद्धान्त पर ध्यान दें। हमारे भीतर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंद आनंद और अनंत शक्ति है। धर्म की साधना का, आराधना का एक उद्देश्य है, इन चारों को प्रकट करने की चाबियां हमारे हाथ में आ जाएं। हमारे हाथ में चाबी हो तो हमें अनंत ज्ञान को, अनंत शक्ति और अनंत आनन्द को प्रकट कर सकते हैं।

नवाह्निक अनुष्ठान में जप व तप के विभिन्न प्रयोग किए। नमस्कार महामंत्र का जप किया। बहुत कठिन साधना की है। इसका महत्त्व नहीं समझने वाले कह देते हैं यह सब क्यों कर रहे हैं? वे साधना के महत्त्व को नहीं समझ रहे हैं। पूरा ढाई हजार वर्ष का इतिहास पढ़ें तो पता चलेगा कि क्या-क्या स्थितियां हुई हैं। कई बार आचार्यों ने संघ को संभाला है। हरिभद्र के एक शिष्य को मार डाला था। हरिभद्र ने उस स्थिति को किस प्रकार संभाला। अगर शक्तिहीन होते तो सारी स्थिति गड़बड़ जाती।

इस अनंत चतुष्टयी का विकास करने के लिए अनेक रास्ते हैं—त्याग, वैराग्य, तप, संयम, जप, स्वाध्याय, ध्यान, सेवा आदि। अब जिसके लिए जो रास्ता उपयुक्त हो उसको वह रास्ता अपनाना जरूरी है। कौनसी चाबी से कौन-सा ताला खुलेगा? मानतुंग को राजा ने बंदी बना दिया और ताले लगा दिए। उस समय तपस्या की चाबी काम नहीं ली। मानतुंग ने भक्तामर की रचना शुरू की। एक-एक श्लोक बोलते गये और एक-एक ताला गिरता गया। अड़तालीस ताले नीचे गिर गए। राजा की सभा में जाकर ऐसे खड़े हो गये जैसे बादलों में से सूरज निकला हो। सबके सिर झुक गए। किसके लिए कौनसी चाबी कहां लगानी चाहिए, यह ज्ञान होना जरूरी है।

साधना और सिद्धि ————— ● १३१ ●

## संकल्प शक्ति का विकास

भाद्रपद महीने में पर्युषण पर्व की आराधना की। वह आत्मा की आराधना का पर्व है। वह अनन्त शक्तिसम्पन्न है। शक्ति पुद्गल में भी मिलती है पर ज्ञान, दर्शन और आनन्दयुक्त शक्ति उसमें नहीं मिलती। यह आत्मा में ही प्राप्त होती है। हम समीक्षा करें—ज्ञान का उपयोग, दर्शन और आनन्द का उपयोग तब तक नहीं होता जब तक हमारी शक्ति का जागरण नहीं होता, वीर्य का प्रयोग नहीं होता। इसीलिए उत्तराध्ययन सूत्र में चार दुर्लभ बातें बतलाई गई—

**चत्वारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।**

**माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ।।**

मनुष्यत्व दुर्लभ है, श्रुति दुर्लभ है, श्रद्धा दुर्लभ है और दुर्लभ है संयम में पराक्रम।

कुछ लोगों में शक्ति जागती ही नहीं है। कुछ लोगों में जाग जाती है तो उसका उपयोग करना नहीं जानते अथवा उपयोग करने की क्षमता नहीं होती। बहुत लोग ऐसे मिलेंगे, जिनमें शक्ति का विकास है पर उनको भान ही नहीं है कि मुझ में इतनी शक्ति है। भान हो गया तो प्रमाद और आलस्य इतना है कि शक्ति का उपयोग नहीं कर पाता। शक्ति सुप्त पड़ी रहती है।

आज कुंडलिनी जागरण की बहुत चर्चा है। कुंडलिनी एक महाशक्ति है। सर्वत्र इसके जागरण की बात हो रही है। कुंडलिनी किसकी जागृत नहीं है? क्या आपकी कुंडलिनी जागृत नहीं है? शायद ऐसा कोई प्राणी नहीं होगा जिसकी कुंडलिनी जागृत न हो। मात्रा का भेद हो सकता है। हर व्यक्ति के पास ऊर्जा है, ऊर्जा का केन्द्र है, पर उसका उपयोग करना नहीं जानता।

बहुत पुरानी बात है। पूज्य गुरुदेव दिल्ली में विराज रहे थे। एक साधक आया, आकर बोला कि मैं शक्तिपात कर सकता हूं। मैं गुरुदेव के पास में बैठा था। गुरुदेव ने कहा—सबसे पहले मुनि नथमलजी पर शक्तिपात का प्रयोग करो। उस व्यक्ति ने मेरे सिर पर हाथ रख दिया। लगभग पांच मिनट-दस मिनट मेरे सिर पर हाथ रखा। मैं अपने ध्यान में लीन हो गया, बेचारे का शक्तिपात शक्तिशून्य हो गया। हमें शक्तिपात नहीं,

साधना और सिद्धि—● १३२ ●

शक्ति का जागरण करना है। हर व्यक्ति अपनी शक्ति का जागरण करे, अपनी शक्ति को जगाये। हमारे भीतर की शक्ति का अक्षय स्रोत है। विकास अलग-अलग दिशाओं में होता है। यह निश्चित है कि जिस व्यक्ति में शक्ति का जागरण नहीं होता वह इस दुनिया में जन्म लेकर उन्नत जीवन नहीं जी सकता। निम्न स्तर का जीवन जीता है। वह सिर उठाकर ऊपर नहीं देख सकता। कमजोर आदमी को सब दबाते हैं। चारों ओर से उसे प्रताड़ना मिलती है, वह रास्ते पर चलता है फिर भी कहते हैं—हट जाओ। रास्ता है फिर भी हटा देते हैं। क्यों? हेतु स्पष्ट है कि वह कमजोर है। मैं मानता हूँ कि शायद इस दुनिया में अनेक अभिशाप नहीं होते हैं। पर कायरता से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं है। डर से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं है। भय, कायरता और कमजोरी बहुत बड़ा अभिशाप है। अभिशाप जीवन जीना एक प्रबुद्ध आदमी के लिए, एक समझदार व्यक्ति के लिए अच्छा नहीं होता। उसे अपनी शक्ति को जगाना है, अभय होना है। कायरता से मुक्ति पाना है और कमजोरी को शक्ति में बदल देना है।

प्रश्न है शक्ति को अधिक कैसे जगाएँ? सबसे पहले जो जागृत शक्ति है, उसका उपयोग करो, शक्ति और जाग जायेगी। शक्ति जागरण का एक शक्तिशाली प्रयोग है संकल्प शक्ति का विकास। संकल्प करो—‘मुझे यह काम करना है।’ संकल्प के अनुसार शक्ति जागृत होती चली जायेगी। छोटा सा प्रयोग करें—‘मुझे चार बजे उठना है।’ संकल्प कर लिया। प्रतिदिन यह संकल्प चले तो अवश्य ही शक्ति का विकास होगा। संकल्प शक्ति का अर्थ है—दृढ़ निश्चय। एक निश्चय कर लिया कि यह काम करूंगा, निश्चित करूंगा, किए बिना नहीं रहूंगा। इस संकल्प से शक्ति जागृत हो जायेगी। शक्ति के विकास में बाधाएं भी बहुत हैं—

**अनिरुद्धाक्षसंतानाः अजितोग्रपरीषहाः ।**

**अत्यक्तचित्तचाञ्चल्या प्रस्खलत्यात्मनिश्चये ॥**

सबसे पहली बाधा है अजितेन्द्रियता। जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय नहीं पाई, वह संकल्प शक्ति का विकास नहीं कर सकता। वह संकल्प करता है और टूट जाता है। एक युवक आया और बोला—मुझे संकल्प शक्ति दृढ़ बनाने का प्रयोग बताएं। अभी संकल्प करता हूँ और घंटे भर बाद वह टूट जाता है। शायद बहुत लोगों की यह समस्या है। पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास उदयपुर में था। वहां एक ज्योतिषी आया। वह कुण्डली देख रहा था। मैं भी गुरुदेव की उपासना में था। उसने कहा—अमुक ग्रह का योग होने पर संकल्प दृढ़ नहीं रहता। वह जो संकल्प करता है, टूट जाता है।

संकल्प शक्ति के विकास में दूसरी बाधा है परीषह पर विजय नहीं होना। जो कष्ट सहन करने में समर्थ नहीं है, वह कष्ट आने पर विचलित हो जाता है, उसका संकल्प दृढ़ नहीं रह सकता।

साधना और सिद्धि ————— ● १३३ ●

संकल्प शक्ति के विकास में तीसरी बाधा है चित्त की चंचलता। जिस व्यक्ति ने चित्त की चंचलता को कम नहीं किया, उसका संकल्प मजबूत नहीं रह सकता। वह आत्मनिश्चय से स्खलित हो जाता है। सुदर्शन ने संकल्प किया और संकल्प पर इतना मजबूत रहा कि उसको कोई विचलित नहीं कर सका।

भगवान महावीर राजगृह पधार रहे हैं। उनकी वंदना के लिए कोई भी नहीं जा रहा है। सब अपने घर में बैठे-बैठे वंदना कर रहे हैं और निवेदन कर रहे हैं—‘भगवन! आप तो केवली हैं। हमारी वंदना यहीं से स्वीकार कर लें, हम बाहर आने की स्थिति में नहीं हैं। नगर के सब दरवाजे बंद हैं।’ सुदर्शन को पता चला कि भगवान महावीर पधार गये हैं और सब लोग यहां बैठे-बैठे वंदना कर रहे हैं, यह अच्छा नहीं है। वह माता-पिता के पास आकर बोला—‘भगवान महावीर गुणशीलक चैत्य में पधारे हैं और मैं वंदना के लिए जाना चाहता हूँ।’ माता-पिता ने कहा—‘तुम कैसी बात कर रहे हो, वहां अर्जुनमालाकार है। वह प्रतिदिन छः पुरुषों की और एक स्त्री की हत्या करता है। गुणशीलक चैत्य उसके यक्षायतन के पास है। उस रास्ते से यदि तुम जाओगे तो वापस नहीं आ सकोगे। तुम भगवान महावीर की दिशा में बैठ जाओ। वंदनासन की मुद्रा में हाथ जोड़कर प्रदक्षिणापूर्वक वंदना करो। प्रार्थना करो—भगवन! आप मेरी वंदना को यहां से स्वीकार करो। आप केवली हैं, सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं। तुम्हारी भावना स्वीकृत हो जाएगी। तुम जाने की बात छोड़ दो।’ माता-पिता ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय कर लेता है, जिसका संकल्प मजबूत होता है वह किसी से नहीं डरता। सुदर्शन के सामने मौत का भय था पर वह भयभीत नहीं हुआ। क्यों? मन में दुर्बलता नहीं थी, कायरता नहीं थी, कमजोरी नहीं आई। अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। माता-पिता से फिर कहा—‘मैं महावीर की उपासना में जाना चाहता हूँ, आप अनुमति प्रदान करें।’

माता-पिता ने देखा—सुदर्शन का निश्चय दृढ़ है और वह विचलित होने वाला नहीं है। वह जाएगा तब हम क्यों रोके? वह भगवान की शरण में जा रहा है, जो होगा हो जाएगा। माता-पिता ने कहा—‘पुत्र! अच्छा है तुम जाओ।’ सुदर्शन चला गया। राजगृह का मुख्य द्वार बंद था। उसने द्वार खुलवाया। प्रहरी ने पूछा—‘कहां जाते हो?’ सुदर्शन ने कहा—‘महावीर के पास।’ ‘कैसे जाओगे? खतरनाक रास्ता है।’ सुदर्शन ने कहा—‘तुम चिन्ता मत करो। मुझे रास्ता मिल जाएगा।’ दरवाजा खोल दिया। सुदर्शन बाहर आया। चारों ओर नीरव वातावरण था। सुदर्शन मुद्गरपाणी यक्षायतन के पास पहुंचा। जैसे ही अर्जुनमालाकार ने उसे देखा, हाथ में मुद्गर लेकर सुदर्शन की ओर दौड़ा। बड़ा भयंकर दृश्य था। अर्जुनमालाकार यक्षाविष्ट था, भारी-भरकम मुद्गर लेकर सामने आ रहा था। सुदर्शन का विचलित होना स्वाभाविक था। किन्तु जिसका संकल्प मजबूत होता है वह अपने लक्ष्य से कभी भी विचलित नहीं होता। क्या एक सैनिक

साधना और सिद्धि—● १३४ ●



मौत के सामने नहीं जाता ? उसने एक संकल्प कर लिया कि हमें मौत से नहीं डरना है। संकल्प में अंतर है। सैनिक परतंत्र है किन्तु सुदर्शन स्वतंत्र है। उस पर कोई नियंत्रण नहीं है। उसने देखा—अर्जुन मालाकार मुद्गर को आकाश में उछालता हुआ सामने खड़ा है। अब कसौटी का समय आ गया। अर्जुनमालाकार ने सुदर्शन को देखा। यह व्यक्ति शान्त भाव से खड़ा है। उस समय की स्थिति का सूत्रकार ने सुन्दर निरूपण किया है—  
अब्भिए, अतत्थे, अणुव्विग्गे, अखुब्भिए, अचल्लिए, असंभंते।

(१) अब्भिए—सुदर्शन अर्जुन मालाकार को देखकर भयभीत नहीं हुआ। उसके मन में किञ्चित मात्र भी कम्पन नहीं हुआ कि मौत आ जाएगी।

(२) अतत्थे—सुदर्शन त्रस्त नहीं हुआ। मन में थोड़ी भी पीड़ा नहीं हुई।

(३) अणुव्विग्गे—सुदर्शन अनुद्विग्न रहा। उसका मन भय से आंदोलित नहीं हुआ। अर्जुनमालाकार के प्रति न रोष का भाव था और न आक्रोश का।

(४) अखुब्भिए—सुदर्शन क्षुब्ध नहीं हुआ। तालाब, नदी या समुद्र के पानी में डेला फेंको, वह क्षुब्ध हो जाएगा। एक तरंग उठेगी। किनारे से लेकर मध्य या अंत तक एक लहर हो जाएगी। एक पुर्तगाली कवि ने लिखा है—

**खेल में तुम्हें पुलक उन्मेष होता है।**

**सलिल को लहर बनने में क्लेश होता है।**

पानी जब लहर बनता है तो उसको कष्ट होता है। किन्तु अर्जुनमालाकार के डेला फेंकने पर भी सुदर्शन के मन-समुद्र में कोई लहर नहीं उठी। वह बिल्कुल अक्षुब्ध बना रहा।

(५) अचल्लिए—सुदर्शन बिल्कुल भी चलित नहीं हुआ। वह धृति सम्पन्न था।

(६) असंभंते—सुदर्शन को कोई संभ्रम नहीं हुआ। कभी-कभी संभ्रम होता है। जैसे—किसी ने सांप देखा और कहने लगा—सांप-सांप-सांप। यह संभ्रम हो गया। इसका प्रयोग संस्कृत व्याकरण में आता है—संभ्रम में पुनरुक्ति होती है। सामान्यतया पुनरुक्ति करना दोष है पर जहां संभ्रम हो वहां सांप-सांप-सांप-सांप कितनी बार कहो, दोष नहीं माना जाता। ये छः विशेषण व्यक्ति की मनोदशा को बतलाने के लिए हैं।

इस संदर्भ में हमें सोचना यह है कि अपने निश्चय पर दृढ़ कौन रह सकता है ? जिसमें भय नहीं है, जिसमें क्षोभ नहीं है, चित्त की चंचलता नहीं है, जो कष्टों से घबरता नहीं है और मौत से डरता नहीं है, वह अपने निश्चय पर दृढ़ रह सकता है।

अभय कौन हो सकता है ? जिसके पास कायोत्सर्ग की साधना है, मंत्र की साधना है, मन की पवित्रता की साधना है वह व्यक्ति अभय बन सकता है। अगर आत्मा पवित्र है तो कोई भी बाहर की शक्ति प्रहार नहीं कर सकती। कायोत्सर्ग के

साधना और सिद्धि ————— ● १३५ ●

अभ्यास से आभामण्डल शक्तिशाली बन जाता है। उस व्यक्ति पर कोई कुछ भी नहीं कर सकता। कायोत्सर्ग दो प्रकार का होता है—

(१) चेष्टा कायोत्सर्ग

(२) अभिभव कायोत्सर्ग।

अति प्रवृत्ति के बाद लेट जाओ, शरीर को ढीला छोड़ दो। यह निवृत्तिमूलक कायोत्सर्ग है। दूसरा है अभिभव कायोत्सर्ग। कोई द्रव उपद्रव सामने आया, कोई विघ्न सामने आया, अभिभव कायोत्सर्ग का प्रयोग करो। खड़े हो जाओ, अपने आस-पास एक शक्तिशाली आभामण्डल का निर्माण करो। वर्तमान में अभिभव कायोत्सर्ग की पूरी प्रक्रिया प्राप्त नहीं है, आचार्यों ने लिख दिया—जैनी रीति से जान लेना। वर्तमान में जैनी रीति को बताने वाला कोई नहीं है। उसकी परम्परा ही समाप्त हो गई। किन्तु अभिभव कायोत्सर्ग की विधि जानने वाले अपनी सुरक्षा कर लेते हैं।

भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा में सुदर्शन मुनि का उल्लेख मिलता है। वे पार्श्वनाथ के शिष्य थे, तेजस्वी साधक थे। अपने शिष्य परिवार के साथ कहीं जा रहे थे। चलते-चलते रास्ते में कुछ बाधा आ गई। यह शाश्वत तथ्य है—**श्रेयांसि बहुविघ्नानि।** अच्छे कार्य में विघ्न आते हैं। दुनिया में भले लोगों की कमी नहीं है तो बुरे लोगों की भी कमी नहीं है। विधायक दृष्टिकोण वालों की कमी नहीं है तो निषेधात्मक दृष्टिकोण वालों की भी कमी नहीं है। कापालिक के मन में सुदर्शन मुनि की प्रतिष्ठा और प्रभाव की ईर्ष्या पैदा हो गई। ईर्ष्या बड़ी भयंकर होती है। वह बहुत अनर्थ कर देती है। इसीलिए गुरुदेव ने कालुयशोविलास में लिखा है—

**जे माटे खाटे नहीं आयुर्वेद इलाज।**

**जन्म-मन्त्र, बूटी-जड़ी, निबड़ी सब निष्काज।।**

ईर्ष्या को मिटाने के लिए न आयुर्वेदिक इलाज काम देता है, न जड़ी-बूटी काम देती है, न कोई एलोपैथिक इलाज काम देता है और न कोई होमियोपैथी का इलाज। उसके लिए दुनिया में कोई भी दवाई नहीं है। यह असाध्य बीमारी है। सुदर्शन मुनि किसी का विनाश करने वाले नहीं थे, फिर भी कापालिक के मन में बीमारी पैदा हो गई। उसने सुदर्शन मुनि की हत्या के लिए शक्ति का संप्रेषण किया। सुदर्शन मुनि रास्ते में जा रहे थे। एक वृद्ध साधु आगे चल रहा था। शक्ति आई और उसने आगे चल रहे मुनि को भस्म कर दिया। सुदर्शन मुनि भस्म होने वाले मुनि को देखकर आश्चर्य-चकित रह गए? तत्काल सारी बात समझ में आ गई और साधुओं से कहा—खड़े हो जाओ और अभिभव कायोत्सर्ग का प्रयोग करो। सब मुनि खड़े हो गये, अभिभव कायोत्सर्ग का प्रयोग किया। उस समय विभिन्न विद्याओं को जानने वाले साधु थे। पार्श्वनाथ के शिष्य विद्या मंत्र के विशेषज्ञ थे। उनके पास विद्याप्रवाद नाम का पूर्व था।

साधना और सिद्धि—● १३६ ●

आजीवक संप्रदाय के आचार्य गोशालक ने तथा अन्य लोगों ने भी पार्श्वनाथ की परंपरा से इन विद्याओं और मंत्रों को ग्रहण किया था। वह शक्ति आई किन्तु भीतर प्रवेश नहीं कर पाई, अभिभव कायोत्सर्ग से निर्मित वलय को भेदन नहीं कर सकी। वह काफी देर तक चक्कर लगाती रही पर कहीं कोई छिद्र नहीं मिला जिससे वह भीतर प्रवेश कर सके। आखिर थक गई, वापिस चली गई। एक नियम है कि जो व्यक्ति शक्ति का प्रयोग करता है यदि वह सामने वाले व्यक्ति पर नहीं होता तो वह शक्ति लौट कर प्रयोक्ता को ही मार देती है। शक्ति गई और उसने कापालिक का काम समाप्त कर दिया।

श्रेष्ठीपुत्र सुदर्शन भयभीत नहीं हुआ। उसने शक्ति को आते हुए देखा। तत्काल निर्णय किया मुझे अपनी साधना का प्रयोग करना चाहिए। उसने कपड़े से भूमि का शोधन किया। मंत्र साधना के नियमानुसार सबसे पहले भूमि का शोधन किया जाता है। सुदर्शन ने भूमि का शोधन किया और कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा हो गया। भगवान महावीर को नमस्कार किया। नमस्कार कर बोला—मैंने भगवान महावीर के पास स्थूल पापों का प्रत्याख्यान, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया आदि स्थूल पापों का प्रत्याख्यान किया था। आज एक उपसर्ग सामने है। जब तक इस उपसर्ग से मुक्ति न मिले, तब तक मैं भगवान महावीर की साक्षी से संपूर्ण प्राणातिपात का यावत् संपूर्ण क्रोध का प्रत्याख्यान करता हूँ। एक दृढ़ संकल्प के साथ नमस्कार किया, अहंकार का विलय किया फिर व्रत स्वीकार किया और एक सुरक्षा का कवच बन गया। केवल मंत्र ही सुरक्षा का कवच नहीं होता, व्रत भी शक्तिशाली सुरक्षा कवच है। जिस व्यक्ति ने व्रत की शक्ति ने व्रत की शक्ति को पहचाना है वह बाधाओं को दूर कर सकता है। व्रत का मतलब ही है एक आच्छादन अथवा छत बना लेना, संवरण कर लेना, दरवाजे को बंद कर देना। जो व्रत को स्वीकार करता है उसका संकल्प पुष्ट हो जाता है। पूर्ण शिथिलीकरण, जागरूकता और ममत्व का विसर्जन—इन तीनों का प्रयोग कर सुदर्शन कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा हो गया। यक्षाविष्ट अर्जुनमालाकार भारी भरकम मुद्गर को आकाश में उछालता हुआ आया। मुद्गर का प्रहार करना चाहा पर हाथ थम गये, मानो किसी ने स्तम्भिनी विद्या का प्रयोग किया हो।

प्राचीन घटना है। जंबूकुमार के घर पर पांच सौ चोर आये। उन्होंने देखा—जंबूकुमार महल में अपनी पत्नियों से वार्ता कर रहे हैं। सुसराल से बहुत वैभव आया था। चोरी का अच्छा अवसर था। प्रभव ने आदेश दिया—सामान को बांधो और गठरियां बांधकर उठाओ। जैसे ही हाथ डाला, सब चोरों के हाथ मानो गोंद की भांति चिपक गये। प्रभव ने कहा—खड़े-खड़े क्या करते हो? सामान बांधो और चलो। चोर बोले—कैसे बांधे? हमारे हाथ चिपक गये। प्रभव ने सोचा—यहां कोई व्यक्ति विद्याविद् या मंत्रविद् है। मैं स्वयं भीतर जाकर देखूँ—क्या हो रहा है? वह भीतर गया। जंबूकुमार और आठों नव परिणीता वधुएं परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। प्रभव के पास अवस्वापिनी और साधना और सिद्धि

तालोद्घाटिनी दो विद्याएं थीं। अवस्वापिनी का प्रयोग करो सब नींद में सो जायेंगे। तालोद्घाटिनी का प्रयोग करो, ताले त्वरता से टूट कर नीचे गिर जायेंगे। उन्हें तोड़ना नहीं पड़ता, उनको खोलने के लिए किसी औजार की जरूरत नहीं होती। प्रभव ने इन विद्याओं का प्रयोग किया, तालोद्घाटिनी का प्रयोग सफल हो गया, सारे ताले टूट गये, धन वैभव सामने आ गया। किन्तु अवस्वापिनी का प्रयोग विफल कैसे गया? अभी भीतर वार्तालाप हो रहा है, सब बातचीत कर रहे हैं। प्रभव बोला—जंबूकुमार! तुम मुझसे भी अधिक जानकार हो, विद्यासिद्ध हो। मेरी ये दो विद्याएं अवस्वापिनी और तालोद्घाटिनी तुम ले लो और यह स्तम्भिनी विद्या मुझे दे दो। मंत्र शास्त्र में स्तम्भिनी विद्या के अंत में 'ठ: ठ: ठ: स्वाहा' बोला जाता है। उससे व्यक्ति स्तब्ध हो जाता है। वह जहां होता है, वहीं रह जाता है।

अर्जुनमालाकार ने सुदर्शन पर मुद्गर का प्रहार करना चाहा, पर हाथ ठिठक गये, स्तब्ध हो गये। सुदर्शन का तेज इतना अधिक था कि यक्ष का तेज दब गया। वह अपने तेज से सुदर्शन को स्खलित नहीं कर सका, प्रतिहत नहीं कर सका। वह एकदम खड़ा हो गया। सोचने लगा—यह कौन व्यक्ति है? इस पर मेरा हाथ क्यों नहीं चल रहा है? अपलक उसकी ओर देखता रहा। आंखों से तेज की रश्मियां निकल रही थीं, वह उन्हें सहन नहीं कर सका। एक झटके के साथ ही भूमि पर गिर गया। हम इस घटना का विश्लेषण करें। संकल्प की शक्ति और व्रत की शक्ति से इस स्थिति का निर्माण होता है। संकल्प प्रारंभिक अवस्था है और व्रत उसका पुष्ट रूप। जैसे-जैसे संकल्प की शक्ति बढ़ती है, वह व्रत में बदल जाती है।

प्रश्न होता है कि संकल्प शक्ति को कैसे बढ़ाएं? नवरात्र का समय संकल्प शक्ति जागरण का समय है। साधना के बिना कोई संकल्प पुष्ट नहीं बनता। इस संदर्भ में आराधना को समझना जरूरी है। ठाणं सूत्र में तीन प्रकार की आराधना बतलाई गई है—ज्ञानी की आराधना, दर्शन की आराधना और चारित्र की आराधना। आराधना का अर्थ क्या है? इसको रसोई बनाने वाली बहिनें ज्यादा समझ सकती हैं। आराधना का मतलब है—रांधना, सिझाना, पकाना। जब तब चावल सीझता नहीं है, कच्चा रह जाता है और आंच पूरी मिलती है, पक जाता है, सिद्ध हो जाता है, सीझ जाता है। चावल कच्चा न रहे, आंच पूरी लगे। पूरी आंच देकर पका लेने का नाम है आराधना। नवरात्र आराधना का समय है। यही इसका महत्त्व है।

साधना और सिद्धि ————— ● १३८ ●

## आवश्यक है संस्कारों का निर्माण

मौसम बदल रहा है। गर्मी संध्या में आ गई है और सर्दी प्रभात काल में। एक की संध्या और एक का प्रभात। केवल ऋतु के साथ ही मौसम नहीं बदलता। हमारे जीवन का भी मौसम बदलता है। हमारी प्रवृत्तियों का भी मौसम बदलता है। यात्रियों का मौसम भी बदल रहा है। पूजा की छुट्टी हुई, मुक्ति मिल गई। जिनके बच्चों की पढ़ाई चलती है वे बंधे हुए हैं। पुराने जमाने में अनेक बन्धन बतलाए गए। राग का बन्धन, द्वेष का बंधन, मोह का बंधन, अर्जन का बंधन, नागपाश का बंधन आदि। आजकल बच्चों की पढ़ाई भी एक बंधन है। जब अवकाश होता है तो मुक्ति मिल जाती है। हमारे जीवन की अनेक यात्राओं में मौसम का परिवर्तन होता रहता है। उपाध्याय विनयविजयजी ने लिखा है—व्यक्ति के एक दिन में छहों ऋतुएं आती हैं। जैविक घड़ी (बायोलोजिकल क्लोक) की दृष्टि से देखें तो चौबीस घण्टों में कितने चक्र बदलते हैं।

आज से पांच-छः दशक पहले मैंने देखा कि बच्चे अपने-अपने गांवों में रहते थे। वहीं पढ़ते थे। साधु-साध्वियों का सम्पर्क रहता था। अब स्थिति बदल गई। कल ही मेरे पास अनेक परिवार आए। एक बहिन ने बताया—‘यह पन्द्रह साल का लड़का है, अठारह साल की लड़की है। पहली बार दर्शन करने आए हैं।’ मैंने उनको पूछा—‘क्या करते हो?’ उन्होंने उत्तर दिया—‘हम पढ़ाई करते हैं।’ और क्या करते हो?’ उन्होंने कहा—‘नाश्ता करते हैं, खाना खाते हैं, टीवी देखते हैं।’ कुछ समय बाद मैंने पूछा—‘माला फेरते हो या नहीं?’ सभी एक स्वर में बोले—‘नहीं।’ इसका अर्थ यह है कि पढ़ना आवश्यक है, भोजन करना आवश्यक है, पानी पीना आवश्यक है, खेलना आवश्यक है। टीवी देखना आवश्यक है, बहुत सारे कार्य आवश्यक हैं मगर धर्म आवश्यक नहीं है। भोजन न करें तो भूख सताने लगती है किन्तु कोई धर्म न करे तो न भूख सताती है न प्यास। फिर धर्म आवश्यक क्यों है? व्यक्ति के पास पैसा है उसे खाने को मिलता है, रहने को मकान है, पहनने के लिए कपड़े हैं, बीमार होता है तो दवा मिलती है। सारी सुख-सुविधाएं प्राप्त हैं फिर धर्म करने की क्या आवश्यकता है? मुझे नहीं लगता कि उसकी किसी भी क्षेत्र में जरूरत है।

प्रत्येक प्रवृत्ति के साथ धर्म को जोड़ना जरूरी है। आखिर क्यों? स्वयं धर्माराधना करने की और बच्चों को धर्म का प्रशिक्षण देने की क्या आवश्यकता है? व्यक्ति अनुभव करता है, धर्म करना कोई आवश्यक नहीं है, बिल्कुल व्यर्थ-सा है। फिर भी लोग करते हैं। इस विषय पर विचार करना जरूरी है। आवश्यकता और उपयोगिता केवल शरीर के स्तर पर अथवा पदार्थ के स्तर पर आंकी जा सकती है। पदार्थ के स्तर पर और इन्द्रिय चेतना के स्तर पर जीने वाले व्यक्ति को धर्म की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। अतीन्द्रिय चेतना के स्तर पर जीने वाले व्यक्ति को धर्म की आवश्यकता महसूस होती है। दो अलग-अलग जगत् हो गए—एक इन्द्रिय चेतना जा जगत् और दूसरा अतीन्द्रिय चेतना का जगत्।

धर्म की आवश्यकता का संबंध अतीन्द्रिय जगत् से है। खाना, पीना, सुख-सुविधा में रहना शरीर की आवश्यकताएं हैं। आप चिन्तन करें कि आप शरीर हैं या और कुछ भी हैं। अगर मात्र शरीर हैं तो धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। जोधपुर की बात है। डालगणी के एक भक्त थे। वे आए और बोले—‘मुझे आप लोगों पर बहुत दया आती है।’ डालगणी ने पूछा—‘क्यों?’ ‘आप इतना कष्ट उठाते हैं, सर्दी, फिर व्यर्थ ही शरीर को क्यों कष्ट देते हैं?’ डालगणी ने ध्यानपूर्वक उसकी बात सुनी और फिर कहा—‘आगे क्या है? कौन जानता है? तुम्हारे हिसाब से हम जो थोड़ा-बहुत कष्ट सहन करते हैं वह बेकार चला जाएगा। इसके सिवाय कोई खास बात नहीं है। पर तुम बताओ अगर हमारा सिद्धान्त सही है, पुनर्जन्म है, परलोक है, तब तुम्हारा क्यों होगा?’ ‘महाराज! अगर आपका सिद्धान्त सही है तो इतनी मार पड़ेगी कि धरती भी नहीं झेल पाएगी।’

हमें दो कोणों से सोचना है। शरीर के स्तर पर देखें तो कष्ट सहन करना समझदारी की बात नहीं है। किन्तु शरीर की भूमिका से आगे विचार करें—हमारे भीतर मन है, चित्त है, आत्मा है। इस इतीन्द्रिय चेतना के जगत् में प्रवेश करने पर लगता है कि सबसे ज्यादा आवश्यकता कोई है तो वह है धर्म। चिन्तन की पहली भूमिका में धर्म का कोई मूल्य नहीं है। चिन्तन की दूसरी भूमिका में धर्म का सर्वोपरि मूल्य है। उसी भूमिका से यह स्वर आया कि खाना छोड़ो, तपस्या करो। आराम छोड़ो, आसन करो, स्वाध्याय करो, आत्मनिरीक्षण करो, आत्मा का चिन्तन करो। उसी भूमिका से यह स्वर भी प्रस्फुटित हुआ कि अपने मनोबल को बढ़ाओ, सहन करने की शक्ति बढ़ाओ, भावना पवित्र रखो। चिन्तन की ये दो भिन्न भूमिकाएं स्पष्ट हैं।

आजकल अभिभावक अपने बच्चे की बहुत चिन्ता करते हैं और यह प्रयत्न भी करते हैं कि बच्चा अच्छे से अच्छे स्कूल में जाए, कॉन्वेंट में जाए, देहरादून या मसूरी जाए, सबसे अच्छी कॉलेज में जाए। किन्तु यह चिन्ता करने वाले बहुत कम

साधना और सिद्धि—● १४० ●

लोग हैं कि बालक में संस्कार अच्छे रहें, उनका खान-पान शुद्ध रहे, आहार-विहार नियमित रहे। दिल्ली में एक सम्पन्न परिवार दर्शन करने आया। बातचीत के दौरान उस परिवार की एक महिला ने कहा—‘हमारे बच्चे मंत्र का जप आदि कुछ नहीं करते। धार्मिक क्रियाओं में उनकी कोई रुचि नहीं है। आप इन्हें समझाएं।’ मैंने कहा—‘ठीक है, बात करेंगे।’

मैंने उनसे पूछा—‘तुम नाश्ता करते हो?’

‘करते हैं।’

‘क्यों करते हो?’

‘हमारा शरीर अच्छा रहे।’

‘क्या तुम्हारे पास मन है?’

‘हां, मन है।’

‘शरीर बलवान है या मन?’

‘मन बलवान है?’

‘मन को भी नाश्ता कराते हो?’

बच्चे प्रश्न सुनकर चौंक गए। उन्होंने कहा—‘मन का नाश्ता बाजार में नहीं मिलता, वहां सारा शरीर का ही नाश्ता मिलता है।’ मैंने कहा—‘जप करना, ध्यान करना, इष्ट को याद करना—यह है मन का नाश्ता। इन सबका अभ्यास करो, मन बलवान बनेगा। अभ्यास नहीं करोगे तो मन कमजोर हो जाएगा। जिसका मन कमजोर हो गया उसका शरीर भी कमजोर हो जाएगा।’

बच्चों के बात समझ में आ गई। उन्होंने कहा—आज से हम मन को भी नाश्ता कराएंगे। मैंने अभिभावकों से पूछा—बच्चों को कभी मन का नाश्ता कराने की बात भी बताते हो? बच्चों से पूछा—नवकार मंत्र याद है। उनका उत्तर नकारात्मक था। मैंने कहा—बताओ, गलती किसकी है? बच्चों की या अभिभावकों की? अभिभावकों ने अपनी गलती का अहसास किया। मुझे तत्काल संस्कृत का श्लोक याद आया—**‘माता शत्रुः पिता वैरी याभ्यां बालो न पाठितः’**—वे माता-पिता संतान के शत्रु होते हैं जो अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं। आज इस बात को बदलकर कहना चाहता हूं—**माता शत्रुः पिता वैरी याभ्यां बालो न संस्कृतः**। वे माता-पिता संतान के शत्रु होते हैं जो बच्चों को संस्कारित नहीं करते। वे माता-पिता भी बच्चों के हितैषी नहीं हैं जो उनके जीवन का निर्माण नहीं करते। खान-पान की शुद्धि का ज्ञान नहीं कराते, नवकार मंत्र को नहीं सिखाते। बहुत गहराई से अभिभावकों को ध्यान देने की जरूरत है।

मुझे लगता है बच्चों को संस्कार देने की दृष्टि से हिन्दुस्तान के लोगों की अपेक्षा हिन्दुस्तान के प्रवासी, जो अमेरिका और यूरोप में रहते हैं, अधिक जागरूक

साधना और सिद्धि ————— ● १४१ ●



हैं। कनाडा से जैन परिवार का एक भाई आया। वह पजाबी था। बहुत वर्षों से कनाडा में रहता था। उससे पूछा—‘तुम बार-बार समणियों के लिए प्रार्थना क्यों करते हो?’ उसने कहा—‘हम अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। हमारे बच्चों में पहले धार्मिक संस्कार नहीं थे। हम बहुत चिन्तित रहते थे। विदेश में आ गए हैं। बच्चों को धार्मिक वातावरण नहीं मिल रहा है। अच्छे संस्कार नहीं मिल रहे हैं। समणीजी के आने से निश्चित हो गए।’

हमें भय था बच्चों के संस्कार बिगड़ जाएंगे। खान-पान विकृत हो जाएगा। खान-पान विकृत होने का अर्थ है शराब, मांस, अण्डे आदि का प्रयोग। जो व्यक्ति इनमें चला गया, मान लो उसके अपराधी जीवन का दरवाजा खुल गया। अपराध कहां से आते हैं? अपराधी मनोवृत्ति का निर्माण कैसे होता है? अगर हम उसका वैज्ञानिक और धार्मिक दृष्टि से विचार करें तो पहला रास्ता है खान-पान की अशुद्धि। जहां खान-पान की अशुद्धि होगी, चेतना विकृत हो जाएगी।

लगभग एक दशक पूर्व गुरुदेव के पास एक बहन का पात्र आया। उसमें लिखा था—‘गुरुदेव! मेरी एक समस्या है आप उसका समाधान करें। मेरा पति शराबी हो गया है। शराब के नशे में पिटाई करता है और मुझे शराब पीने के लिए बाध्य करता है। जब मैं शराब पीने से इन्कार करती हूँ तो मेरी और ज्यादा पिटाई करता है।’ आप निश्चित मानें, जिस परिवार में शराब का या नशे का प्रवेश हो गया, उसमें अपराध का भी प्रवेश हो गया। नशा और अपराध अलग-अलग नहीं आते। दोनों साथ-साथ ही आते हैं। एक नहीं, अनेक घटनाएं इसकी साक्षी हैं। जब-जब परिवार दर्शनार्थ आते हैं। प्रायः बहनों की ओर से शिकायत आती है—ये गुटका ज्यादा खाते हैं, ये पानपराग खाते हैं, ये खैनी खाते हैं। जब हम सबको समझाते हैं, कई लोग प्रेरित होकर न खाने का संकल्प करते हैं, प्रत्याख्यान करते हैं। बहिनें प्रत्याख्यान की बात सुनकर प्रसन्न हो जाती हैं।

जैन आचार्यों ने प्राचीनकाल से ही इस पर ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने सात व्यसनों का एक वर्गीकरण किया। जैन बनने वाले के लिए यह तय किया गया कि वह सात व्यसनों से मुक्त रहेगा। जैन आचार्यों का सामाजिक क्षेत्र में और जीवन की पवित्रता के क्षेत्र में महान योगदान रहा है। उन्होंने कहा—अगर तुम जैन हो, अच्छा जीवन जीना चाहते हो, नशामुक्त और अपराधमुक्त होना चाहते हो तो सात व्यसनों से मुक्त रहो—१. जुआ, २. मांस खाना, ३. शराब पीना, ४. चोरी, ५. वेश्यागमन, ६. परदारगमन, ७. शिकार करना।

जन्म से ही बच्चे में ये संस्कार भरे जाएं कि तुम्हें अण्डा नहीं खाना है, नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना है। मुझे लगता है माता-पिता ही पदार्थों के सेवन में सहयोगी बनते हैं। वे बच्चों को ऐसे बिस्कुट, टॉफी, आइस्क्रीम आदि लाकर देते हैं। माता-पिता समझते हैं कि इन सब चीजों को देकर हम वात्सल्य

साधना और सिद्धि—● १४२ ●

प्रदर्शित कर रहे हैं। बच्चे भी समझते हैं माता-पिता कितने अच्छे हैं। कितनी बढ़िया चीज लाकर देते हैं। बच्चों में जीवन के प्रति जागरूक रहना, उन्हें अच्छे संस्कार देना, उन्हें सदाचारी बनाना, अपराधमुक्त बनाना क्या आवश्यक नहीं है ?

मैं बीकानेर जेल में कार्यक्रम करने के लिए गया। वहां के अधीक्षक मुसलमान थे। जैनदर्शन का अध्ययन किया हुआ था। मैंने प्रवचन किया। प्रवचन के बाद एक युवक मेरे पास आया, वंदना की। मैंने पूछा—‘क्या तुम जैन हो?’ उसने कहा—‘हां।’ मुझे आश्चर्य हुआ, जैन और आजीवन कारावास! मैंने संतों से कहा—‘जैन धर्म का अनुयायी और मर्डर के जुर्म में आजीवन कारावास भोग रहा है।’ मेरा मन उद्वेलित हो गया। कहां तो जैनधर्म के आदर्श और कहां उसके अनुयायी? हमें गहराई से चिन्तन करना है। एक दिन एक कार्यकर्ता आया। उसने एक बहुत अच्छी बात कही—‘सात-आठ वर्ष का बच्चा टीवी देखता है। वह एक वर्ष में हिंसा के सत्तर हजार या एक लाख दृश्य देख लेता है। बार-बार ऐसे दृश्यों को देखने से हिंसा की बात ही दिमाग में प्रविष्ट होगी।’ आज टीवी देखने वाले बच्चे हिंसा, सैक्स, अपराध को देखते हैं। धीरे-धीरे ऐसे संस्कार उनके दिमाग में आते हैं और उनके क्रियान्वयन के बारे में सोचते हैं। अगर बच्चों की इस मनोवृत्ति के प्रति माता-पिता जागरूक नहीं होंगे, ध्यान नहीं देंगे तो आने वाली पीढ़ी और उससे आगे आने वाली पीढ़ी का क्या होगा ?

माता-पिता को जीविका के लिए बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देना आवश्यक है किन्तु उसके साथ जीवन में होने वाले संस्कारों पर भी ध्यान दें। दोनों का संतुलन जरूरी है।

## अपनी शक्ति का विकास करें

एक प्रश्न है—अध्यात्म का पात्र कौन होता है ? अथवा अध्यात्म की चेतना किसमें विकसित होती है ? बहुत सुन्दर कहा गया, जिसमें अनेकांत की दृष्टि होती है वह अध्यात्म का पात्र होता है, अध्यात्म की चेतना उसमें जागती है जिसकी दृष्टि अनेकांत की होती है।

स्याद्वादविशदालोकः स एवाध्यात्मभाजनम्।

एकाङ्गी दृष्टिकोण वाले व्यक्ति में अध्यात्म चेतना का विकास नहीं हो सकता इसलिए कहा गया—

**मनोवत्सो युक्तिगवीं, मध्यस्थस्यानुधावति।**

**तामाकर्षति पुच्छेन, तुच्छाग्रहमनः कपि।।**

मन एक बछड़ा है। युक्ति, तर्क, न्याय एक गौ है। जो व्यक्ति मध्यस्थ है, जिसमें अनेकांत दृष्टि का विकास हो चुका है, उसके मन का बछड़ा युक्ति रूपी गौ के पीछे-पीछे चलेगा। वह अपनी खींचतान नहीं करेगा। जिधर युक्ति की गाय जाएगी उधर ही वह बछड़ा भी पीछे-पीछे चला जाएगा। जिसमें मध्यस्थ दृष्टि का विकास नहीं है, जिसका दृष्टिकोण एकाङ्गी है उसका तुच्छ आग्रह रूपी मन का बंदर गाय के पीछे-पीछे नहीं चलता, गाय की पूंछ को पकड़ कर अपनी ओर खींचता है। वह जहां युक्ति है वहां नहीं जाता किन्तु जो स्वयं चाहता है, उधर युक्ति को ढालना चाहता है। जिसमें अनेकांत दृष्टि का विकास है, वह खींचतान नहीं करता। जिसमें अनेकांत दृष्टि का विकास है, वह जहां युक्ति होती है वहां जाता है। जो आग्रही होता है वह युक्ति को अपने अनुसार ढालना चाहता है। जो अनाग्रही होता है उसकी मति वहां जाती है जहां युक्ति होती है। वह यह नहीं सोचता कि मैं जो सोचता हूं वही युक्ति है।

**आग्रही बत निनीषति युक्तिं यत्र तत्र मतिरस्य निविष्टा।**

**पक्षपातरहितस्य तु युक्तिः यत्र तत्र मतिरेति निवेशम्।।**

जब तक अनेकांत दृष्टि का विकास नहीं होता तब तक व्यक्ति आध्यात्मिक नहीं होता। जो अध्यात्मशून्य होता है, उसमें आग्रह होता है। उसमें महत्त्वाकांक्षा,

साधना और सिद्धि—● १४४ ●

लोभ, ईर्ष्या आदि जन्म लेते हैं। आग्रह में क्या होता है ? यह मैं बता दूँ। कल की ही घटना है। वह अनेक व्यक्तियों के सामने घटी। चार व्यक्तियों के बीच घटी घटना भी तेजी से फैल जाती है। जहां हजारों व्यक्ति हो वहां तो और तेजी से फैलती है। उस घटना के अनेक अर्थ लगाए गए। बाहर से सैकड़ों-सैकड़ों फोन आ गए। इसलिए मैं इस बात को आज स्पष्ट कर देता हूँ।

कुछ व्यक्तियों में एक आग्रह हो गया। जब मैं इन्हें (महाश्रमण) युवाचार्य बनाया तब से ही कुछ लोग तांत्रिकों का सहारा लेकर मारक शक्ति का प्रयोग करने लग गए। एक बार हुआ, दो बार हुआ, यह शायद तीसरा प्रसंग कल का था। हम सामने वाले कक्ष में बैठे थे। सदा मध्यवर्ती दरवाजे में बैठते हैं। कल कुछ ऐसी प्रेरणा रही कि इस पट्ट को तीसरे दरवाजे में सरकाया जाए। मैंने तत्काल संतों से कहा—पट्ट पीछे सरकाओ। संतों ने पट्ट सरकाया, हम बैठ गये। यह भी जान लें, नवरात्रा का प्रथम दिन तांत्रिकों के लिए अच्छा होता है, एक प्रकार से वरदान तुल्य होता है। समय था बारह बजे का। यह भी होता है कि जो लोग मारक शक्ति का प्रयोग करते हैं, उनके लिए सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और मध्यरात्रि—ये चार समय बहुत अनुकूल होते हैं। बारह बजे से दो चार मिनट पहले हम तीसरे दरवाजे में बैठ गए। जहां प्रयोग होना था वह स्थान खाली कर दिया। हमने वार्तालाप शुरू कर दिया। कुछ क्षण बाद समणी मंगलप्रज्ञा, जो इस स्थान की सीध में थी, अचानक साध्वी प्रमुखा के पास आई। उनका हाथ पकड़ लिया। मैंने सोचा—आज लाडनू जा रही है इसलिए वंदना करने आई होगी। किन्तु मंगलप्रज्ञा हाथ पकड़ कर रोने लगी और बोली—मेरा सारा शरीर जला जा रहा है। सारे शरीर में आग जैसी लग गई है। जैसे आग की भट्टी में डाल दिया गया है। इतना भयंकर रूप में मैंने देखा, तत्काल समझ गया, कुछ उपद्रव हुआ है। मेरे में भी जोश आ गया और मैंने अपना प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। उस पांच मिनट के प्रयोग में ही स्थिति बदल गई। फिर मुनि जयकुमारजी ने भी प्रयोग किया। दस मिनट में तो सारा उपद्रव शान्त हो गया।

कल मैंने साक्षात् देखा। ऐसे तो मैं नहीं मानता किन्तु कल की घटना मेरी आंखों के सामने हुई। सारी स्थिति मैंने स्वयं देखी। मैं नहीं चाहता था कि यह बात बाहर फैले, लोगों में जाए किन्तु कुछ लोग वहां थे। वे घबरा गए। कुछ युवक तत्काल बुला लाए। उन्होंने सोचा—कोई शरीर की बीमारी हो गई है। डॉक्टर आ गया। संतों ने कहा—डॉक्टर की कोई अपेक्षा नहीं है। डॉक्टर को बाहर कर दिया गया। डॉक्टर का कोई काम ही नहीं था। शरीर की बीमारी तो थी ही नहीं। इतनी भयंकर ज्वाला थी। यह प्रभाव था शासन का, पूज्य गुरुदेव का, तत्काल सूझ गया और अपना प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। कल एक घंटे का पूरा समय संघर्ष में ही बीता। क्या-क्या करना, कैसे करना आदि में लगे रहे।

साधना और सिद्धि ————— ● १४५ ●

आप देखिए—यह आग्रह के कारण होता है। वरना कोई मतलब नहीं है। साधु अपनी साधना करते हैं पर व्यक्ति का आग्रह हो जाता है कि मरना है। पर ध्यान रहे—भिक्षु स्वामी का प्रताप है, जैन शासन का, भगवान महावीर का, कितने साधु-साध्वियों की तपस्या का और गुरुदेव का। हम सदा बीच में बैठते हैं किन्तु कल वहां बैठे जहां गुरुदेव का फोटो लगा है। उसने नीचे जाकर बैठे। बाद में एक आवाज भी आई कि मैंने ही सरकाया है। यह सब कुछ आखों के सामने हुआ अन्यथा कोई विश्वास ही नहीं करता।

मैं मानता हूँ—गुरुदेव ने आध्यात्मिक शक्ति की प्रेरणा के साथ-साथ यह प्रेरणा भी दी। जप की, मंत्र की शक्ति का बल भी होना चाहिए। अगर हम दुर्बल हैं, हमारे पास कुछ नहीं है तो कुछ भी हो सकता है। मैं ठीक कहता हूँ—कल हमारा प्रयोग नहीं होता, वह हमारे पास नहीं होती तो दस मिनट में काम शेष हो जाता। कितना भयंकर किया गया और क्या किया गया, उसका रूप भी रात में ज्ञात हो गया। यह दिख गया कि वह किस रूप में आया था।

यह सब आग्रह का परिणाम है। साधु-संतों से क्या लेना-देना किन्तु कुछ लोगों का दुराग्रह होता है कि वे इस तरह का जघन्यतम कृत्य भी कर देते हैं। किसी को घबराने या चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। बातें तो बहुत तरह की हो गईं पर आप इतना विश्वास रखें कि तेरापंथ शासन दुर्बल नहीं है और तेरापंथ का आचार्य भी दुर्बल नहीं होता है। कोई चाहे सो करे, कुछ भी होने वाला नहीं है।

बीदासर में एक भाई मुम्बई से आया। उसका नाम है किशोर भाई। वह और कुछ नहीं, पैरों की अंगुलियों को देखता है। दर्शन करने की इच्छा थी। मेरे पास आ गया। अनेक लोग मेरा फोटो देखते हैं। दर्शन करने की इच्छा हो जाती है। उसने पैरों की अंगुलियों को देखने की इच्छा व्यक्त की। कुछ हाथ और ललाट की रेखाओं को देखते हैं। उसने अंगुलियों को देखकर कहा—आप पर मारक तंत्र का प्रयोग तो होता है पर आपको होगा कुछ नहीं। आपका आभामंडल इतना शक्तिशाली है कि कुछ हो भी नहीं सकता। मैंने कहा—‘हां, लगता तो हमें भी है। गंगाशहर से तो लगातार लग रहा है कि कब क्या हो रहा है पर होगा कुछ भी नहीं, यह निश्चित है।’

कल आचानक ही हुआ। वैसे अचानक ही नहीं था। सूचना पहले ही दे दी थी। जो होना था, वह गधैयाजी की हवेली के एक कक्ष में पहले ही लिखा दिया था। रतन गधैया ने इसकी सूचना भी हमें दे दी। हम भी सावधान थे पर सब कुछ अचानक हुआ। उस समय गुरुदेव की कोई ऐसी प्रेरणा मिली, ऐसा कुछ उपक्रम हुआ, मैंने किया। मुनिजी ने किया। उस भयंकर रूप की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था। मैं इतना जोश में कभी नहीं बोलता किन्तु उस समय इतना जोश आ गया। मैंने देखा मेरे सामने यह हो रहा है। जयाचार्य की घटना सामने आ गई। यह

साधना और सिद्धि—● १४६ ●

सुनी-सुनाई बात है। कल सब कुछ आंखों के सामने हुआ। और भी बहुत बातें सामने आईं। क्या हुआ? क्या दिखा? कितना घटना प्रसंग चला। दो घंटे का समय इसी में बीत गया। हमने आहार भी नहीं किया। करते भी कैसे? गोचरी आई और उपद्रव शुरू हो गया। शाम को ही आहार किया। वातावरण ही कुछ दूसरा बन गया था। लोग आते हैं, कहते हैं—सेवा कराओ। मैंने कहा—हम दूसरे काम में लगे हुए हैं। इस प्रसंग में एक बात और कहना चाहता हूँ—यह अनुष्ठान का समय है, साधना का विशिष्ट समय है। हमें भी अपने कुछ प्रयोग करने होते हैं, अपनी व्यक्तिगत साधना करती होती है। ये प्रयोग न होते तो हम ऐसी स्थितियों से उबर नहीं सकते थे। जिसमें अपना प्रयोग नहीं होता, अपनी शक्ति का जागरण नहीं होता, जो खाली होता है, वह क्या करेगा? इसलिए आप थोड़ा-सा संवर करेंगे, आठ दिन का अनुष्ठान अभी शेष है। इन दिनों में चरण स्पर्श का प्रयत्न न करें तो ठीक रहेगा। हमें अपना काम करना है। ज्यादा समय बात भी न करें। सेवा भी कम ही करवा पाएंगे। आप लोग भी साधना करेंगे। मैं मानता हूँ जिसमें साधना का बल नहीं होता उसे हर कोई घेर लेता है। जिसके पास साधना का बल होता है, कोई कितना ही दुष्ट प्रयत्न करे, सफल नहीं हो सकता। यदि आपका आभामंडल शक्तिशाली है तो डरने की जरूरत नहीं है। कोई भी बुरी चीज पास में भी नहीं आ सकती, उसकी ताकत ही नहीं हो सकती, वह दूर से ही चली जाएगी।

प्रयत्न था हम पर। लक्ष्य थे हम। हमसे भी ज्यादा थे महाश्रमण। पर वहां नहीं हो सका, कोई दूसरा उसकी परिधि में आ गया। हम पर और इन पर नहीं हो सका किन्तु दूसरे पर थोड़ा-बहुत हो गया। पूरा नहीं हुआ। पूरा होता तो कठिनाई होती। आंशिक रूप में हुआ। इस बात पर गहराई से ध्यान दें, साधना का बल हममें होना चाहिए। गुरुदेव हमें बहुत बार प्रेरणा देते थे। एक बात हमें तीन वर्षों से कह रहे थे—तुम मुदित को अपनी कुछ शक्तियां बता दो, साधना के प्रयोग बता दो और उसे भी इस मामले में कुछ आगे बढ़ाओ। मैंने शुरू भी कर दिया था। जब चाड़वास मर्यादा महोत्सव के समय साधु-साध्वियों का आवागमन और पत्रों का आदान-प्रदान हुआ तब गुरुदेव ने एक पत्र महाश्रमण के नाम लिखा। आप गुरुदेव की दूरदृष्टि देखिए। उसमें उन्होंने संकेत दे दिया। सबके लिए बहुत उपयोगी बात लिखी। हमें शक्तिशाली बनना है। क्योंकि संघ है, अनेक तरह के लोग होते हैं, विरोधी लोग भी होते हैं, ईर्ष्यालु भी होते हैं। जहां विकास होता है वहां अकारण ही ईर्ष्या पनप जाती है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, सबके पास शक्ति का कवच, सुरक्षा का कवच होना चाहिए। याद रखें—कमजोर को हर कोई दबोच सकता है। हम अपनी शक्ति का विकास करें। कल लोगों ने कहा—हम अमुक-अमुक को बुला लें। मैंने कहा—अपनी सुरक्षा के लिए हम स्वयं सक्षम हैं। उस समय गुरुदेव ने जो मार्गदर्शन दिया, वह इस प्रकार है—

साधना और सिद्धि

● १४७ ●

अहंम ?

जैन विश्व भारती

महाश्रमण शिष्य मुदित !

सुखपृच्छ !

तुम्हे महाप्रज्ञ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला है। अपना दायित्व जागरूकता से निभाना। उनकी केवल उपासना ही नहीं करनी है। उसने कुछ उपलब्धियां भी हासिल करनी हैं। तुम्हें महाप्रज्ञ के पास ज्ञान, ध्यान और कुछ मंत्र आदि की विधियां हासिल करने का सलक्ष्य प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा करना तुम्हारे भविष्य के लिए ही नहीं, संघ हित में भी उपयोगी होगा।

-गणधिपति तुलसी

अब यत्र-तत्र कल्पना का मनगढ़ंत बात की जरूरत नहीं है। सारी स्थिति स्पष्ट बता दी है। विस्तार से ज्यादा बताने की जरूरत नहीं है, सारांश बता दिया है। दो घंटा तक क्या-क्या हुआ ? सारी बातें बताना आवश्यक नहीं मानता पर यह मानता हूं—यह शासन का प्रभाव, भिक्षु स्वामी का प्रभाव, गुरुदेव का प्रभाव था कि हम प्रभावी रहे। हम पर कोई हावी नहीं हो सका। ऐसा वातावरण बना, जिससे लगता है कि करने वाले को भी कुछ सोचना पड़ेगा, जरूर सोचना पड़ेगा।

मैं यह रहा था—ये सारी दुष्प्रवृत्तियां अध्यात्म चेतना के अभाव में होती हैं। अध्यात्म की चेतना जाग जाए, निर्मल चेतना जाग जाए, मैत्री से भावित चित्त हो जाए तो आदमी इस प्रकार की जघन्य प्रवृत्ति कभी नहीं कर सकता। उसकी चेतना उदात्त बन जाती है, उसमें सबके प्रति मैत्री का भाव होता है। जिसमें प्रमोद भावना का विकास नहीं है, करुणा का विकास नहीं है, मध्यस्थ भावना का विकास नहीं है वह दुनिया भर की उलटी-सुलटी बातें करता है। ऐसी जघन्य प्रवृत्तियों में रस लेता है।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है। जयपुर का एक अरबपति परिवार आया। जवाहरात का व्यवसायी था। उसने कहा—हम पर किसी ने तांत्रिक प्रयोग करवा दिया है। बहिन बोली—महाराज ! उनका न व्यवसाय में मन लगता है और न किसी काम में मन लगता है। सारा दिन घर में पड़े रहते हैं। मैंने कहा—यह तुम्हारा वहम होगा। कौन निकम्मा बैठा है जो इस तरह की तांत्रिक क्रिया कराएगा ? ऐसी घटनाएं बहुत आईं। मैं अनेक बार उनको टालता रहा पर जब हमने स्वयं भोगा तब लगा—ऐसे लोग विद्यमान तो हैं। हमने कुछ लोगों को प्रयोग भी बताए। लुधियाना (पंजाब) में चातुर्मास था। एक पंजाबी भाई ने बताया—किसी ने तांत्रिक क्रिया करवा दी है जिससे आकाश में मल की वर्षा होती है। रोटी बनाने का प्रयत्न करते हैं तो न जाने कहां से आकर मल गिर जाता है। कपड़ों पर मल गिर जाता है। जहां देखते हैं साधना और सिद्धि—

• १४८ •



वहीं मल होता है। उसे ओम् भिक्षु के सुरक्षाकवच की विधि बतलाई गई। भाई ने प्रयोग किया और उपद्रव शांत हो गया।

ऐसा होता है। दुनिया में ऐसे लोग हैं, जो दूसरों की प्रगति न सह सकने के कारण, ईर्ष्या और द्वेष के कारण, कभी-कभी अकारण भी ऐसे प्रयोग करते हैं, कराते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ—विघ्न, बाधा, उपद्रव आदि आना असंभव नहीं है, अस्वाभाविक भी नहीं है। जो इस दुनिया में जीएगा, उसमें ये सब आ सकते हैं किन्तु जिसके पास नमस्कार महामंत्र का कवच है, जिसके पास लोगस्स का सूत्र है, जिसके पास णमोत्थुणं का सूत्र है, जिसके पास 'नमिरुण असुरसुरगरुलभुर्यंगपरिवंदिए गय किलेसे, अरिहे सिद्धायरिय उवज्जाय सव्वसाहूय' चंद प्रज्ञप्ति की यह गाथा है, वह क्यों घबराये? इस गाथा का प्रयोग श्री मज्जयाचार्य ने बहुत किया, पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी भी इस गाथा का प्रयोग करते थे। जिनके पास ये शक्तिशाली मंत्र हैं अनेक आचार्यों के द्वारा बनाए गए रक्षाकवच हैं, उवसग्गहरं पासं का महास्तोत्र है, 'ॐ णमो भगवते पार्श्वनाथाय धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय' का शक्तिशाली महामंत्र है, उसे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। उस पर प्रयोग करने वाला स्वयं पछताएगा।

मेरे पास एक भाई आया। वह तांत्रिक था। इस प्रकार के लोग हमारे पास आते रहते हैं। मुझे इस विषय में रुचि है। उसने कहा—आपके पास बहुत शक्तिशाली मंत्र हैं। मैं भी अनेक बार यह कहता हूँ आप यह न मानें कि हम गरीब बाप के बेटे हैं। हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए बहुत संपदा छोड़ी है। हमें विरासत में बहुत मिला है। यह अलग बात है कि घर में तो धन पड़ा है और व्यक्ति भीख मांग रहा है। यह स्थिति नहीं होनी चाहिए। एक भिखारी भीख मांग रहा था। एक कुशल ज्योतिषी ने उसे देखा, उसके ललाट को देखा—वह भिखारी के पास आया, बोला—'तुम भीख क्यों मांग रहे हो?'

'मैं भिखारी हूँ, मेरे पास कुछ नहीं है इसलिए भीख मांग रहा हूँ।'

ज्योतिषी ने विश्वास भरे स्वर में कहा—'तुम भिखारी नहीं हो, तुम्हारे पास बहुत कुछ है।'

'यदि कुछ होता हो मैं भीख क्यों मांगता?'

'यह तुम्हारा अज्ञान है इसलिए तुम भीख मांग रहे हो।'

'क्या मेरे पास बहुत संपदा है?'

'हां तुम अपने कोट को खोलो।' भिखारी ने वैसा किया।

'यह गले में क्या है?'

'ताबीज है। पिताजी ने बांधते हुए कहा था, संकट में काम आएगा।'

साधना और सिद्धि ————— ● १४९ ●

ज्योतिषी बोला—‘इसे खोलो।’ उसे खोला तो निकला बढ़िया चमकता हुआ हीरा। ज्योतिषी का कथन सच हो गया। उसने कहा—‘जिसके गले में ऐसा हीरा है, लाखों की संपदा है, वह भिखारी कैसे हो सकता है?’ भिखारी ने कहा—‘मुझे यह पता नहीं था।’ यही बहुत बार होता है। हमारे पास संपदा तो बहुत है पर यही कहेंगे कि पता नहीं है। इधर उधर चक्कर लगाएंगे, दौड़ेंगे।

हमें अपनी संपदा का पता होना चाहिए कि हमारे पास क्या है? हमारे पूर्वजों ने क्या किया है और क्या दिया है? हमारे पूर्वजों ने हमें बहुत शक्तिशाली मंत्र और सुरक्षा कवच के प्रयोग दिए हैं। यदि ये ज्ञात हों तो कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। हम अपनी संपदा का, अनमोल विरासत का अहसास और अनुभव करें, यह अपेक्षित है।

जहां अध्यात्म होता है, वहां ऐसी स्थितियां कभी प्रभावी नहीं होती इसलिए हमें अध्यात्म का प्रयोग करना है और गुरुदेव के इस त्रिसूत्री मार्गदर्शन को सामने रखना है।

- ज्ञान का विकास
- ध्यान का विकास
- मंत्र विधि का ज्ञान और प्रयोग

ज्ञान अपने विकास के लिए, ध्यान अपनी अंतर्दृष्टि के विकास के लिए और मंत्र की विधियों का प्रयोग आने वाली विघ्न-बाधाओं के निवारण के लिए है। गुरुदेव ने यह जो सुन्दर दूरदर्शितापूर्ण मार्गदर्शन दिया है, उस पर हमें बहुत गंभीरता से ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

## शक्ति जागरण के बीज

शक्ति जागरण के अनेक मार्ग बतलाए गए हैं। एक मार्ग है शुभ भाव में रहना। शुभ भावों में रहने के लिए किसी मंत्र या किसी साधना की जरूरत नहीं है। केवल जागरूकता के साथ संकल्प करें कि मेरा मन शुद्ध हो रहा है, भाव शुद्ध हो रहा है, लेश्या शुद्ध हो रही है, परिणाम शुद्ध हो रहा है। शक्ति का जागरण स्वतः हो जाएगा। अप्रमत्त योगी की साधना करने वाले साधुओं की प्रतिक्षण लेश्या विशुद्ध रहती है, परिणाम धारा विशुद्ध रहती है। वे केवलज्ञान तक की स्थिति तक पहुंच सकते हैं। यह बहुत शक्तिशाली प्रयोग है। हमें इसके प्रति जागरूक रहना है कि मन में बुरे विचार न आए, बुरी कल्पना न आए, बुरे भाव न आए, अप्रशस्त लेश्या न आए। यह जागरूकता बढ़ जाए तो शक्ति अपने आप जाग जाती है। हर आदमी में इतनी जागरूकता नहीं होती।

साधना के जितने मार्ग हैं उनमें सबसे कठिन मार्ग है शुभ योग में रहना, शुभ संकल्प में रहना, विशुद्ध भावधारा में रहना। साधना की एक भूमिका है यथालंदक। इसकी साधना करने वाले निरंतर अप्रमाद अवस्था का अनुभव करते हैं। हथेली का पानी सूखे इतने समय के लिए भी यदि वे प्रमाद करते हैं तो एक बेले का प्रायश्चित्त करना होता है। शायद सबसे कठोर साधना है शक्ति के जागरण की।

शक्ति जागरण का दूसरा मार्ग है मध्यस्थ रहना। न राग की ओर झुकाव, न द्वेष की ओर झुकाव, समत्व में रहना। भगवान महावीर ने समता का प्रयोग किया था, समता का सूत्र दिया था। सामायिक शक्ति जागरण की बहुत बड़ी साधना है, इससे मनोबल और आत्मबल बढ़ता है। किंतु इसका हम मूल्यांकन नहीं कर रहे हैं। यदि सामायिक का सम्यक् प्रयोग किया जाए तो अड़तालीस मिनट का समय शक्ति जागरण का बहुत बड़ा साधन बन सकता है। अड़तालीस मिनट तक न हिंसा का व्यवहार, न असत्य का विचार, न चोरी का, न वासना का, न मूर्च्छा का और न कलह का। क्षमा, विनम्रता, ऋजुता, संतोष की चेतना अड़तालीस मिनट तक रह जाए तो उस व्यक्ति को कोई भी पराभूत नहीं कर सकता। समता और मध्यस्थता—

दोनों पर्यायवाची हैं। साधना का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है समता योग। यह अंतरंग साधन है। हर व्यक्ति यथालंदक की साधना नहीं कर सकता, अप्रमत्त रहने की साधना नहीं कर सकता, न समता की साधना कर सकता है और न शुभ संकल्प करने की साधना कर सकता है तब फिर वहीं से तो प्रारंभ करना होगा। समता योग को साधने का बाह्य साधन है श्वास का प्रयोग, प्राण का प्रयोग, मंत्र का प्रयोग आदि।

अध्यात्म की दृष्टि से विचार करें तो शक्ति जागरण का सबसे बड़ा प्रयोग है समता, मध्यस्थता, शुभ संकल्प आदि। श्वास, प्राण और मंत्र के प्रयोग दो नम्बर पर हैं। निरंतर अप्रमाद में रहें, वह सूत्र भी हमारे पास नहीं है। दसवें पूर्व में विद्या की, मंत्र साधना आदि की अनेक शाखाओं की चर्चा है किंतु वह आज उपलब्ध नहीं है। गणधर विद्या एक शक्तिशाली विद्या थी। आचार्य कोई भी व्यक्ति बन सकता है किंतु गणधर हर कोई व्यक्ति नहीं बन सकता। गणधर विद्या जिसको प्राप्त हो जाए अथवा अंतर्मुहूर्त में जो चौदव पूर्वों के ज्ञान को ग्रहण कर और उनकी पुनरावृत्ति कर ले, वह गणधर बन सकता है।

गौतम ने पूछा—भंते! संसार क्या है? महावीर ने कहा—‘उप्पन्नेइ वा’ उत्पन्न होता है। गौतम ने पूछा—भंते! यदि उत्पन्न होता रहेगा तो संसार भर जाएगा। महावीर ने कहा—‘विगमेइ वा’—नष्ट होता है। गौतम ने पूछा—यदि नष्ट ही नष्ट होता रहा तो सारा संसार खाली हो जाएगा। महावीर ने कहा—‘धुवेइ वा’—ध्रौव्य है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य यह त्रिपदी बन गई। इस त्रिपदी से गौतम को सारा ज्ञान हो गया। यह गणधर विद्या है। इसी विद्या के कारण अंतर्मुहूर्त में पूर्वज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता का जागरण होता है।

आज गणधर विद्या लुप्त हो गई। हजारों वर्षों के अंतराल में अनेक महत्त्वपूर्ण विद्याएं समाप्त हो गईं। यही कारण है कि आज भारत आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से पराङ्गमुख बन गया है। चाहे कम्प्यूटर हो, चाहे रोबोट हो, चाहे भौतिक विज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों को जानना हो, भारतीय विद्या र्थी विदेशों में जाते हैं, अध्ययन करते हैं। हमारे यहां प्राच्य विद्याएं लुप्त हो गईं। मुख्यतः तीन विद्याएं थीं— १. गणधर विद्या २. पूर्व विद्या ३. वर्धमान विद्या। प्रथम दो विद्याएं सर्वथा शेष हो गईं। तीसरी विद्या (वर्धमान विद्या) का आज भी अल्प अंश विद्यमान है। इसमें अपनी आंतरिक शक्तियों को जगाने का उपाय बतलाए गए हैं।

सबसे बड़ी कठिनाई है कि इन विद्याओं के आम्राय भी लुप्त हो गए। आम्राय के बिना सिद्धि तक पहुंचाना मुश्किल है। कल एक छोटे मुनि मेरे पास आए और कहा—‘लघिमा की साधना कैसे की जा सकती?’ मैंने कहा—‘अनेक उपाय हैं। साधना के द्वारा शरीर को हल्का बनाया जा सकता है।’ चारों तरफ भले ही कीलें बिछाई हुई हों, उन पर लेटने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वर्तमान में कई संन्यासी यह प्रयोग करते हैं। दशवैकालिक सूत्र में इसका वर्णन मिलता है—

साधना और सिद्धि—● १५२ ●

सक्का सहेउं आसाए कंटया,  
 अओमया उच्छहया नरेणं।  
 अणासए जो उ सहेज्ज कंटए,  
 वईमए कण्णसरे स पुज्जो।।

लोहे की कीलों पर सोना कठिन नहीं है लेकिन दूसरों के कटु वचनों को सहना कठिन है। लघिमा शक्ति के विकास से व्यक्ति लोह-कीलों पर आसानी से चल सकता है, पानी पर चल सकता है। इसको सिद्ध करने का एक प्रयोग है पांच प्राण-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान की साधना करना। इनको साधने से लाघिमा सिद्धि प्राप्त होती है। उदान प्राण का मुख्य स्थान है औष्ठ। जो व्यक्ति मौन करता है वह उदान की साधना करने में सफल होता है। इसकी साधना करते समय दोनों दंत पंक्तियां अलग-अलग और दोनों औष्ठ मिले हुए रहने चाहिए। औष्ठ को कपाट बना देना चाहिए। इस अवस्था में औष्ठ पर ध्यान केन्द्रित करें, दीर्घश्वास लें और संकल्प करें कि श्वास उदान प्राण को जागृत कर रहा है। इस प्रयोग से उदान प्राण पर जय होता है। यह एक उपाय है लघिमा सिद्धि प्राप्त करने का। जो व्यक्ति अपने आपको हलका अनुभव करना चाहता है उसके लिए उदान प्राण पर विजय पाना जरूरी है।

शक्ति जागरण के लिए सबसे पहला और सबसे सरल प्रयोग है श्वास। दूसरा प्रयोग उसके साथ जुड़ेगा शब्द का। शब्द में बहुत शक्ति है। मंत्र शास्त्र का एक पूरा अध्याय है जिसमें अक्षरों की व्याख्या की गई है, अक्षरों का पूरा व्याकरण है। अकार का क्या परिणाम होता है? आकार में कौनसी शक्ति है? अकार का वर्ण कैसा है? उसके उच्चारण से क्या लाभ होता है? अकार पर समग्र रूप से विचार किया गया है। अ, आ, इ, ई, आदि-आदि अक्षरों पर भी विमर्श किया गया है। योग में रुचि लेने वाले लोग जानते हैं कि प्रत्येक वर्ण के उच्चारण का क्या परिणाम होता है?

‘रं’ एक वर्ण है। नाभि पर ध्यान केन्द्रित कर हजार बार रं रं का उच्चारण करने से शरीर में गर्मी बढ़ती है। कुछ व्यक्तियों ने इसका प्रयोग किया। रं के हजार बार उच्चारण करने से एक डिग्री तापमान बढ़ गया। यदि सर्दी से ठिठुर रहे हो, रं का उच्चारण करो, सर्दी कम हो जाएगी। बहुत गर्मी लग रही है, स्वास्थ्य केन्द्र पर ध्यान कर ‘वं’ का हजार बार उच्चारण करो, तापमान संतुलित हो जाएगा, गर्मी कम हो जाएगी। लाडनूं में योगक्षेम वर्ष के समय प्रशिक्षण चल रहा था। ज्येष्ठ का महीना था। प्रचण्ड सूर्य धरती को तपा रहा था। लगभग चार सौ-साधु-साध्वियां प्रशिक्षण में भाग ले रहे थे। वे सब यथासमय प्रज्ञालोक में उपस्थित हो गए। पूज्य गुरुदेव भी वहां पधारे। साधु-साध्वियों ने वंदना की। गुरुदेव ने फरमाया—‘आज बहुत गर्मी है। ध्यान में मन कैसे लगेगा?’ गुरुदेव ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—‘बोलो, क्या करना है?’ मैंने कहा—‘सब बैठ जाओ, गर्मी की चिंता मत

साधना और सिद्धि ————— ● १५३ ●

करो।' सब बैठ गए और प्रयोग शुरू किया। मैंने सुझाव दिया—दायां नथुना बंद कर बाएं नथुने से श्वास लें। संभव हो तो 'वं' का मानसिक उच्चारण करें। लगभग तीस मिनट तक प्रयोग चला। प्रयोग करने बैठे तो श्वास गर्म था, उठे तब श्वास ठण्डा था। प्रत्येक व्यक्ति ने कहा—आज ध्यान का प्रयोग बहुत अच्छा हुआ। अक्षरों में बड़ी शक्ति है। हर एक अक्षर का अलग-अलग प्रकम्पन है, अलग-अलग रंग है। प्रत्येक प्रकम्पन शक्ति पैदा करता है।

अक्षर के बाद दूसरा उपाय खोजा गया है संयुक्त अक्षरों का। संयुक्त अक्षरों से भी शक्ति बढ़ जाती है। तीसरा उपाय खोजा गया है बीजाक्षरों का। ये बीज रूप में काम करते हैं। उसकी शक्ति और अधिक हो जाती है। 'हां ह्रीं हूं हौ हः' यह पांच वर्ण का मंत्र है जो विद्याप्रवाद से उद्धृत किया गया है। यह जैन परम्परा का बहुत शक्तिशाली मंत्र है। इस मंत्र का प्रयोग प्रचलित रहा है। 'ह्रीं' का प्रयोग जैन मंत्रों में होता था। हम सरदारशहर (सन् १९९८) का चातुर्मासिक प्रवास सम्पन्न कर भंसालीजी के बाग में आए। इसी बाग में पूज्य कालूगणी ने मुझे दीक्षा प्रदान की थी। वहीं पर देवीदत्त शास्त्री, जो मंत्र विशेषज्ञ हैं, गुलाब कोठारी, निदेशक, राजस्थान पत्रिका के साथ आए। हमने उनके साथ बातचीत की। मंत्र शास्त्र पर चर्चा की। उन्होंने कहा—'जैन मंत्रों में 'ह्रीं' का प्रयोग होता है और वैदिक मंत्रों में 'क्लीं' का प्रयोग होता है। दुर्गा के मंत्रों में 'क्रीं' का प्रयोग होता है।' जैनमंत्रों में ह्रीं, वैदिक मंत्रों में 'क्लीं' और दुर्गा के मंत्रों में 'क्रीं' की प्रधानता है। क्रीं, क्लीं और ह्रीं—तीनों शक्ति जागरण के मंत्र हैं। नवरात्र के अनुष्ठान के समय दशवैकालिक के प्रथम अध्ययन का जप 'ॐ ह्रीं क्ष्वीं क्लीं' से करते हैं। मूठ आदि के निवारण के लिए 'ह्रीं' का प्रयोग शक्तिशाली होता है। जो व्यक्ति अंतर्दर्शन की शक्ति जागृत करना चाहता है उसके लिए 'श्रीं' का प्रयोग बहुत शक्तिशाली होता है। इनका प्रयोग आत्मसिद्धि के लिए, विघ्न निवारण के लिए और विद्या सिद्धि के लिए तथा अनेक प्रयोजनों से किया जाता है। एक भाई मेरे पास आया और बोला—मेरा मन बेचैन रहता है, अशान्त रहता है। कोई ऐसा प्रयोग बताएं जिससे मेरा मन शान्त हो जाए। हमारे पास दवा तो नहीं है जिसे देकर उसका मन शान्त कर दिया जाए। मैंने कहा—तुम 'ॐ क्षौं क्षौं' का जप करो, तुम्हारा मन शान्त हो जाएगा। उसने जप का प्रयोग किया, मन शान्त हो गया, सारी बेचैनी दूर हो गई।

हम शक्ति जागरण की बात करें, सिद्धि की बात करें तो श्वास को जानना, वर्ण को जानना, मात्रिका वर्ण को जानना, संयुक्त अक्षरों का ज्ञान होना और बीजाक्षरों को जानना आवश्यक है।

## शक्ति के दो रूप

कोई आदमी सोया हुआ है, उसे जगाना है। सबसे पहले यह जानना होगा कि वह किस कक्ष में सोया हुआ है। अगर यह जानकारी नहीं होगी तो वह कैसे जागाएगा? पहले कमरे की खोज और फिर जगाने की बात होगी। हमारे भीतर भी बहुत सारे कमरे हैं, हमारे शरीर में बहुत प्रकोष्ठ हैं, सर्वप्रथम यह खोजना होगा कि शरीर में शक्ति का स्रोत कहां है? वह कहां सोई हुई है? जब तक यह पता नहीं चलता, उसे जगाने की बात कहां से आएगी। योग के आचार्यों ने शक्ति से सुप्त स्थानों को खोजा है। शक्ति की दो अवस्थाएं हैं—

१. सुप्त अवस्था
२. जागृत अवस्था

आगम का स्वाध्याय करने वाले इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं—संखितविउलतेओलेस्से—विपुल तेजोलेश्या है किंतु वह संक्षिप्त है, सोई हुई है। किसी को भी इसकी जानकारी नहीं रहती। जब वह जागृत होती है, तब विराट रूप बनता है, एक अणुबम का रूप बनता है। जैसे ही इस शक्ति का विस्फोट होता है, सोलह जनपद इसकी चपेट में आ जाते हैं। यह शक्ति हमारे शरीर के भीतर सोई हुई है, शरीर के कुछ स्थानों में एकत्रित है। हठयोग के आचार्यों ने इस स्थान का नाम चक्र और आयुर्वेद के आचार्यों ने इसका नाम दिया है मर्म। हमारे शरीर में अनेक मर्मस्थान हैं, वहां शक्ति सोई हुई है। सुश्रुत संहिता में लगभग १५७ मर्मस्थान बताये गए हैं। हठयोग के आचार्यों ने सात चक्रों का निर्देश दिया है। विशाल भूखण्ड में साधकों ने अलग-अलग स्थानों को खोज की है। चीन, जापान आदि देशों के साधकों ने भी इन स्थानों की खोज की है। सूफी मत वालों ने भी इस दिशा में प्रयास किया है। उन्होंने नए चैतन्य केन्द्रों के बारे में बताया—दाई-बाई कांख के पास और पसलियों के ऊपर, कांख के पास भी चैतन्य केन्द्र है।

इन्दौर से एक योगी आया था। शक्ति केन्द्रों की चर्चा हो रही थी। उसने कहा—आपने प्रेक्षाध्यान में तेरह शक्ति केन्द्रों की चर्चा की है। मैंने कहा—हां। चर्चा के साधना और सिद्धि ————— ● १५५ ●



प्रसंग में मैंने बताया—पूज्य गुरुदेव ने हैदराबाद की यात्रा की। वहां कुलपाक तीर्थ है, गुरुदेव पधारे। नीले प्रस्तर में महावीर की खड्गासन मुद्रा में एक मूर्ति थी। उस मूर्ति में चैतन्य केन्द्रों का विशेष अंकन किया गया था जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। मेरे पास एक फोटो था। मैंने उसको दिखाया। कुलपाक की उस प्रतिमा में दो कंधों पर दो चैतन्यकेन्द्र हैं। बिल्कुल नई बात है। जैन आगमों में आहारक लब्धि का वर्णन है। उस लब्धि का प्रस्फोट होने पर एक पुतला निकलता है। दिगंबर साहित्य में इसका बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है। आहारक लब्धि का प्रयोग करने वाला मुनि अपने कंधों से पुतला निकालता है। हमारे दोनों कंधों में दो शक्तिकेन्द्र हैं। प्रेक्षाध्यान में तेरह चैतन्यकेन्द्रों के स्थान का निर्देश किया गया है। इनकी संख्या बढ़ायी जा सकती है। कंधों पर दो शक्तिकेन्द्र मानें तो इनकी संख्या पन्द्रह हो सकती है। दोनों हाथों में मणिबंध के ऊपर और दोनों ओर पसलियों के छोर पर दो शक्तिकेन्द्र हैं। कुल मिलाकर चैतन्यकेन्द्रों की संख्या उन्नीस हो सकती है। एक्यूप्रेशर करने वाले बताते हैं कि जिस व्यक्ति को चिर युवा रहना है, उसे मणिबंध के ऊपर हमेशा प्रेशर देना चाहिए। ध्यान की गहराई में जाने पर अनुभव हुआ कि दोनों हाथों के मणिबंध के ऊपर शक्तिकेन्द्र हैं। दोनों घुटनों पर प्राणशक्ति का संग्रह है। ये भी दो शक्तिकेन्द्र हैं।

शक्तिकेन्द्र (मूलाधार चक्र) ऊर्जा का एक कुण्ड है। वहां शक्ति एकत्र होती है, फिर शक्ति का वितरण होता है। दोनों पैरों के दो अंगूठे चैतन्यकेन्द्र हैं। कुलपाक जी की प्रतिमा में अंगूठे पर सफेद-सफेद चिह्न दिखाए गए हैं। इन्द्र भगवान के अंगुष्ठ पर अपना सिर रखते हैं। एक ओर अंगुष्ठ से ज्योति निकल रही है और दूसरी ओर इन्द्र के मुकुट की मणियों से ज्योति निकल रही है। चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। प्रेक्षाध्यान का प्रारम्भ कायोत्सर्ग से करते हैं। सबसे पहले पैर के दायें अंगूठे पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। अंगुष्ठ का स्थान प्राणशक्ति का स्थान है। हमारे शरीर में अनेक स्थानों पर चैतन्यकेन्द्र हैं। जापानी साधकों ने ७०० मर्मस्थान खोज लिए हैं। उनके आधार पर एक्यूप्रेशर और एक्युपंकर की चिकित्सा चलती है, ध्यान के प्रयोग चलते हैं।

हमारा शरीर बड़ा विचित्र है। उसके भीतर शक्ति के केन्द्र छिपे हुए हैं। उन केन्द्रों को जागृत करना है। उनको जागृत करने के लिए परिणमन के सिद्धांत पर ध्यान देना होगा। परिणमन प्रतिक्षण होता रहता है। परिणमन का अर्थ है—अर्थान्तरगमन। कोई द्रव्य एकरूप नहीं रहता। वह निरन्तर बदलता रहता है। परिणमन के सिद्धांत को समझकर यदि हम अच्छे भावों के साथ इसे जोड़ दें तो हमारी शक्ति का जागरण होना संभव है।

द्रव्यानुयोग तर्कणा में दो प्रकार की शक्ति का निरूपण किया गया है—१. ओघ शक्ति, २. समुचित शक्ति। ओघशक्ति हमारे भीतर है। तेजोलब्धि, तेजोलेश्या,

साधना और सिद्धि—● १५६ ●

आहारकलब्धि हमारे भीतर है। जैन आचार्यों ने छप्पन लब्धियों का वर्गीकरण किया है। वे सभी हमारे शरीर में विद्यमान हैं। ध्यान विचार नामक ग्रंथ में अनेक शक्तियों की चर्चा मिलती है। वैष्णव और शाक्तमत में आठ महाशक्तियों और चौदह प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं का उल्लेख मिलता है। इनमें कुछ दैवी शक्तियां हैं और कुछ हमारे भीतर विद्यमान हैं। ओघशक्ति के रूप में वे हमारे उपयोग में नहीं आतीं। समुचित शक्ति बनने पर ही हमारे काम में आती हैं। हमें ओघशक्ति को समुचित शक्ति के रूप में अभिव्यक्त करना है। यही शक्ति जागरण की साधना है। यतिभोज के द्रव्यानुयोग तर्कणा में इसे उदाहरण द्वारा समझाया है। गाय घास खाती है। घास में घी की शक्ति है या नहीं? शक्ति है, पर वह ओघ शक्ति के रूप में विद्यमान है। कोई शक्ति यह नहीं कहता कि घास से घी निकला है। सामान्यतः यही कहा जाता है कि गाय ने घास खाया, दूध बना, दूध का दही जमाया। यह दही समुचित शक्ति है। दूध से घी निकल सकता है। दूध समुचित शक्ति है। वैज्ञानिक कोई प्रयोग करें तो घास को भी समुचित शक्ति बनाया जा सकता है। पेट्रोल में से कितने पदार्थ निकाले गये हैं। पेट्रोल ओघशक्ति के रूप में पड़ा था। वर्तमान में पेट्रोल से अनेक नये-नये उत्पाद हो रहे हैं। वैज्ञानिक प्रयोग अथवा साधना के प्रयोगों के बिना ओघ शक्ति समुचित शक्ति का रूप नहीं ले सकती।

## कैसे करें तैजस शक्ति का विकास ( १ )

हमारे शरीर में बिजली है, तैजस शक्ति है। इस स्थूल शरीर से परे एक सूक्ष्म शरीर है जिसका नाम है तैजस शरीर। वह वैद्युत् शरीर (electrical body) है। वहां से प्राणशक्ति का विकास हो रहा है या प्राणशक्ति का संचालन हो रहा है। बिना बिजली के कुछ भी नहीं होता। आज सारा विकास विद्युत पर आधारित है। एक दिन बिजली गायब होती है, चारों ओर अंधकार छा जाता है, कारखाने बंद हो जाते हैं, बहुत सारा कार्य ठप्प हो जाता है। एक समय था जब पावर हाऊस से बिजली की सप्लाई होती थी किन्तु मनुष्य ने उपाय खोज लिया जेनरेटर का। आज उसके माध्यम से घर-घर में विद्युत उपलब्ध हो गई है।

तैजस शरीर का विकास होने पर पाचन तंत्र ठीक होता है, तृप्ति का अनुभव होता है और चेहरे की तेजस्विता बढ़ती है। तैजस शरीर को साधने का एक उपाय है चौविहार (निर्जल) उपवास। यह हमारी तैजस शक्ति को बढ़ाता है। भगवान महावीर की समग्र तपस्या निर्जल थी। उन्होंने उपवास कभी भी नहीं किया। उनका तप बेले से लेकर छः मास तक था। आज वह तपस्या असंभव-सी लगती है कि कोई व्यक्ति छः मास बिना जल के उपवास करे। इतने लम्बे समय तक जीवित रहना भी मुश्किल है। एक मास से अधिक निर्जल उपवास भी दुष्कर तप है। वर्तमान में जल के सहारे उपवास करते हैं।

तैजस शरीर का एक लक्षण है आकर्षण पैदा करना। जिसके शरीर में तैजस का विकास होता है उसका आभामण्डल तेजोमय बन जाता है। जिस व्यक्ति के शरीर में विद्युत बहुत ज्यादा सक्रिय होता है, उसका व्यक्तित्व आकर्षक होता है। सन् १९९९ में लाडनू में दो साध्वियों ने लम्बी तपस्या की। फिर अनशन किया। साध्वी चंपाजी का पहले स्वर्गवास हो गया और साध्वी सजनांजी का बाद में। लम्बी तपस्या और अनशन ने जनमानस में आकर्षण पैदा कर दिया। सम्प्रदाय का भेद, जाति का भेद सारा समाप्त हो गया। बिना किसी भेदभाव के सैकड़ों लोग दर्शन करने आते। जो लोग कभी साध्वियों के स्थान पर नहीं आते वे लोग भी आने लग गए। सजनांजी तो एक वर्ष पहले भी वहीं थी। इनको कोई नहीं जानता था। सेवा में रहने

साधना और सिद्धि—● १५८ ●

वाली वृद्ध बहिनें शायद उन्हें जानती होंगी। तपस्या और अनशन से तैजस शक्ति का विकास हो गया, आकर्षण बढ़ गया। ठिकाने में लोगों की भीड़ लग गई। लाडनूँ और लाडनूँ से बाहर के भी अनेक व्यक्तियों का आवागमन चलता रहता था।

यह आकर्षण क्यों पैदा हुआ ? क्या इस आकर्षण का कोई बाहरी निमित्त था ? आकर्षण का हेतु था तपस्या। इससे तैजस का शरीर सक्रिय हो गया, विद्युत सक्रिय हो गई और उसने ऐसा आकर्षण पैदा किया कि सबको अपनी ओर खींच लिया। उपवास, लम्बी तपस्या, अनशन—ये सब तैजस शरीर को सक्रिय बनाते हैं।

यह निश्चित सूत्र है कि ज्यादा खाने वालों का तैजस शरीर विकसित नहीं होता। उनका आभामण्डल तेजस्वी नहीं बनता। उनकी तैजस शक्ति कमजोर हो जाती है। तैजस शक्ति को बढ़ाने का एक बहुत बड़ा साधन है उपवास, तपस्या। कम इसे गौण न मानें। ध्यान का महत्त्व है, स्वाध्याय का महत्त्व है किन्तु तपस्या का भी हम महत्त्व नहीं है। उपवास सब व्यक्ति नहीं कर सकते। आयम्बिल करें, कम द्रव्यों का सेवन करें, आहार की मात्रा का परिमाण करें। आहार का संयम जरूरी है। इसके बिना तैजस शरीर के विकास में बाधा पैदा होती है।

तपस्या और अनशन ने एक अद्भुत वातवारण का निर्माण कर दिया। उनके संदर्भ में मैंने तीन पद्य लिखे हैं—

निर्मलता, ज्योतिष्मती, प्रगटी दोनों साथ ।  
सजनांजी का लक्ष्य की, ओर बढ़ा जब हाथ ॥  
जिनशासन की, त्याग की, महिमा बढ़ी अपार ।  
भैक्षव गण को मिल गया, एक नया उपहार ॥  
साध्वी प्रमुखा का मिला, सतत सुखद सहकार ॥  
त्याग समन्वय-यंत्र है, सब जन एकाकार ॥

सब कुछ एकाकार हो गया। लाडनूँ में हमारी या गुरुदेव की अनुपस्थिति में किसी भी साधु या साध्वी को अन्त्येष्टि में बहुत कम लोग आते हैं। लाडनूँ के इतिहास में यह पहला अवसर था कि किसी साध्वी की अन्त्येष्टि क्रिया में लगभग दो हजार आदमी सम्मिलित हुए। इसमें केवल श्रावक ही नहीं, श्वेताम्बर, दिगम्बर सभी संप्रदायों के लोग थे। सब जाति के लोग थे। इससे निष्कर्ष निकला कि त्याग समन्वय का मंत्र है। जहां त्याग है वहां सब एक हो जाते हैं। त्यागी व्यक्ति के समक्ष सबका सिर झुक जाता है। वह सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

जीवन चलाने के लिए खाना जरूरी है और जीवन को तेजस्वी बनाने के लिए खाना छोड़ना भी जरूरी है। अगर यही मान लें कि केवल खाना ही जरूरी है तो फिर तेजस्विता की बात समाप्त हो जाएगी। ठूंस-ठूंस कर खाते रहो, पेटू बन

साधना और सिद्धि ————— ● १५९ ●

जाओ, जीवन में कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकते। खाने का संयम करना बहुत बड़ी शक्ति है।

तैजस शक्ति के विकास का एक महत्वपूर्ण साधन है मंत्र। नमस्कार महामंत्र का पाठ करते समय उसके एक अक्षर 'ण' पर विचार करें। इसका विद्युत केन्द्र कहां है? विद्युत के दो प्रकार हैं—पोजिटिव (धन) विद्युत और निगेटिव (ऋण) विद्युत। हमारे मस्तिष्क में पोजिटिव विद्युत है और हमारी जीभ में निगेटिव विद्युत। जब हम नमस्कार महामंत्र में 'णमो अरहंताणं' में 'ण' का उच्चारण करते हैं उस समय जीभ ऊपर की ओर आती है, उसका तालु से घर्षण होता है। तालु मस्तिष्क की निचली परत है। यह घर्षण वैसा ही है जैसा खेचरी मुद्रा में होता है। घर्षण होने का अर्थ ही है कि धन विद्युत और ऋण विद्युत मिल रहे हैं। इनके परस्पर मिलने पर प्रकाश होता है। अभी बल्ब जल रहा है, ट्यूब लाइट जल रही है। इन्हें कौन ज्वलित कर रहा है? क्या केवल पोजिटिव चार्ज से प्रकाश हो रहा? क्या केवल निगेटिव चार्ज से प्रकाश हो रहा है? केवल पोजिटिव या केवल निगेटिव चार्ज से प्रकाश नहीं होता। प्रकाश के लिए पोजिटिव और निगेटिव चार्ज का मिलना आवश्यक है। वैसे ही जीभ का तालु के साथ स्पर्श होते ही एक नया प्रकाश मिलता है। 'णमो' का लयबद्ध उच्चारण तैजस शक्ति के विकास में सहायक बनता है।

नमस्कार महामंत्र के एक-एक अक्षर का विश्लेषण किया जाए, इसका वैज्ञानिक आधार खोजने का प्रयत्न किया जाए तो इस आधार पर एक नए ग्रंथ का निर्माण किया जा सकता है। प्रत्येक अक्षर में शक्ति निहित रहती है। महामंत्र के प्रत्येक अक्षर का मंत्रशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण करें, ध्वनिशास्त्र या प्रकम्पनों की दृष्टि से विचार करें, उस अक्षर की शक्ति का हमें स्पष्ट अनुभव होगा। अन्यथा यही समझा जाता है कि इनमें कौनसी गंभीर बात थी। अर्हत् को नमस्कार, सिद्ध को नमस्कार, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सब साधुओं को नमस्कार। नवकार मंत्र का अनुवाद के साथ उच्चारण कर दिया। समग्र विषय बदल गया। कुछ लोग प्राकृत भाषा में मंत्र को नहीं बोल सकते। वे उसका हिन्दी रूपान्तरण कर उच्चारण करते हैं। इसमें शक्ति का विकास नहीं होगा। मंत्रकर्ता ने जिन अक्षरों का विन्यास किया है उनके ध्वनि प्रकम्पन विशेष प्रकार के हैं। बहुत बार लोग कहते हैं प्रतिक्रमण का हिन्दी में अनुवाद कर दें। एक भाई आया और बोला—'भक्तामर के पाठ का उच्चारण शुद्ध नहीं कर सकता, हिन्दी अनुवाद का पाठ करने से काम बन जाएगा?' मैंने कहा—'पाठ करने में तुम स्वतंत्र हो। पर तुम भक्तामर स्तोत्र के पाठ द्वारा जो चाहते हो वह तुम्हें नहीं मिलेगा। भक्तामर स्तोत्र में आचार्य मानतुंग ने जिन वर्णों का विन्यास किया है, उनसे जो शक्ति पैदा होती है, उससे जो लाभ मिलना चाहिए वह तुम्हें नहीं मिलेगा।' अनुवाद हिन्दी, प्राकृत अथवा संस्कृत किसी भी भाषा में हो सकता है। अनुवाद आखिर अनुवाद है। कभी-कभी अनुवाद अधिक जटिल बन

साधना और सिद्धि—● १६० ●

जाता है। संस्कृत में 'इन्द्र' शब्द था। अनुवाद करने वालों ने 'इन्द्र' के स्थान पर 'शक्र' शब्द का प्रयोग कर दिया। इन्द्र तो आसानी से समझ में आता था किन्तु शक्र शब्द जटिल बन गया। मैंने बहुत पहले एक कविता लिखी थी, उसका ध्रुव पद है—  
सहज सरल जीवन की पोथी।

बड़ा जटिल अनुवाद हो गया।

जीवन की पोथी सरल है किन्तु उसका अनुवाद बड़ा जटिल बन गया। तुम अनुवाद की बात मत सोचो, उच्चारण को शुद्ध करना सीखो, इससे एक नई शक्ति पैदा होगी।

तैजस शक्ति के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है स्वाध्याय। उत्तराध्ययन सूत्र में स्वाध्याय के पांच प्रकारों का वर्णन मिलता है—वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा। एक मंत्र की सौ बार, हजार बार आवृत्तियां करते चले जाओ। आवृत्ति करते-करते एक ऊर्जा का वलय बनेगा। यह वलय दीर्घकालीन अभ्यास के बाद बनता है। मंत्रशास्त्र में बतलाया गया है कि किसी भी मंत्र को सिद्ध करना है तो कम से कम साढ़े बारह हजार जप करो, सवा लाख का जप करो। अधिक विकास करना है तो सवा करोड़ का जप करो। मंत्र की पुनः पुनः आवृत्तियां करने से घर्षण होगा, प्रकम्पन होगा। वह प्रकम्पन आकार का रूप ले लेता है।

ध्वनि क्या है? मात्र प्रकम्पन। रंग क्या है? वह भी प्रकम्पन है। प्रकम्पन घनीभूत हुए, आकार बन गया, हमें दिखाई देने लग गया। प्रकम्पन घनीभूत हुआ, भाषा बन गई, हमें सुनाई देने लग गई। स्वाध्याय के द्वारा प्रकम्पन पैदा होते हैं। प्रकम्पन निराकार को साकार बनाने का साधन है, अनाकार को आकार देने का साधन है। प्रकम्पन एक-दो बार उच्चारण करने से नहीं बनते। उसी लय में, उसी ध्वनि में, उसी दिशा में बार-बार बोलते जाओ। पुनः पुनः उच्चारण से प्रकम्पन शक्तिशाली बन जाएंगे, उनसे एक नए आकार का निर्माण हो जाएगा।

सूक्ष्म परमाणु स्थूल बनते हैं। चतुःस्पर्शी परमाणु अष्टस्पर्शी बनते हैं। परमाणु में एक रस, एक गंध, एक वर्ण और दो स्पर्श होते हैं। वह जब स्कन्ध का आकार लेता है तब अष्टस्पर्शी बन जाता है। आठ स्पर्श स्कन्ध में कहां से आए? ये परमाणु में से ही प्रकट होते हैं। जैसे-जैसे प्रकम्पन बढ़ते हैं, आकार बन जाता है। चतुःस्पर्शी स्कन्ध हमारे लिए अनाकार है, अरूपी है, उसे हम देख नहीं सकते। वही जब अष्टस्पर्शी स्कन्ध बनता है तब दृश्य बन जाता है। अदृश्य से दृश्य कैसे बना? आनाकार से साकार कैसे बना? भारतीय वैज्ञानिक सुदर्शन ने अमेरिका में भारहीन परमाणु की खोज की। परमाणु भारहीन है तो उसमें भार कहां से आया? आकार होगा तो भार आ जाएगा। चतुःस्पर्शी भारहीन था अष्टस्पर्शी बनते ही भारयुक्त बन गया।

अनाकार को आकार देना हमारे हाथ में है। हम मंत्र के द्वारा प्रकम्पन पैदा करते हैं। प्रकम्पन होते-होते इतने शक्तिशाली बन जाते हैं कि हमारी कल्पना आकार ले लेती है। कई लोग कहते हैं कि हमें भिक्षु स्वामी का दर्शन हुआ, महावीर का दर्शन हुआ। कुछ कहते हैं हमें श्रीकृष्ण का साक्षात्कार हुआ, श्रीराम का साक्षात्कार हुआ। भिक्षु, गुरुदेव, महावीर, राम और कृष्ण आपके पास न आए हैं, न आएंगे। आपने अपनी साधना के द्वारा ऐसे परमाणुओं की संरचना की है जिनसे वह आकार आपके सामने आकर खड़ा हो जाता है। कहने वाला भी गलत नहीं कह रहा है। वह कभी बातचीत भी करता है, साक्षात् देखता है और प्रेरणा भी देता है। यह मानसिक प्रक्षेपण (Mental Projection) है। हमारी आवृत्तियां इतनी सघन होती हैं कि हमारे आसपास के परमाणु एक विशेष आकार का निर्माण करते हैं। महावीर का निर्वाण हो गया, वो मोझ में हैं। वे यहां कैसे आएंगे? मैंने श्रमण महावीर पुस्तक लिखी। उसमें मैंने लिख दिया कि मैंने महावीर से सम्पर्क किया। आज भी लोग प्रश्न करते हैं कि महावीर के साथ सम्पर्क कैसे हो सकता है? महावीर का, भिक्षु का गहराई से ध्यान करो, महावीर, भिक्षु तुम्हारे सामने आकर खड़े हो जाएंगे। इस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करो, अनाकार को आकार मिल जाएगा, निराकार साकार हो जाएगा। यह सारा प्रकम्पनों का प्रयोग है।

हम मंत्र की शक्ति को समझने का प्रयत्न करें। यह प्रकम्पन से पैदा होने वाली शक्ति है। इस शक्ति से अनेक प्रकार के कार्य किए जा सकते हैं। तैजस शक्ति को विकसित करने के अनेक साधन बतलाए गए हैं। एक साधन है तपस्या। हम स्वयं इसका अनुभव करें, प्रयोग करना शुरू करें। एक दिन आएगा कि हमें पूछना नहीं पड़ेगा कि तैजस शक्ति का विकास कैसे होता है?



## कैसे करें तैजस शक्ति का विकास ( २ )

सौरमंडल में सबसे ज्यादा तैजस शक्ति सम्पन्न है सूर्य। कुछ लोग मानते हैं सूर्य से सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसी सूर्य की साधना कविराज गोपीनाथ के गुरु स्वामी विशुद्धानन्दजी ने की थी।

कुछ अन्य लोग भी इसके रहस्य को जानते हैं। सूर्य की रश्मियों का समुचित योग करने पर पदार्थ का निर्माण किया जा सकता है। इसके अनेक प्रयोग किये गए हैं। भावितात्मा अनगार के लिए भी ऐसा उल्लेख मिलता है। वह एक घड़े में से हजार घड़ों का निर्माण कर सकता है। एक वस्तु से अनेक वस्तुओं का निर्माण कर सकता है। सूर्य में वह शक्ति है और वही हमारी प्राण शक्ति का आधार है। बहुत बार इसका अनुभव होता है। बैंगलोर चातुर्मास में सूरज बहुत कम देखने को मिलता था। लगभग आसमान में बादल छाए ही रहते थे। सूर्य की रश्मियां शरीर पर नहीं पड़ती थीं। उस समय प्रत्यक्ष अनुभव किया था कि सूर्य शरीर और चिंतन दोनों को प्रभावित करता है। आकाश निरन्तर बादलों से घिरा रहे और सूर्य की ऊर्जा न आये तो पाचन तंत्र पर भी असर होता है। इसका मतलब है शरीर पर भी असर होता है। आयुर्वेद के आचार्य कहते हैं कि वर्षा के समय सूरज का तेज कम मिलता है इसलिए भोजन कम कर दो। गरिष्ठ चीजों का वर्जन कर दो क्योंकि उस समय जठराग्नि मंद रहती है।

आजकल बारह महीने हरे शाक खाए जाते हैं। पंडित रघुनन्दनजी आयुर्वेद की आचार्य थे, कहते थे कि श्रावण और भाद्रपद में हरा शाक नहीं खाना चाहिए, सूखे शाक खाने चाहिए क्योंकि वे शरीर के लिए लाभदायी नहीं होते, वायु को कुपित करते हैं, शरीर को विकृत बनाते हैं। किन्तु आज यह धारणा नहीं है। आज बारह महीने हरी सब्जी खाने का सुझाव देते हैं। अलग-अलग मान्यताएं होती हैं पर यह मान्यता तो निश्चित है कि सूर्य दिखाई नहीं देता, वह दिन भी अच्छा नहीं माना जाता है। बहुत बार आकाश बादलों से घिरा रहता है, घटाएं उमड़ती हैं। संस्कृत के कोशकारों ने पता नहीं, उस दिन को दुर्दिन क्यों कहा, वह दिन सुदिन होना चाहिए। वर्षा आने की तैयारी है, काली घटाएं मंडरा रही हैं, कितना सुहावना, लुभावना और मनभावना दृश्य होता है, फिर वह दुर्दिन क्यों? यह स्पष्ट है, जो बादल बहुत गहरे

साधना और सिद्धि ————— ● १६३ ●

होते हैं, अंधकार चारों ओर छा जाता है वह दुर्दिन है। दुर्दिन कहने का एक आशय है—सूरज नहीं दिख रहा है, सूरज दिखाई न दे, वह दिन अच्छा कैसे होगा! दिन का कर्ता कौन है? दिनमणि, दिनकर। आजकल दिनकर नाम भी रख लेते हैं पर वास्तव में दिनकर कौन होता है? उपनाम से दिनकर नहीं होता है। दिनकर तो वह होता है जो दिन का निर्माण करता है। जब सूरज अदृश्य है तब सुदिन कैसे संभव है?

सूर्य का तैजस शक्ति के साथ बहुत गहरा संबंध है। इस सचाई को योग के आचार्यों ने पकड़ा, अध्यात्म के आचार्यों ने पकड़ा। उन्होंने एक विधि निश्चित की, उसका नाम है आतापना। भगवान महावीर एवं अन्य साधु भी आतापना का प्रयोग करते थे। भगवान महावीर से पूछा—भंते! तेजोलब्धि का विकास कैसे होता है? वह कैसे प्राप्त होती है? महावीर ने अनेक उपाय बतलाए। उनमें एक है आतापना, सूर्य का आतप लेना। सूर्य का आतप, हमारे तैजस शरीर को शक्तिशाली बना देता है। मैंने स्वयं अनुभव किया है। मुनि सुखलालजी ने भी किया। वे गरम शिला पर जाकर निर्वस्त्र लेट जाते थे। यह क्रम काफी समय तक चालू रखा था। वैसी आतापना का अभ्यास हमने नहीं किया। आतापना का मुख्य समय होता है प्रातः काल सूर्योदय के पश्चात् एक घंटे, डेढ़ घण्टे तक का समय। आतप में धूप स्नान करना, वस्त्रों को हटाकर सूर्य की किरणों के साथ सीधा संपर्क करना, आतप लेना, यह आतापना की विधि है। आगम साहित्य में और भाष्य साहित्य में आतापना की बहुत बड़ी व्याख्या मिलती है। आतापना कैसे ले? इसका वर्णन भगवती में उपलब्ध है। साधक दोनों हाथों को ऊंचा कर सूर्य के सामने खड़ा हो जाए और फिर सूर्य का आतप ले। ध्यान विकास के लिए बहुत आवश्यक है। बहुत वर्षों पहले गुरुदेव बीकानेर पधार रहे थे। हम दिल्ली में कठोतिया भवन में थे। एक संन्यासी आया। उसने कहा—मुझे पूर्वाभास होता है, मैं आगे की बात बता सकता हूँ। उसके साथ हमारी लम्बी चर्चा हुई। मैंने पूछा—क्या साधना की है? उसने कहा—सूर्य की साधना की है नदी के जल में जाकर। सनातनी साधुओं की विधि के अनुसार नदी में घुटनों तक पानी में जाकर खड़ा हो जाता। सूर्य के सामने अनिमेष दृष्टि से देखता रहता। इस प्रयोग का अभ्यास करने से आभास होने लग गया। तैजस शक्ति का विकास होने पर भविष्य दिखाई देने लग जाता है। बात बिलुकल ठीक है। तैजस की साधना से ज्ञान बढ़ता है, अंतर्दृष्टि जागृत हो जाती है और शरीर सक्रिय हो जाता है। सूर्य की साधना आतापना का बहुत बड़ा प्रयोग है। शिला पर सोने वाली बात तो शायद मध्यकाल में या उत्तरकाल में चल पड़ी। प्राचीनकाल में ऐसा नहीं होता था। सूर्य के सामने या सूर्य को पीछे रखकर आतापना ली जाती थी। यह तैजस शक्ति के जागरण का बहुत बड़ा प्रयोग है। जब शरीर ढीला, शिथिल, आलसी-सा हो जाता है तब तैजस शक्ति की कमी होती है, आलस्य आने लगता है। इसका मतलब है कि तैजस शक्ति ठीक काम नहीं कर रही है, तैजस शरीर सक्रिय नहीं है। तैजस शरीर को शिथिल कौन

साधना और सिद्धि—● १६४ ●

करता है ? उसे जो आहार मिलना चाहिए। वह नहीं मिलता। उसका आहार है सूर्य का तेज, वह नहीं मिलता तब शरीर में शैथिल्य का अनुभव होता है।

वर्तमान में तैजस शरीर को जागृत करने में बहुत कठिनाई है। फ्लेट में रहने वाला मनुष्य तैजस शरीर को कैसे सक्रिय करेगा। खुले आकाश में नहीं रहता, जंगल में नहीं रहता, खुले स्थान में नहीं रहता, खुले मकान में नहीं रहता। वह तैजस शरीर को कैसे सक्रिय कर पाएगा ? मैं जैन विश्व भारती के एक प्रकोष्ठ में बैठा था। कुछ लोग दिल्ली से आए। वास्तुशास्त्र के अच्छे जानकार थे। कक्ष में प्रवेश करते ही उन्होंने कहा—यह मकान किसने बनाया ? हमें तो पता नहीं—किसने बनाया है। उसने कहा—जिसने भी बनाया वह बहुत समझदार था, गोल कमरा, खिड़कियां खुली, प्रकाश, धूप और हवा का आगमन हो रहा है। प्रवेश के साथ ही व्यक्ति सवस्थता का अनुभव करता है। आजकल घरों में खिड़कियां नहीं होतीं, चारदीवारी बंद, पंखे की हवा, बिजली का प्रकाश दिखाई देता है। पता नहीं चलता कि सूर्य उगता है या नहीं। हम भी अनेक बार ऐसे मकानों में रहे, जहां सहज बिजली और हवा का प्रवेश नहीं। ऐसे स्थानों पर पता ही नहीं चलता कि दिन भी कुछ होता है। तैजस शरीर का विकास कैसे होगा ? तैजस शरीर का विकास नहीं होगा तो तेजोलेश्या का विकास भी नहीं होगा। तेजोलेश्या का विकास नहीं होगा तो विनम्रता कहां से आएगी ? उत्तराध्ययन सूत्र में तेजो लेश्या के परिणाम बतलाए गए हैं—

नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले।

विणीयविणए दंते, जोगवं उवहाणवं॥

जो मनुष्य नम्रता से वर्ताव करता है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहली है, विनय करने में निपुण है, दान्त है, समाधि-युक्त है, उपधान (श्रुत अध्ययन करते समय तप) करने वाला है।

पियधम्मे दढधम्मे, वज्जभीरू हिएसए।

एयजोगसमाऊत्तो, तेउलेसं तु परिणमे॥

धर्म में प्रेम रखता है, धर्म में दृढ़ है, पाप-भीरू है, हित चाहने वाला है— जो इन सभी प्रवृत्तियों से युक्त है, वह तेजोलेश्या में परिणत होता है।

तेजोलेश्या के बिना वह विनम्र कैसे बनेगा, अचपल कैसे बनेगा, अमायी कैसे बनेगा, चपलता कैसे कम होगी ? तेजोलेश्या का विकास न होने के कारण आदमी में चंचलता बढ़ती है। इसी कारण वह ज्यादा नशा करता है। मानसिक बीमारियां होती हैं। तनाव बढ़ता है। आज मकानों की बनावट ने शारीरिक स्वास्थ्य को ही नहीं, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को भी बिगाड़ा है। बाहर धूप से अंदर एयरकण्डीशन्ड कमरे में जायें, अच्छा लगता है। दिमार्ग ठण्डा रहता है, दिमाग को विश्राम मिलता है। किंतु समझदार व्यक्ति इस बीमारी के मूल को घर में

लाना पसंद नहीं करेगा। अमेरिका का प्रसिद्ध उद्योगपति जॉन्सन बीमार हो गया। डॉक्टरों से इलाज करवाया किन्तु ठीक नहीं हुआ। आखिर एक प्राकृतिक चिकित्सक के पास गया। चिकित्सक ने देखा—रोगी की चिकित्सा करने की प्रबल अभीप्सा है। उसने उसे स्वीकार कर लिया। चिकित्सक ने कहा—प्राकृतिक चिकित्सा में दवाई नहीं लेते, तीन घंटा, तीन बार गर्म पानी के टब में बैठ जाओ, ठीक हो जाओगे। उसने इलाज शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उसका रोग ठीक होने लग गया। एक दिन मन में विचार आया कि यह तो बड़ी विडम्बना है कि तीन घंटा पानी के टब में बैठता हूँ और घर, कार आदि में ए.सी. में रहता हूँ। धीरे-धीरे वह प्राकृतिक जीवन जीने का आदी हो गया और पूर्ण स्वस्थ भी हो गया।

सूर्य का आतप स्वस्थता का बहुत बड़ा हेतु है। जहां सूर्य का प्रकाश, सूर्य की रश्मियां, सूर्य का आतप न मिले, वहां रहना अच्छा नहीं होता। बहुत बार लोग सोचते हैं कि आज तो गर्मी में आना पड़ा, धूप में रहना पड़ा। कभी-कभी हमारे मुनि लोग भी सोच लेते हैं, धूप में जाना पड़ा, धूप में यह काम करना पड़ा। थोड़ा कष्ट हो सकता है पर हमें लाभ ज्यादा है कि शरीर को धूप लगी, इसका मतलब है सारे कीटाणु समाप्त हो गये, बीमारियां तो स्वतः ही दूर हो जाएंगी।

कुछ चीजें ऐसी होती हैं जो प्रारंभ में अच्छी लगती हैं किन्तु उनका परिणाम अच्छा नहीं होता। आइसक्रीम, कोकाकोला और शीतलपेय सेवन काल में अच्छे लगते हैं पर परिणाम काल बुरा होता है। एक दिन मुनि धर्मरुचि ने एक लेख सुनाया। उस लेख को पढ़ने वाला ठण्डा, ठण्डा कोकाकोला, गर्म चीजें, क्रीम या डिब्बाबंद चीजों का त्याग कर देगा। यह धर्म का, अध्यात्म का सिद्धांत है कि एक चीज सेवनकाल में अच्छी लगती है, परिणाम अच्छा नहीं होता। एक चीज सेवनकाल में अच्छी नहीं लगती, लेकिन उसका परिणाम अच्छा होता है। अधिक ठंडे पदार्थ शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि ठंडक काम की नहीं है। जो कृत्रिम ठंडक है, जहां सूर्य का तेज न मिलता हो, वह अच्छा नहीं होता। सूर्य का प्रकाश बहुत जरूरी है। कुछ दिनों पूर्व एक भाई दर्शनार्थ आया। सेवा कर सकुशल घर पहुंच गया। घर पहुंचते ही उसका अकस्मात देहावसान कैसे हुआ? कारण पूछा। बताया गया कि हृदय की बीमारी थी और ठंडे पानी से स्नान कर लिया। बहुत ठंडा पानी, सर्दी की मौसम में हृदय के लिए जहर होता है। उस ठंडे पानी ने उस व्यक्ति का काम तमाम कर दिया। हमें ध्यान देना है साधना के क्षेत्र में गर्मी का ज्यादा महत्व है। तेजोशक्ति, तेजोलेश्या का विकास करने के लिए गर्मी को सहन करना है। कुछ लोग नदी के तट पर साधना करते थे। वे बार-बार स्नान करते थे और यह समझते थे कि बार-बार स्नान करना अच्छा है। महावीर ने इस बात को महत्व नहीं दिया। उनके दृष्टिकोण के अनुसार स्नान न करना और ज्यादा अच्छा है। बार-बार स्नान करेंगे तो हमारी ऊर्जा, उष्मा समाप्त हो जाएगी। सामान्यतः कहा जाता है—

साधना और सिद्धि—

हाथ-पैर गर्म और सिर ठंडा रहे। यह ठीक है कि हमारा सिर ठंडा रहे, उष्मा समाप्त न हो। उष्मा समाप्त हो जाए तो सिर निकम्मा हो जाएगा। इसलिए तैजस शक्ति के विकास का बहुत बड़ा साधन है आतापना, सूर्य का आतप लेना, सूर्य के आतप में बैठना। सरदारशहर चातुर्मास में मैं और मुनि ताराचन्दजी एक घंटा तक अचेलावस्था में आतापना लेते थे। स्वरूपचन्दजी शुभकरणजी दुगड़ के घर की छत पर मैं और मुनि ताराचन्दजी चले जाते। इस प्रयोग के अच्छे परिणाम आए।

एक दिन मुनि गणेशमलजी गुरुदेव के पास में आए, उनका गला कपड़े से बांधा हुआ था। गुरुदेव ने कहा—‘क्या कर रहे हो, बीमारी को निमंत्रण दे रहे हो? इससे हवा भी नहीं लगेगी, धूप भी नहीं लगेगी, गला खराब हो जायेगा।’ पूरी तरह गले को बांधना अच्छा नहीं होता। शरीर के हर अवयव को, हर अंग को खुली हवा और धूप लगनी चाहिए। आतापना तैजस शक्ति के विकास का एक साधन है। तैजस शक्ति के विकास का बहुत बड़ा साधन है पवन का सेवन। यह योग का शब्द है। नाक के दो नथुने हैं—एक सूर्य नाड़ी (सूर्य स्वर) का और एक चन्द्र नाड़ी (चन्द्र स्वर) का। जिसको तैजस शक्ति का विकास करना है, उस व्यक्ति को सूर्य स्वर का, सूर्य नाड़ी का प्रयोग विवेकपूर्वक करना चाहिए। बिना मार्गदर्शन के खतरा हो जाता है। ज्ञान पूर्वक सूर्य नाड़ी का प्रयोग करना, सूर्य स्वर का प्रयोग करना, तैजस शक्ति के विकास का बहुत बड़ा साधन है। भस्त्रिका, कपालभाति, सूर्यभेदी प्राणायाम के अभ्यास से तैजस शक्ति का विकास होता है।

जब मैं चौथे दशक में था उस समय मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। ऐलोपैथिक दवाई का रिएक्शन हुआ और काफी लंबे समय तक मुझे उसे भुगतना पड़ा। स्थिति चिंतनीय बन गई। पंडित रघुनंदनजी आए। नाड़ी देखी और उन्होंने कहा, आप जी कैसे रहे हैं? उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। आज चालीस वर्ष के बाद कह सकता हूँ कि आज मैं पूर्णतः स्वस्थ हूँ। स्वस्थता का रहस्य क्या है? ठीक समय पर चन्द्र स्वर का प्रयोग किया, ठीक समय पर सूर्य स्वर का प्रयोग किया, सूर्य की शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न किया, सूर्य चक्र की साधना का प्रयोग किया। इन प्रयोगों से स्वास्थ्य की स्थिति में परिवर्तन हो गया।

तैजस शक्ति के विकास का एक साधन है आकाश मंडल में रहने वाला सूर्य। एक सूर्य शरीर के भीतर रहता है। हमारा तैजस केन्द्र सूर्य का स्थान है। इन दोनों सूर्यों की उपासना और साधना के द्वारा तैजस शक्ति का विकास किया जा सकता है, बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं। अगर तैजस शरीर सक्रिय नहीं है तो मनोबल कहां से होगा? तैजस शरीर सक्रिय नहीं है तो संकल्प शक्ति का विकास कैसे होगा? तैजस शरीर का विकास नहीं है तो सहन करने की शक्ति कैसे आएगी? कोलकाता, दिल्ली, मुम्बई के फ्लेट में रहने वालों में सहनशक्ति का विकास कैसे होगा? बेचारों को पूरा भोजन ही नहीं मिलता। भोजन का मतलब रोटी, पानी नहीं,

जो सहन करने की शक्ति का भोजन चाहिए अर्थात् खुली हवा, खुला आकाश, खुला वातावरण और खुली धूप। वह नहीं मिलती है तो सहन करने की शक्ति कहां से आएगी? सहन करने की शक्ति उसकी तेज होगी जिसका तैजस शरीर शक्तिशाली होगा और तैजस शरीर उसका शक्तिशाली होगा जिसको बाहर-भीतर के सूर्य का प्रकाश और आतप मिलता रहेगा।

तैजस शरीर के विकसित होने पर व्यक्ति बड़े से बड़ा काम कर सकता है। मैंने देखा—आचार्य तुलसी का तैजस शरीर प्रबल था, शक्तिशाली था, उसी के आधार पर उन्होंने बड़े-बड़े कार्य किए। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में यदि बड़े कार्य संपादित करना चाहता है तो उसे तैजस शक्ति को विकसित करने की साधना करनी होगी।

## शक्ति का उपयोग

दुनिया में सबसे बड़ा अभिशाप है कमजोर होना। दुर्लभ है शक्तिशाली होना। शक्ति प्राप्त हो गई, अभिशाप समाप्त हो गया। शक्ति प्राप्त कर उसका दुरुपयोग करना उससे भी बड़ा अभिशाप है। कमजोरी अभिशाप है, शक्ति का दुरुपयोग करना भी अभिशाप है। इसे सबसे बड़ा पाप भी कहा जा सकता है। शक्तिहीन व्यक्ति का जीना जीना नहीं होता।

एक चींटी चल रही है, एक छोटा प्राणी चल रहा है, जो भी आएगा उन्हें कुचल डालेगा क्योंकि उनमें शक्ति नहीं है। एक आदमी की हत्या हो तो समाचार पत्रों में आ जाता है कि उसकी हत्या कर दी गई। छोटे-छोटे प्राणियों की कितनी हत्याएं होती हैं। छोटों को छोड़ भी दें, बेचारे निरीह पशु—गाय-भैंस, बकरियां आदि बड़े प्राणियों की भी कितनी हत्याएं होती हैं। किन्तु कोई भी न्यायालय नहीं जाता कि आज उसने गाय की हत्या कर दी, भैंस की हत्या कर दी।

सब प्राणियों में सबसे ज्यादा शक्तिशाली है मनुष्य। सिंह, बाघ आदि बहुत शक्तिशाली प्राणी हैं पर उनके पास शक्तिशाली दिमाग नहीं है। मनुष्य के पास शक्तिशाली दिमाग है इसलिए वह दुनिया में सबसे ज्यादा शक्तिशाली प्राणी बन गया। शेर को पिंजड़े में रखने वाला, हाथी पर अंकुश रखने वाला, सब पर काबू पाने वाला मनुष्य ही है। सबसे शक्तिशाली मनुष्य में भी बहुत तारतम्य देखा जाता है। एक आदमी हीनभावना से ग्रस्त है, मनोबल कमजोर है और दिमाग भी पूरा विकसित नहीं है, वह मनुष्य होकर भी कमजोर प्राणी है, भीरु है, डरपोक है। एक व्यक्ति दीन है, असहाय है, पास में साधन-सामग्री नहीं है, वह भी कमजोर प्राणी है। एक वर्ग बन गया—कमजोर मनुष्यों का, कायर मनुष्यों का। दूसरा वर्ग बन गया—शक्ति संपन्न मनुष्यों का। उनके पास साधन-सामग्री है, शस्त्र बल है, काम करने की क्षमता है, मनोबल है, डरते भी नहीं हैं।

पहले वर्ग के लोग हैं कायर और कमजोर। वे बेचारे क्या करेंगे? दुनिया का बहुत नुकसान नहीं कर सकते। मनुष्य को हानि पहुंचाने वाला वह मनुष्य है जो

साधना और सिद्धि ————— ● १६९ ●



शक्ति-सम्पन्न है, जिसके पास बहुत साधन-सामग्री है, जो दूसरे को डरा सकता है, बुरा कर सकता है, अनिष्ट कर सकता है। उसको विचार करना है कि शक्ति का दुरुपयोग नहीं हो, शक्ति का सम्यक् प्रयोग हो। शक्ति है दूसरों को सहारा देने के लिए, न कि दूसरों को गिराने के लिए।

मैंने अपने जीवन में ऐसे लोगों को देखा है जो शक्ति-सम्पन्न थे और जिन्होंने अपने मन की शक्ति का, अपनी वाणी की शक्ति का और अपने शरीर की शक्ति का सम्यक् उपयोग किया। ऐसे गृहस्थों को भी देखा है और ऐसे साधु-संन्यासियों को भी देखा है जिन्होंने शक्ति का सम्यक् उपयोग किया। किसी का अनिष्ट नहीं किया, किसी कमजोर को परेशान नहीं किया। कमजोर पर हावी होना, अहंकार करना बहुत बुरी बात है। संत फ्रांसिस ईसाई धर्म के प्रसिद्ध संत हुए हैं। उन्होंने एक प्रार्थना लिखी है—‘मैंने कमजोर आदमी पर अहंकार किया हो तो वह मेरी क्षुद्रता का क्षण है, उससे मैं बचना चाहता हूँ।’ बड़ों पर अहंकार कोई नहीं कर सकता। छोटे आदमी पर कोई भी अहंकार कर सकता है। मालिक अपने नौकर पर अहंकार कर सकता है किंतु अपने से बड़ों पर नहीं कर सकता, बराबर वालों पर नहीं कर सकता। कितनी अच्छी बात कहीं है कि छोटों पर मैंने अहंकार किया हो तो क्षुद्रता का क्षण है और उससे मैं मुक्त होना चाहता हूँ। बहुत बड़ी बात है कि मैं छोटों पर अहंकार नहीं करूँ। छोटे कमजोर हैं, उन पर अहंकार करके क्या करोगे ?

शक्ति का सम्यक् उपयोग करने वाले दो-तीन मुनि हमारे धर्मसंघ में हुए हैं। मैंने मंत्री मुनि मगनलालजी को देखा। बहुत शक्ति-सम्पन्न और समर्थ व्यक्ति थे। प्रत्येक व्यक्ति उनके वचन को सुनने के लिए प्रतीक्षा करता था। आज धंधा शुरू करना है, दुकान खोलना है, अमुक व्यवसाय करना है, आज गृह-प्रवेश करना है, आज अमुक काम करना है, मंत्री मुनि के पास उस विषय में बात करे और उनके मुंह से अकस्मात् कोई शब्द निकल जाए तो बस काम हो गया। सैकड़ों लोग उनके पीछे-पीछे घूमते रहते थे। मैंने कभी नहीं देखा कि उन्होंने कभी भी किसी कमजोर के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया हो, कभी दुर्व्यवहार किया हो, किसी को कटु वचन कहा हो। उनके मन में छोटों के प्रति अधिक सहानुभूति और सहिष्णुता थी। अहंकार का कोई नाम नहीं था। मुझे लगा कि वे शक्ति का सम्यक् उपयोग कर रहे थे। उन्होंने दूसरों का भला किया, संभवतः कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया। कोई भी प्रसंग ऐसा आता तो वे उसे डाल देते थे।

मैंने मुनि भीमराजजी को देखा। अत्यधिक शक्ति-सम्पन्न थे। ज्ञान की शक्ति उनके पास थी, गुणों की संपदा भी उनके पास थी। निर्मलता और गंभीरता में शायद उन्हें प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है। भीमराजजी स्वामी को कोई बात कह दो या समुद्र में डाल दो फिर खोजना मुश्किल है। बहुत लोग ऐसे होते हैं कि बात अभी कहो, उठते ही बाहर फैल जाएगी। बात को पचा नहीं पाते, गंभीरता नहीं साधना और सिद्धि—

होती। भीमराजजी इतने गहरे थे कि उनको कुछ भी कह दो, कोई खतरा नहीं होता। उन्होंने अनेक छोटे साधुओं का हित साधा।

हमारे धर्मसंघ में एक नेमीचंदजी नाम के मुनि थे। उनका वर्ण कृष्ण था। शरीर दुर्बल, अंग रचना विचित्र, बुद्धि मंद। भीमराजजी स्वामी उस मुनि के साथ दिन-रात में पांच-सात घंटा बैठते, स्वयं जोर-जोर से उच्चारण करते और उसको सिखाते। 'धम्मो मंगलमुक्खिट्टु' इस एक पद का सैकड़ों बार उस मुनि के साथ उन्होंने उच्चारण किया होगा। उसको सिखाने का बहुत अधिक श्रम उन्होंने किया था। यह है शक्ति का सम्यक् उपयोग। कमजोर आदमी को तैयार करना शक्ति का सम्यक् उपयोग है।

मैंने मुनि तुलसी को मुनि अवस्था में देखा। वे जन्मना शक्ति-सम्पन्न थे। दूसरों के लिए सारी शक्ति लगाने वाले वे विरले पुरुष थे। चंपालालजी स्वामी को उनकी एक बात अच्छी नहीं लगी। एक बार उन्होंने कहा—'तुलसी! तुम अपना काम नहीं करते। मुनि नथमल, मुनि बुद्धमल्ल आदि इनको पढ़ाने में सारा समय लगा देते हो, अपना काम नहीं करते हो।' उस समय मुनि तुलसी ने उत्तर दिया—'ये दूसरे कौन हैं? अपने ही तो हैं।' इतना कहने पर शायद कोई अपने स्वार्थ की बात सोच सकता है कि मैं क्यों माथा-पच्ची करूं, क्यों इतना समय लगाऊं। प्रारंभ में जब मैंने पढ़ना शुरू किया था तो पूरे दिन में दो श्लोक कण्ठस्थ करना भी मेरे लिए भारी था। गुरुदेव आधा घंटा तक साथ-साथ में रट-रट कर मुझे कण्ठस्थ कराते थे। उन्होंने मेरे निर्माण में बहुत समय लगाया।

आचार्य बनने के बाद अपनी शक्ति का इतना उपयोग किया कि आहार पर विजय प्राप्त कर ली, भूख को जीत लिया, नींद को जीत लिया। जयपुर, दिल्ली और कलकत्ता के चातुर्मास में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय सुबह का नाश्ता नहीं होता था। साधु-साध्वियां भिक्षा लेकर आ जाते। घंटा-घंटा तक गोचरी की झोली हाथ में लिए खड़े रहते, कोई विशिष्ट व्यक्ति आ गया, बात करनी है, किसी को समझाना है, किसी को भिक्षु का जीवनवृत्त समझाना है, किसी को तेरापंथ के सिद्धांत समझाना है, किसी को दया-दान का तत्त्व समझाना है, किसी को अणुव्रत का मर्म समझाना है। उस समय गुरुदेव सब कार्यों को गौण कर देते थे। हम लोग परस्पर बात करते—यह बड़ा कठिन काम है। मैंने एक बार गुरुदेव से कहा—'गुरुदेव! आपने तो भूख पर विजय प्राप्त कर ली है। हम छोटे-छोटे साधु-साध्वियों ने उस पर विजय नहीं पाई है।' गुरुदेव ने कहा—'क्या करूं? मैं जब बात करता हूं तो समय का भान ही नहीं रहता।' गुरुदेव ने अपनी शक्ति का सम्यक् उपयोग किया नैतिकता के विकास के लिए, अध्यात्म के विकास के लिए, मानवीय गुणों के विकास के लिए। शक्ति का सम्यक् उपयोग करने वालों की शिरोमणि पंक्ति में पूज्य गुरुदेव का नाम रखा जा सकता है।

मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है जिन्होंने अपनी शक्ति का सम्यक् उपयोग सेवा कार्य में कर दिया। पन्नालालजी स्वामी ने सेवा में अपनी सारी शक्ति नियोजित कर दी। मगनजी स्वामी उनके पास रहते थे। अपने शरीर का ध्यान भी नहीं रखते। कभी-कभी तो ऐसा होता कि मुंह में ग्रास रखते, गिर जाता, उसे उठाकर वे खा लेते। उन्होंने सेवा को अपने जीवन का ध्येय बना लिया। उसी में उन्होंने शक्ति का सम्यक् नियोजन कर दिया।

मैंने वेदांत के एक संन्यासी स्वामीविद्यारण्य को देखा। वे कोलकाता यूनिवर्सिटी में गणित के प्रोफेसर थे। एशिया की मेथामिटिक्स की कान्फ्रेस हो रही थी। उसमें तेरह व्यक्ति चुने गए। गणित के प्रोफेसर के रूप में हिन्दुस्तान की ओर से उन्होंने प्रतिनिधित्व किया था। फिर संन्यासी बने। वे बहुत ही निस्पृह, निश्छल और सरल थे। जोधपुर चातुर्मास में एक दिन मैं और गुरुदेव प्रातःकाल जंगल की ओर जा रहे थे। वे भी हमारे साथ हो गए। मैंने पूछा—‘स्वामीजी! आपने नाश्ता कर लिया? दूध पिया या नहीं?’

उन्होंने कहा—‘मैं दूध नहीं पीता हूँ।’

मैंने कहा—‘क्यों?’

‘दूध कहां से आए?’

‘बड़े-बड़े प्रिंसीपल, बड़े-बड़े प्रोफेसर, विद्वान्, आपकी सेवा में रहते हैं।’

उन्होंने कहा—‘मुनि नथमलजी! जोधपुर में मुझे सब कुछ मिल जाएगा। मैं जब पुष्कर जाता हूँ तब उन भिखारियों की पंक्ति में बैठकर भोजन करता हूँ। वहां कौन मुझे दूध देगा? यहां दूध पीने का अभ्यास हो गया तो फिर वहां भोजन करूंगा, दूध नहीं मिलेगा तो वह मुझे सताएगा।’

हमने पूछा—‘आपने शिष्य क्यों नहीं बनाए?’

उन्होंने कहा—‘मैं अपना काम करूँ या शिष्यों की संभाल करूँ?’

उन्होंने श्रुतोपासना में अपनी सारी शक्ति का सम्यक् उपयोग किया था।

मानवीय गुणों का विकास, सम्यक् दृष्टिकोण का विकास और सेवा का विकास—ये मानव समाज को उन्नत करने वाले आयाम हैं। उनमें व्यक्ति को अपनी शक्ति का नियोजन करना चाहिए। शक्ति का सम्यक् उपयोग वही व्यक्ति कर सकता है जिसमें सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र की त्रयी विद्यमान हो। जिसका चिंतन सही है, जिसका दृष्टिकोण सही है और जिसका आचार सही है वही व्यक्ति समाज को आगे ले जा सकता है। शुक्ल पक्ष मेरे सामने है। कृष्ण पक्ष को भी मैं बहुत जानता हूँ। कृष्ण पक्ष वाले व्यक्ति अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों का अनिष्ट करने में, दूसरों का अहित करने में करते हैं।

साधना और सिद्धि—● १७२ ●

बचपन से ही मेरी धारणा थी कि मुझे अगर अपना विकास करना है तो सबसे पहले एक बात से बचना है—दूसरों के अनिष्ट के बारे में न सोचना और न किसी का अनिष्ट करना। मैं दूसरों का अनिष्ट कर सकता था। मुझे गुरु का अनुग्रह प्राप्त था। मैं जो बात गुरुदेव से निवेदन करता, गुरुदेव उस पर भरोसा और विश्वास भी कर लेते। पर मेरा दृढ़ संकल्प था—मुझे कभी अनिष्ट नहीं करना है। दूसरों के अनिष्ट की बात कोई सोचता है तो उससे दूसरे का अनिष्ट होता है या नहीं, वह व्यक्ति अपना अनिष्ट निश्चित कर लेता है। जिसमें यह चिंतन आ जाए, वह कभी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करता।

वर्तमान युग में तंत्र-मंत्र की शक्ति का सबसे ज्यादा दुरुपयोग हो रहा है। अभी कुछ दिन पूर्व जयपुर से एक समृद्ध परिवार के दो सदस्य आए। पत्नी ने कहा—‘मेरे पति को कुछ कर दिया।’ मैंने पूछा—‘किसने किया?’ वह बोली—‘घरवालों ने कुछ कर दिया। न तो व्यापार में मन लगता है, न किसी काम में। सारे दिन लेटे रहते हैं।’ एक वर्ष में अनेक घटनाएं हमारे सामने आ जाती हैं। दूसरों का अनिष्ट करना मानो एक व्यवसाय हो गया है। एक व्यक्ति की दुकान बहुत अच्छी चलती थी। किसी ने तांत्रिक प्रयोग कर दिया। सारा काम चौपट हो गया। दोनों में बड़ा प्रेम था, किसी ने कुछ कर दिया। अब एक-दूसरे को देखना भी नहीं चाहते। वे लोग मानव जाति का भला नहीं कर सकते, जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं। शक्ति का होना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है शक्ति का सम्यक् उपयोग करना। जो शक्ति का दुरुपयोग करते हैं, उनका अंतिम जीवन अच्छा नहीं होता। तड़पते-तड़पते मरते हैं।

यह भी मैंने अनुभव किया है कि जो लोग बुरी सोच रखते हैं, बुरी भावना रखते हैं और दूसरों का अहित करने के लिए बुरी साधना के प्रयोग करते हैं, वे अंतिम समय में बहुत पश्चात्ताप करते हैं और अंतिम जीवन दुःखमय व्यतीत करते हैं। अनुष्ठान की प्रवचनमाला का निष्कर्ष यह है कि हर आदमी को शक्ति-सम्पन्न होने का प्रयास करना चाहिए। पहली बात है—उसे कमजोर, कायर नहीं रहना चाहिए। दूसरी बात है—शक्ति का सम्यक् उपयोग करना चाहिए। उसे अच्छी दिशा में नियोजित कर देना चाहिए।

पूज्य कालूगणी फरमाते थे—‘जो साधु बनते ही किसी काम में लग जाता है, मैं उसकी ओर से निश्चिंत हो जाता हूँ, चाहे प्रतिलिपि करो, सेवा करो, व्याख्यान दो, किसी भी काम में लग जाए। जो साधु या साध्वी अपनी शक्ति को किसी काम में नहीं लगाता उसकी चिंता मुझे बराबर बनी रहती है।’ अपनी शक्ति का उपयोग करना सीखें, शक्ति को सही दिशा में लगाना शुरू कर दें और उन दिशाओं में ऐसे बीजों का वपन करें कि फसल लहलहा उठे।

साधना और सिद्धि ————— ● १७३ ●

हमारा दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि मैं शक्ति-सम्पन्न हूं पर किसी का अनिष्ट नहीं करूंगा, शक्ति का दुरुपयोग नहीं करूंगा। ये तीन सूत्र हमारे सामने हैं— शक्ति-सम्पन्न होना, शक्ति का सम्यक् नियोजन करना और शक्ति का दुरुपयोग न करना। ये तीन बातें समझ में आ जाएं तो हमारी आराधना बहुत सफल होगी। पूज्य गुरुदेव का और मेरा दृढ़ संकल्प रहा कि हमें शक्ति-संपन्न होना है। गुरुदेव के अनुग्रह से हमारा संघ शक्ति-सम्पन्न बना है। तेरापंथ ने आज तक शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया। किसी के विरोध में, किसी के प्रति शक्ति का अनिष्ट प्रयोग नहीं किया। यह हमारी सफलता है और शक्ति-सम्पन्न होने की सार्थकता है। इसी से व्यक्ति का, संगठन का, पूरे समाज का भला होगा।

साधना और सिद्धि ————— ● १७४ ●

## शक्ति की अभिव्यक्ति

नवरात्र के समय में शक्ति जागरण का उपक्रम चल रहा है। हमारे पास शक्ति है, महावीर्य है, उसका बोध होना जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति के पास अनन्त वीर्य है। फिर कुछ व्यक्ति दीन-हीन और दुःखी हैं और कुछ व्यक्ति अत्यधिक समर्थ। इसका हेतु क्या है? हेतु स्पष्ट है। अनन्त वीर्य सबके पास है किन्तु पावर हाउस सबके पास नहीं है। बल्ब, ट्यूब लाइट—प्रकाश का माध्यम भी सबके पास नहीं है। दस पावर हाउस मनुष्य के पास हैं किन्तु अविकसित प्राणी के पास उतने नहीं हैं।

मनुष्य के पास शक्ति अभिव्यक्ति के दस केन्द्र (पावर हाउस) हैं। आंख का कार्य देखना। वह कैसे देखती है? प्राण का प्रवाह आते ही आंख को देखने की, कान को सुनने की, नाक को सूंघने की, जिह्वा को स्वाद की और त्वचा को संवेदन की शक्ति उपलब्ध हो जाती है। वह प्रवाह आता है पावर हाउस से और वह पावर हाउस है—इन्द्रिय पर्याप्ति। यह बहुत बड़ा जेनरेटर है जो निरन्तर शक्ति को पैदा कर रहा है। इन्द्रिय पर्याप्ति से वीर्य विद्युत में बदल जाता है। वीर्य की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है—योग। वे तीन हैं—

१. मनोयोग
२. वचनयोग
३. काययोग

वीर्य योग नहीं है। वीर्य की अभिव्यक्ति के जो केन्द्र हैं वे योग हैं। मन एक केन्द्र है चिन्तन, स्मृति और कल्पना की अभिव्यक्ति का, वचन एक केन्द्र है भाषा की अभिव्यक्ति का और शरीर एक केन्द्र है प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति का। इस प्रकार मनोयोग, वचनयोग और काययोग—ये तीन योग तीन पावर हाउस बन गए। विस्तार में जाएं तो दस पावर हाउस बन गए। पांच इन्द्रियों के पांच पावर हाउस हैं। शरीर को संचालित करने वाला पावर हाउस है शरीर पर्याप्ति, वचन को संचालित करने वाला पावर हाउस है भाषा पर्याप्ति और मन को संचालित करने वाला पावर हाउस है मनः पर्याप्ति। श्वासोच्छ्वास को संचालित करने वाला पावर हाउस है

साधना और सिद्धि

● १७५ ●

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। आयुष्य को संचालित करने वाला पावर हाउस है आहार पर्याप्ति। सामान्य नियम है कि हम किसी चीज को काम में लेंगे तो उसका व्यय होगा। शरीरशास्त्र के अनुसार प्रति सेकण्ड लाखों-लाखों कोशिकाएं नष्ट हो रही हैं। यदि इस प्रकार निरन्तर नष्ट होने का क्रम जारी रहा तो स्थिति खतरे में हो जाएगी। इस संदर्भ में हमें यह नियम समझना होगा कि पुरानी कोशिकाएं नष्ट हो रही हैं और नई कोशिकाओं का उत्पाद हो रहा है। एक समय था जब यह माना जाता था कि मस्तिष्क के न्यूरोन नष्ट होने के बाद पैदा नहीं होते। आज यह सिद्धांत भी बदल गया। अब नई शोध हो गयी है कि मस्तिष्क के न्यूरोन्स भी फिर से पैदा हो सकते हैं। इनको कौन पैदा कर रहा है? वीर्य पैदा कर रहा है। वह पावर हाउस बना रहा है। आंख देखती है। उसका मूल स्रोत है वीर्य। वह नाना कार्यों के लिए नाना रूपों में बंट जाता है। जब देखने का काम करना है तो वीर्य का पावर हाउस होगा चक्षुरिन्द्रिय पर्याप्ति। उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र होगा आंख का गोलक, रेटिना। आंख की रचना बल्ब है जहां से प्रकाश निकलता है। ये तीन चीजें सामने आ गईं— वीर्य, वीर्य को प्रकट होने के लिए चाहिए पावर हाउस और अभिव्यक्ति के लिए चाहिए बल्ब, डेलाइट आदि-आदि।

वीर्य जब प्रकट होता है तो मनःपर्याप्ति पावर हाउस बन जाती है। मस्तिष्क उसको व्यक्त करने का साधन बन जाता है। मस्तिष्क और मन के बारे में काफी चिन्तन किया गया। कुछ चिन्तक कहते हैं—मन हृदय में रहता है। कुछ कहते हैं—नाभि में रहता है। अलग-अलग मान्यताएं हैं। जैन दृष्टिकोण के अनुसार मन का स्थान मनःपर्याप्ति है। वर्तमान विज्ञान की दृष्टि से मन का स्थान मस्तिष्क में है। हृदय मस्तिष्क का एक हिस्सा है। उसका पावर हाउस मनःपर्याप्ति हो सकता है जो लिम्बिक सिस्टम में विद्यमान है।

इस संदर्भ में छः पर्याप्ति और दस प्राण का सिद्धान्त समझना जरूरी है। प्राण के आधार पर क्रम निर्धारण करें—पांच इन्द्रिय प्राण, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास प्राण और आयुष्य प्राण। पर्याप्ति के आधार पर क्रम निर्धारण करें—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। इस प्रकार जीवन का एक पूरा चित्र बन जाता है। उसके द्वारा शक्ति के सिद्धान्त को समझा जा सकता है।

प्रश्न हो सकता है आपका कायबल कैसा है? आपका वचनबल कैसा है? बहुत बार ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति बोलना चाहता है किन्तु दूसरा व्यक्ति सुनना नहीं चाहता। कोई व्यक्ति बोलता है तो पूरी बात समझ में नहीं आती। जिसके पास वाणी का बल है उसकी बात सब सुनना चाहते हैं। यह वाणी का बल कहां से आया? एक व्यक्ति का मनोबल इतना कमजोर होता है कि वह किसी भी कार्य को करने का साहस नहीं कर सकता, कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता। उसे पैर रखने से पूर्व ही खतरे की संभावनाएं लगती हैं। उसमें मनोबल नहीं है। शरीर का भी बल

साधना और सिद्धि—● १७६ ●



नहीं है। वह ढीला-ढीला रहता है। कुछ कर ही नहीं पाता। हमें चिन्तन करना है व्यक्ति कितना शक्तिशाली है और कितना वाल्टेज व्यक्ति के पास आता है? अभिव्यक्ति के केन्द्र या वाक् तार (वायर) कितने मजबूत हैं? सारा आचार-शास्त्र हमारे सामने आ जाता है। आचार-शास्त्र को समझे बिना शरीर का बल भी नहीं बढ़ाया जा सकता, वाणी का बल भी नहीं बढ़ाया जा सकता और मन का बल भी नहीं बढ़ाया जा सकता।

अभी हम कक्ष में बैठे थे। महाश्रमण और साधु-साध्वियां मेरे पास थे। दिल्ली प्रदेश के मुख्यमंत्री के प्रिंसिपल सेक्रेटरी एस. रघुनाथनजी वहां आए। अकस्मात् डॉ. मनचंदा हृदयरोग विशेषज्ञ, डॉ. सामां जो गंगाराम हॉस्पिटल के चेररमेन हैं वहां आए। अन्य अनेक डॉक्टर भी वहां उपस्थित थे। बातचीत के दौरान चर्चा हो रही थी कि अब केवल ऐलोपैथी दवा से काम नहीं चलेगा। अभी डॉक्टरों की कान्फ्रेंस हुई। अनेक डॉक्टरों ने इसमें भाग लिया। राष्ट्रपति ने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया कि जब तक वैकल्पिक चिकित्सा नहीं खोजी जाएगी, केवल ऐलोपैथिक दवा के भरोसे समाधान नहीं होगा। दवा इतनी महंगी हो गई है कि बेचारे गरीब लोग कहां से लाएंगे? आज किसी गरीब व्यक्ति को बाइपास सर्जरी करवानी है, वह कैसे कराएगा? सर्जरी के लिए उसे एक-दो लाख रुपए चाहिए। इतनी राशि तो उसे दस वर्ष कमाने पर भी नहीं मिलती। उस व्यक्ति के लिए इलाज कैसे संभव होगा? ऐसी स्थिति में कुछ प्रयोगों की चर्चा डॉ. मनचंदा ने की जो बिना दवा के हृदय रोगी को स्वस्थता दे सकते हैं।

हमें भी इन तीन शब्दों पर सोचना है। कायबल, वचनबल और मनोबल कैसे बढ़ें? मनोबल होता है तो कायबल बढ़ जाता है, वाणी का बल भी बढ़ जाता है। कायबल के होने पर मनोबल बढ़ता है। दोनों का सापेक्ष संबंध है। गुरुदेव दक्षिण यात्रा से पधारे। सं. २०२६ का मर्यादा महोत्सव बीदासर में था अचानक श्वास का प्रकोप बढ़ने से जटिलता पैदा हो गई। सारी स्थिति चिन्तनीय बन गई। जयपुर से डॉ. मेहता आए। उन्होंने कहा—अब आपका चलना मुश्किल है। डॉक्टर का यह वाक्य हमें बड़ा अटपटा लगा। गुरुदेव ने कहा—डॉक्टर की बात सुनने की होती है, सब बातें मानने की नहीं। उसकी बात यदि अक्षरशः स्वीकार कर लें तो समस्या बढ़ सकती है। गुरुदेव का मनोबल प्रबल था। कायबल ने सहयोग दिया। उसके बाद प्रायः दस किलोमीटर चलना शुरू कर दिया।

सरदारशहर चातुर्मास से पूर्व अकस्मात् मेरी रीढ़ की हड्डी में दर्द हो गया। बीकानेर के प्रसिद्ध अस्थि विशेषज्ञ डॉ. आर.एन. माथुर ने दर्शन किए। उन्होंने कहा—दस मिनट से ज्यादा आपको नहीं बैठना है। हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ. एस.एन. मिश्रा ने कहा—आपको तीस मिनट से ज्यादा नहीं बैठना है। दिल्ली से डॉ. कुचेरिया के साथ डॉक्टर तूली आए। उन्होंने कहा—आपको सारा कार्य लेटे-लेटे ही करना है। मैंने सब डॉक्टरों के परामर्श को सुन लिया। आसन, प्राणायाम और संकल्प शक्ति का

साधना और सिद्धि ————— ● १७७ ●

प्रयोग किया। उसके बाद एक घण्टा भी बैठा, दो घण्टे भी बैठा और पांच-पांच घण्टे भी बैठा हूँ। जहाँ कम्प्रेसन था वह स्थान अधिक मजबूत हो गया। आसन, प्राणायाम और संकल्प शक्ति के द्वारा हम पुरानी मशीन को नया बना सकते हैं।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए जरूरी है मनोबल का विकास। जब बच्चा सोलह, अठारह या बीस वर्ष का हो जाए तो उसे धन कमाने के साथ-साथ मनोबल को बढ़ाने का प्रशिक्षण दिया जाए। मनोबल कैसे बढ़ता है? मनोबल को कैसे बनाए रखा जा सकता है? उसका विकास कैसे किया जा सकता है? इसका अवबोध होने पर बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो सकता है। जिसने मनोबल को नहीं समझा, उसे बढ़ाने का तरीका नहीं समझा, वह सारी सम्पत्ति का त्याग करने पर भी दुःखी ही बना रहेगा। सबसे पहले मनोबल कैसे बढ़े? इस विषय पर सोचना है।

दूसरा बल है वाणी का। वाणी का बल भी बढ़ाया जा सकता है, वाणी में सरसता आ सकती है, ओज आ सकता है, वह दूसरों को प्रभावित भी कर सकती है। प्रभावित व्यक्ति आपकी बात मान सकता है। आचार्य भिक्षु के जीवन की दो शताब्दियाँ पूरी हो रही हैं। उनके भाषा वर्णना के पुद्गलों में बहुत अधिक बल था। उन्होंने जो कुछ भी कहा वह यथार्थ रूप में घटित हुआ और हो रहा है। उन्होंने अपनी साधना के द्वारा वाक्बल को विकसित कर लिया था।

आचार्य भिक्षु ने हेमराजजी स्वामी को दीक्षा लेने के लिए बहुत समझाया। उन्होंने कहा—एक बार शादी करके बाद में दीक्षा लूंगा। काफी लम्बा चर्चा हुई। अंत में भिक्षु स्वामी ने कहा—हेमड़ा! मेरे जीते-जी दीक्षा लेगा या मरने के बाद? सारी चर्चा समाप्त, वार्ता समाप्त और विकल्प समाप्त। कहा—महाराज दीक्षा की तैयारी कर रहा हूँ। भिक्षु स्वामी की वाणी में बल था।

हेमराजजी स्वामी के जीवन का एक दूसरा प्रसंग है। वे गोचरी करके आए। भिक्षु स्वामी ने उपालंभ दिया। रूठकर सो गए। आहार के समय नहीं आए। पूछा—क्या कर रहा है। एक साधु ने कहा—वे सोए हुए हैं। तेज स्वर में आवाज दी—हेमड़ा! अवगुण खुद का देख रहा है या मेरा? चुपचाप उठकर आ गए। उनकी वाणी में चमत्कार था। बहुत पहले मैंने एक कविता लिखी थी—

नमस्कार हे संत तुम्हारे शब्दों में कोई चमत्कार है।

वाक्बल के विकसित होने पर चमत्कार घटित होता है। वीर्य का एक स्रोत मन के साथ प्रवाहित होता है। उसका दूसरा स्रोत वाणी के साथ और तीसरा स्रोत शरीर के साथ प्रवाहित होता है। मन की शक्ति को बढ़ाना है, वचन की शक्ति को बढ़ाना है और शरीर की शक्ति को बढ़ाना है। पुराने जमाने में शरीर का बल अधिक था। उस समय विशेष अस्पताल नहीं थे, दवाइयाँ भी नहीं थी और डॉक्टर भी नहीं थे। दवाई दादी मां के झोले में रहती थी। वह झोला ही डिस्पेन्सरी था।

साधना और सिद्धि—● १७८ ●

उसमें सौँठ, लौंग, इलायची, कालीमिर्च आदि द्रव्य रहते थे। इनके द्वारा मां घर के सदस्यों का इलाज कर देती थी।

भगवान महावीर के समय शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति थे। उस समय सम्राट चंद्रप्रद्योत के दो दूत थे लोहजंघ और वज्रजंघ। कहा जाता है लोहजंघ उज्जयिनी से सूरज ढलने के साथ ही रवाना होता और प्रातःकाल सूर्योदय के समय राजगृह पहुंचकर सम्राट श्रेणिक को नमस्कार कर लेता। कहां बिहार और कहां मालवा! मध्यप्रदेश से यात्रा प्रारम्भ करता और एक रात में ही बिहार पहुंच जाता। सौ योजन यानी लगभग बारह सौ किलोमीटर की यात्रा तय कर लेता। यह रेल भी शायद इतनी तेज रफ्तार से नहीं चलती होगी।

कायबल के विकास की अनेक पद्धतियां बतलाई गई हैं। कायबल के द्वारा ही इतना तेज चलना संभव हो सकता है। राणाप्रताप के समय जो टोप था आज एक आदमी उसे हाथ में उठा भी नहीं सकता। वे सिर पर धारण कर युद्ध करते थे। लगता है कायबल कमजोर हुआ है। उसके साथ मनोबल भी कमजोर हुआ है। खैर, आज राणाप्रताप सबको नहीं बनना है, वह टोप भी सबको नहीं पहनना है। सबको लोहजंघ बनकर एक रात में बारह सौ किलोमीटर नहीं चलना है। आज कार, बस, ट्रेन, वायुयान आदि अनेक साधन हैं। पर कम से कम इतना कायबल रहे कि हम किसी भी कार्य को अच्छे ढंग से सम्पादित कर सकें और साथ ही मनोबल को भी बनाए रख सकें। अगर व्यक्ति के पास कायबल नहीं है तो मनोबल कहां से आएगा?

कुछ दिन पहले माउण्ट आबू से मुनि मीठालालजी आए। तीन दिन हमारे साथ रहे। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा—‘अध्यात्म की साधना करने वाले के लिए स्वस्थ रहना जरूरी है। अगर स्वास्थ्य नहीं है तो साधना कैसे करेगा?’ मैं भी अनुभव करता हूं कि साधना के लिए स्वस्थ होना जरूरी है। शरीर स्वस्थ नहीं है तो अध्यात्म की साधना कैसे होगी? सारा काम शरीर से होता है। उसका बल बना रहे, मनोबल और वाणी का बल भी बना रहे।

गंगाशहर में गुरुदेव स्वर्गवास से एक दिन पूर्व तरोपंथ भवन पधारे। प्रवचन प्रारंभ किया। प्रवचन करते-करते गीत शुरू किया—‘प्रभो! यह तेरापंथ महान।’ उस एक पंक्ति को इतना लंबा लिया कि लोग देखते रह गए। यानी वाणी का बहुत अधिक बल था। तिरासी वर्ष की अवस्था में भी गुरुदेव कभी अपने आप को वृद्ध नहीं मानते थे। जिसके पास मनोबल है, वाणी का बल है, कायबल है, वह व्यक्ति कभी बूढ़ा नहीं होता। बूढ़ा हो वह है जिसका शरीर ढीला-ढाला है, जिसकी वाणी में ओज नहीं है और जिसके पास मनोबल नहीं है। वह चालीस वर्ष में ही नहीं, तीस वर्ष में भी बूढ़ा बन जाएगा। तीस वर्ष के बूढ़ों को भी हमने देखा है और तिरासी वर्ष के जवान को भी हमने देखा है। यह सारा कायबल पर निर्भर है।

शक्ति साधना पर्व के अवसर पर हम चिंतन करें कि हमारी सबसे ज्यादा मूल्यवान तीन निधियां हैं—मनोबल, वचनबल और कायबल। इन निधियों का हमें विकास करना है और इनको साधना है। धर्म केवल मोक्ष का ही साधन नहीं है, वह आरोग्य और निर्मलता का भी साधन है। शक्ति जागरण के लिए हम जप का अनुष्ठान कर रहे हैं। इस अभ्यास के द्वारा निर्मलता को प्राप्त किया जा सकता है।

जप करने वाला निर्भरता, तेजस्विता और गंभीरता के साथ आरोग्य, बोधि और समाधि की भी याचना कर रहा है।

शक्ति का बड़ा साम्राज्य है। उसके हर पहलू पर विचार करें और ऐसी साधना करें जिससे हमारे तीनों योग अच्छे रहें, हमारी पर्याप्तियां जो पावर-हाउस हैं, ठीक काम करती रहें और हमारे प्राण, जो सारी शक्ति की अभिव्यक्ति के केन्द्र हैं, बिलकुल स्वस्थ रहें ऐसा चिंतन होने पर धर्म का मर्म भी समझ में आएगा और जीवन का मर्म भी समझ में आएगा।

## नवाह्निक आध्यात्मिक अनुष्ठान

दुनिया में शक्ति का महत्त्व होता है। शक्तिविहीन व्यक्ति अपने आप में रिक्तता अनुभव करता है। कभी-कभी शक्तिविहीन मनुष्य अपने आपको दयनीय और असहाय भी अनुभव करता है। सबसे बड़ी शक्ति आध्यात्मिक शक्ति होती है। अन्य शक्तियों का भी अपना-अपना महत्त्व होता है।

गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने नवाह्निक आध्यात्मिक अनुष्ठान का एक नया उपक्रम प्रारम्भ किया है। उसका उद्देश्य है— आत्मशुद्धि और ऊर्जा का विकास। उसकी कालावधि आश्विन शुक्ला प्रथमा से प्रारम्भ कर निरन्तर नौ दिनों की निर्धारित की गई है। चैत्र शुक्ला प्रथमा से प्रारम्भ कर निरन्तर नौ दिनों की कालावधि में भी इसकी आराधना की जा सकती है। संपूर्ण विधि एवं समय-सारणी इस प्रकार निश्चित की गई है—

प्रातः ९.३० से १०.००

‘चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा

सागरवरंगभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु’—का पांच बार पाठ

चंदेसु निम्मलयरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु—का तेरह बार पाठ

आइच्चेसु अहियं पयासयरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु—का तेरह बार पाठ

सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु—का तेरह बार पाठ

आरोग्य बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तम दितु—का तेरह बार पाठ

सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु—का इक्कीस बार पाठ

‘चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा

सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।’—का पांच बार पाठ

ॐ ह्रीं क्लीं क्ष्वीं

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।

देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियई रसं ।  
 न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥२॥  
 एमेए समण मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।  
 विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥  
 वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोई उवहम्मई ।  
 अहागडेसु रीयंति, पुप्फेसु भमरा जहा ॥४॥  
 महुकारसमा बुद्धा, जे भंवति अणिस्सिया ।  
 नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ॥५॥

प्रातः १० से १०.३०—आध्यात्मिक प्रवचन

मध्याह्न २.३० से ३.१५ आगम पाठ का स्वाध्याय ।

(दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि आदि के मूल पाठ का स्पष्ट व शुद्ध उच्चारण एवं व्याख्या)

पश्चिम रात्रि ४.४५ से ५.३०

ॐ उवग्गहरं पासं (उपसर्गहर स्तोत्र) आदि पांच श्लोक एवं 'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमिऊण' श्लोक का नौ बार पाठ । फिर 'विघनहरण' का जप ।

**उपसर्गहर स्तोत्र**

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।  
 विसहर-विसनित्रासं, मंगल-कल्लाण आवासं ॥१॥  
 विसहर-फुलिंग-मंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।  
 तस्स गह-रोग-मारी, दुट्ठ जरा जंति उवसामं ॥२॥  
 चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।  
 नरतिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्ख-दोहग्गं ॥३॥  
 तुह सम्मत्ते लद्धे, चिन्तामणि-कप्पपायपब्भहिए ।  
 पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥  
 इस संथुओ महायस ! भत्तिब्भर-निब्भरेण हियएण ।  
 ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमिऊण पास

विसहर वसह जिण फुल्लिंग ह्रीं श्रीं नमः ॥

**विघनहरण**

विघनहरण मंगलकरण, स्वाम भिक्षु रो नाम ।  
 गुण ओलख सुमिरण करै, सरै अचिंत्या काम ॥

साधना और सिद्धि

• १८२ •

जप और आगम-स्वाध्याय के साथ तप का योग भी आवश्यक माना जाता है। तप में एकासन, आर्यंबिल, षड्विगय वर्जन, पंच विगय वर्जन और दस प्रत्याख्यान में से किसी एक तप की आराधना इस अवधिकाल में की जाए। व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार नौ दिनों तक एक ही तप अथवा वैकल्पिक तप की आराधना की जा सकती है।

निर्धारित कालावधि और करणीय क्रम को यथावत् रखते हुए स्थानीय सुविधानुसार समय में परिवर्तन भी किया जा सकता है। साधु-साध्वियों की भांति श्रावक-श्राविकाएं भी इसमें संभागी बन सकते हैं। संभागी श्रावक-श्राविकाओं के लिए निम्नांकित नियम भी अनुष्ठानकाल में पालनीय हैं—

ब्रह्मचर्य का पालन, रात्रि भोजन—रिमण (चौविहार/तिविहार), जमीकन्द का वर्जन।

अनुष्ठान का प्रारम्भ दिन प्रातः ९.३० से यानी प्रातःकालीन सत्र में किया जाए एवं अनुष्ठान का समापन रात्रि के ५.३० बजे यानी रात्रिकालीन सत्र में किया जाए।